अर्वाचीन यूरोप

अर्वाचीन यूरोप

प्रथम खण्ड : फ्रांस की राज्यक्रान्ति तथा नैपोलियन
(१७८९–१८१५)

द्वितीय खण्ड : लोकतन्त्र तथा राष्ट्रीयता का विकास
(१८१५–१८७०)

तृतीय खण्ड : साम्राज्यवाद तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठन
(१८७०–१९५०)

अर्वाचीन यूरोप

(द्वितीय खण्ड)

लोकतन्त्र तथा राष्ट्रीयता का विकास

(१८१५—१८७०)

लेखक

बी० एन० वर्मा एम० ए०, एल-एल० बी०
एसोशियेट प्रोफेसर, इतिहास एवं राजनीति-विज्ञान विभाग
आगरा कालेज, आगरा

तथा

आर० के० माथुर एम० ए०,
'विश्व-इतिहास (इण्टर),' 'विश्व-इतिहास (हाई स्कूल)', 'इंग्लैंड का
इतिहास', 'भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास'
आदि के रचयिता

प्रकाशक

गोपाल प्रिंटिंग प्रेस

परेड–कानपुर

प्रथम संस्करण] १९५४ [मूल्य [illegible] रुपये

प्रकाशक :

गोपाल प्रिंटिंग प्रेस,

परेड, कानपुर ।

मुद्रक :

स्टैंडर्ड प्रिंटिंग प्रेस,

गोविन्द नगर, कानपुर ।

प्राक्कथन

इस ग्रन्थ का प्रथम भाग कुछ दिन पहले छपकर पाठकों के सामने आ चुका है और विद्यार्थियों तथा अध्यापकों ने उसका स्वागत किया है। प्रस्तुत खण्ड में १८१५ से १८७० तक का यूरोप का इतिहास वर्णित है। यह युग यूरोप में लोकतंत्र तथा राष्ट्रवाद के अभ्युदय का युग है। प्रतिगामी शक्तियों की अन्तिम रूप से पराजय हुई और प्रगतिशील तत्वों का उत्कर्ष हुआ। इटली और जर्मनी आदि राष्ट्रों का एकीकरण हुआ और अनेक देशों में संवैधानिक सरकारों की स्थापना की गई। पुस्तक के इस खण्ड में पूर्वोक्त महत्वपूर्ण घटनाओं और आन्दोलनों की कहानी स्पष्ट रूप से समझा कर लिखी गई है। योजना, भाषा, शैली में पूर्व खण्ड का ही अनुकरण किया गया है। व्यक्तियों, स्थानों आदि के नामों का उच्चारण 'दि सेंचुरी साइक्लोपीडिया ऑव नेम्स' नामक ग्रंथ पर आधारित है। इसका सम्पादन श्री बेंजमिन ई० स्मिथ० ए० एम०, एल० एच० डी० ने और प्रकाशन दि टाइम्स, लन्दन ने किया है।

आशा है कि इस भाग से भी पाठकों को पर्याप्त सन्तोष मिलेगा।

बी० एन० वर्मा
आर० के० माथुर

विषय-सूची

मानचित्र

ओटो वोन बिज्मार्क

प्रथम अध्याय

यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था

(१८१४–१८२५)

नैपोलियन के पतन पर यूरोप में शांति स्थापित हुई। उस समय सबको यह विश्वास था कि उसकी राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था ऐसे सुनिश्चित ढंग से की जायेगी कि वहां शीघ्र ही स्वर्ण-युग स्थापित हो जायेगा, जिसकी आशा दार्शनिकों तथा लेखकों को दीर्घकाल से थी। परन्तु यह बड़े खेद का विषय है कि उनकी आशायें पूरी न हो सकीं। वीयेना की कांग्रेस में जो निर्णय किये गये थे वे शासकों के हितों को ध्यान में रखकर किये गये थे, न कि हाल में जागे हुये राष्ट्रों के लाभ के लिये। लोकतन्त्र और राष्ट्रीयता की सरितायें अपने महान स्रोत फ्रांस से निकल कर यूरोप की विभिन्न दिशाओं में बढ़ने की चेष्टा कर रही थीं। परन्तु कांग्रेस के सदस्यों ने उनकी अवहेलना करके घड़ी की सुई को उल्टा घुमाने का प्रयत्न किया। उन्होंने उक्त दोनों सिद्धान्तों का निरादर किया तथा उनके मार्ग में अवरोध खड़े किये। फल यह हुआ कि यूरोप में सन् १८५० ई० के कुछ वर्ष बाद तक प्रतिक्रियावाद (Reactionary Policy) का बोल बाला रहा। इसके बहुत पूर्व वहाँ औद्योगिक क्रांति के कारण कारखानों में मशीनों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। परन्तु इससे सामान्य जनता को कोई लाभ न हुआ था। जो लोग पूंजीपति थे वे अधिक धन सम्पन्न और सशक्ति हो गये थे और कुछ काल के लिये श्रमिक पहले से भी अधिक निर्धन और पराश्रय बना दिये गये थे।

वियेना की कांग्रेस तथा प्रतिक्रियावाद के अतिरिक्त भी न केवल फ्रांस वरन् यूरोप के अन्य देशों में भी नवयुग के चिह्न दृष्टिगोचर थे। नवयुग अभी दूर था।

नवयुग के चिह्न

उसके प्रारम्भ होने में कम से कम ३५ वर्ष की देर थी, किन्तु उसके कुछ चिह्न सन् १८१५ ई० से ही प्रकट हो रहे थे। फ्रांस में गत पच्चीस वर्षों में एक ऐसी शासन पद्धति तथा सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की गई थी जो अट्ठारहवीं शताब्दी की बौद्धिक

क्रांति के सिद्धान्तों से अनुकूलता रखती थी। वहां एक ऐसे केन्द्रीय शासन का सृजन हुआ था जो जनसत्ता की शक्ति पर आधारित था, जो राष्ट्रीय विद्यालयों तथा राष्ट्रीय सेनाओं से सुसज्जित था, जिसके आश्रित निवासियों के हृदयों में उच्च श्रेणी का राष्ट्र प्रेम था तथा जिसके विधान-मण्डल में विशेष वर्गों का प्रतिनिधित्व न होकर जनसाधारण का प्रतिनिधित्व था। फ्रांस का समाज इससे भी अधिक नव सिद्धांतों के आधार पर संगठित था। वह अब पहले की भांति अभिजातवर्ग, पादरियों तथा जागीरदारों आदि के विशेषाधिकारों से दूषित न था। वहां अब पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता का साम्राज्य भी था। नेपोलियन के समय में फ्रांस के निवासियों ने इस शासन प्रणाली और सामाजिक व्यवस्था को ऐसी दृढ़ता और प्रेम के साथ अक्षुण्ण रक्खा था कि अठारहवें लूई अथवा किसी अन्य बादशाह के हृदय में उनको हटाने की कल्पना तक नहीं हो सकती थी। फ्रांस की भांति यूरोप के अन्य देशों में भी नवयुग के चिह्न प्रकट थे। वहां भी बहुत से मनुष्य क्रांतिकारी विचार के थे। फ्रांसीसी राज्यक्रांति के सिद्धान्त वहां भी धीरे धीरे जड़ पकड़ रहे थे। प्रारम्भ में जिस क्रांति का फ्रांसीसी स्वरूप था उसने धीरे धीरे यूरोपीय वेष धारण कर लिया। इसमें कई बातों से अधिक सहायता मिली। जैसे (१) बहुत से देश ऐसे थे जो क्रांति के समय में अथवा इसके पश्चात् फ्रांसीसी राज्य के अन्तर्गत कर लिये गये थे, जैसे नेदरलैंड्स, राइनलैंड, इटैली प्रायद्वीप का अधिकतर भाग आदि। ये देश सीधे सीधे फ्रांस के शासन के अधीन थे। अतएव वहां क्रांतिकारी सिद्धान्तों तथा नेपोलियन के कोड की प्रतिष्ठा प्रत्यक्ष रूप से हुई थी, और वहां के निवासी केन्द्रीय शासन तथा व्यक्ति प्रधान समाज के अभ्यस्त हो गये थे। यदि वहां स्वतन्त्रता (Liberty) के सिद्धान्त को महत्व नहीं दिया गया था तो कम से कम वे समानता (Equality) तथा बान्धुत्व (Fraternity) के सिद्धान्तों से निरन्तर लाभ उठा रहे थे। (२) कुछ देश ऐसे भी थे जो फ्रांस के राज्य में तो सम्मिलित नहीं किये गये थे, परन्तु वे फ्रांस की अधीनता अवश्य स्वीकार करते थे। उदाहरण के रूप में हम मध्य और दक्षिणी जर्मनी के राज्यों के अतिरिक्त नेपिल्स तथा स्पेन को ले सकते हैं। इन देशों में जागीरदारी प्रथा (Feudalism) तथा दास-कृषकों की प्रथा (Serfdom) का अन्त किया गया, धार्मिक स्वतन्त्रता का प्रचार हुआ तथा लोकतन्त्रवादी शासन तथा सामाजिक समता की प्रथा प्रारम्भ हुई। ये देश नेपोलियन के अधीन अधिक समय तक नहीं रहे, परन्तु अधीनता के समय में वहां के निवासी कम से कम नव प्रवाह के लाभों से पूर्ण रूप से अवगत हो गये थे। (३) नेपोलियन के उत्कर्ष के शिरोबिन्दु को देखकर उसके सबसे बड़े

शत्रुओं के हृदयों में भी भय उत्पन्न होगया था तथा वे भी इस परिणाम पर पहुंचे थे कि उनकी सुरक्षा इसी में है कि उसका अनुकरण करके सामाजिक तथा राजनैतिक सुधारों का श्रीगणेश करें। इसके सबसे ज्वलन्त उदाहरण प्रशा और कुछ कम सीमा तक आस्ट्रिया के हैं। इन सुधारों से वहां की जनता हर्षित हुई, और स्वाधीनता संग्राम के समय उसने 'दैवी अधिकारों' के समर्थक शासकों का साथ दिया। वह सिद्धान्त जिसने सन् १८१५ ई० के पश्चात् सबसे अधिक रंग जमाया प्रतिक्रियावाद (Reactionary Policy) का सिद्धान्त था। इसकी उपस्थिति में लोकतन्त्र तथा राष्ट्रीयता के सिद्धान्त भी धीरे धीरे अपने लिये मार्ग बनाते रहे, परन्तु इसकी गति अधिक मन्द रही।

शासकों का विरोध

यूरोप के अधिकतर शासक और उनके मन्त्री नवयुग के चिह्नों को देखकर हर्षित नहीं हुये थे। वे अधिकतर रूढ़िवादी शासन प्रणाली (Conservative Policy) के समर्थक थे और इस बात को सहन न कर सकते थे कि कोई भी देश लोकतन्त्र और राष्ट्रीयता के पथ पर अग्रसर हो। ब्रिटिश द्वीपसमूह के निवासी इस पथ पर काफ़ी आगे बढ़ चुके थे। अतः वे उनका अनुमोदन न करना चाहते थे। प्रतिक्रियावादी देशों के कार्य करने के सिद्धान्त थे रूढ़िवाद (Conservatism), विधानवाद (Legitimacy) तथा निरंकुशता (Autocracy)। क्रांतिकारी सिद्धान्तों की गूंज को वे सहन न कर सकते थे। व्यक्तिगत विचारों की स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र, राष्ट्रीयता एवं अन्य क्रांतिकारी सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा व उन्नति के वे पूर्णतया विरुद्ध थे। परन्तु काले बादलों पर एक सुनहरी किरण भी थी। यदि प्रथम प्रकार के सिद्धान्तों को सम्राटों तथा उनके मन्त्रियों ने अपनाया था तो दूसरे प्रकार के सिद्धान्त भी समर्थकों तथा सहायकों के बिना नहीं रहे। इनको आगे बढ़ाने का श्रेय स्वतन्त्र विचार रखने वाले विद्वानों तथा जनसाधारण को प्राप्त था। दोनों पक्षों के लोग अपने अपने पक्ष के सिद्धान्तों की उन्नति में प्रयत्नशील थे, परन्तु वे उसमें अधिक सफल न हो सके। प्रथम के प्रयत्नों का यह परिणाम हुआ कि यूरोप के शासकों ने अपने सामूहिक लाभ के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था स्थापित की तथा जिस समय नैपोलियन का पतन हो रहा था उस समय कई बार सभायें करके विकट समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया। वियेना की कांग्रेस और पेरिस की प्रथम तथा द्वितीय संधियाँ उसी के प्रयत्नों का परिणाम थीं। दूसरे पक्ष की ओर से यूरोप के कई देशों में राजनैतिक आन्दोलन किये गये, परन्तु शासकों की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ने उन्हें दबाने का प्रत्येक प्रकार से प्रयत्न किया। इस प्रकार कई वर्षों के संघर्ष के पश्चात् उन

नवयुग का उदय हुआ जब लोकतन्त्र और राष्ट्रीयता के सिद्धान्त स्थायी रूप से यूरोप की राजनैतिक व्यवस्था के प्रधान स्तम्भ बन गये तथा उनके विरोधियों का सिर सर्वदा के लिये नीचा हो गया। इसके लिये हम कोई विशेष तिथि निश्चित नहीं कर सकते परन्तु यह अवश्य अनुमान कर सकते हैं कि ऐसा सन् १८५० ई० के कुछ ही वर्ष बाद हुआ था।

यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का विचार सर्वप्रथम उन्नीसवीं शताब्दी में उत्पन्न नहीं हुआ था। हम इसे मध्यकालीन युग की देन मान सकते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप

इसका सबसे प्राचीन उदाहरण होली रोमन साम्राज्य का है, जिसकी स्थापना उपरोक्त काल में हुई थी। हज़रत ईसा बहुधा एक ऐसे संसार का स्वप्न देखा करते थे जिसमें सब राष्ट्र संगठित होकर विश्व-शान्ति तथा विश्व-कल्याण के लिये प्रयत्नशील हों। होली रोमन साम्राज्य उनके स्वप्न का सबसे प्राथमिक स्वरूप था। परन्तु धर्मसुधार (Reformation) के पश्चात् इस विषय में उपरोक्त साम्राज्य की महत्ता समाप्त हो गई, और ग्रोशियस तथा उस काल के अन्य विद्वानों तथा राजनीतिवेत्ताओं ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के इस प्राचीन सिद्धान्त को बिल्कुल त्याग दिया कि एक सार्वभौम सत्ता यूरोप के समस्त राज्यों पर शासन करे। उस समय से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार का यह सिद्धान्त प्रचलित हुआ कि समस्त स्वतन्त्र राज्य न केवल पूर्णतया स्वाधीन होते हैं वरन् एक दूसरे के साथ समता का व्यवहार करते हैं, और इसके अतिरिक्त कि वे शक्तिशाली हों अथवा निःशक्ति, वे समान अधिकारों तथा कर्तव्यों से सम्पन्न होते हैं। इस सिद्धान्त के होते हुये भी महान् शक्तियां धीरे धीरे छोटी शक्तियों पर बलशाली हो गईं। उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप के भाग्य का निर्णय इस प्रकार की पांच अथवा छः महाशक्तियों के हाथ में था। जिन राजनैतिक समस्याओं से साधारण रूप से सबका सम्बन्ध होता उनको हल करते समय इनका प्रभाव कई बार प्रकट हुआ। ऐसी एक समस्या हालैंड से बेल्जियम के एकीकरण (Unification) के कारण उपस्थित हुई। दूसरी समस्या पूर्वीय प्रश्न (Eastern Question) से सम्बन्ध रखती है। इनका महत्व उस काल में अत्यधिक था। इन समस्याओं को महान् शक्तियों के प्रभाव से हल किया गया, परन्तु इससे यूरोप की अंतर्राष्ट्रीय शांति व व्यवस्था को स्थिर रखने में अधिक सफलता न मिल सकी। कारण कि कुछ समय के पश्चात् महान् शक्तियों में मतभेद उत्पन्न हो गया और वे दो विरोधी सशस्त्र पक्षों में विभाजित हो गईं।

नेपोलियन के युद्धों के समय यूरोप की शक्तियों के संगठित रहने की

आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव हुई थी। अतएव उन्होंने कई बार सम्मिलित शक्ति से उसका सामना किया। इसके पश्चात् उन्होंने ९ मार्च सन् १८१४ ई० को फ्रांस में मार्न नदी के तट पर शोमों (Chaumont) की विख्यात सन्धि की। इसके द्वारा आस्ट्रिया, इंग्लैंड, प्रशा और रूस ने बीस साल तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था द्वारा संगठित रहने का निश्चय किया। इसका उद्देश्य यह था कि सब देश सम्मिलित रूप से नैपोलियन को नीचा दिखलाने का प्रयत्न करें और उसको तथा उसके वंशजों को फ्रांस में शासन करने से वंचित रक्खें। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी निश्चित किया कि नैपोलियन के पतन के पश्चात् जो निर्णय विभिन्न देशों की सीमाओं के सम्बन्ध में किया जायेगा उसका उत्तरदायित्व हस्ताक्षर करने वाली शक्तियाँ बीस वर्ष तक अपने ऊपर लेंगी। शोमों की सन्धि का परिणाम यह हुआ कि मार्च के अन्त तक मित्र राष्ट्रों ने यह निश्चित कर लिया कि फ्रांस का राजसिंहासन बूरबन वंश को लौटा दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त उन्होंने पेरिस पर अधिकार भी कर लिया। अप्रैल के प्रारम्भ में नैपोलियन अपनी और अपने वंश की ओर से, शासन कार्य से अलग होगया और मित्र राष्ट्र यूरोप के मानचित्र को सुधारने में संलग्न हो गये।

शोमों की सन्धि, ९ मार्च १८१४ ई०

उनका कार्य सरल न था। फ्रांस का शासन सोलहवें लूई के भाई अठारहवें लूई को दे दिया गया था। यह कार्य मित्र राष्ट्रों के सिद्धान्त के अनुसार किया गया था, किन्तु फ्रांस के बहुत कम लोग उसे हृदय से चाहते थे। उसका पुनरागमन मित्र राष्ट्रों के कारण हुआ था, न कि उसके व्यक्तिगत गुणों के कारण। उसने किसी सीमा तक बादशाह के दैवी अधिकारों को महत्व दिया तथा नैपोलियन के पक्षपातियों पर अत्याचार करना प्रारम्भ किया। उसने पुराने चर्च को पुनः स्थापित कर दिया और सेना में कमी करके उसके कतिपय उच्च अधिकारियों को पदच्युत कर दिया। उसने एक भूल यह भी की कि उसने राष्ट्रीय भावनाओं का विचार न करके मित्र राष्ट्रों के कहने से फ्रांस की सीमाओं में कमी किये जाने के लिए स्वीकृति दे दी। फ्रांसीसी क्रांति तथा नैपोलियन का आदर्श यह था कि फ्रांस की सीमायें प्राकृतिक आधार पर निर्धारित की जायें। इसके पूर्व चौदहवाँ लूई भी इस पर ज़ोर दे चुका था, और क्रांति के समय में यह सीमायें उपलब्ध भी कर ली गई थीं। परन्तु अठारहवें लूई ने शीघ्र ही इन से हाथ धो लिये। ३० मई सन् १८१४ ई० को यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था ने पेरिस की प्रथम संधि की। इसका उल्लेख प्रथम भाग में भी किया जा चुका है।

पेरिस की प्रथम संधि, ३० मई १८१४ ई०

इससे फ्रांस के साथ जहाँ तक सम्भव हो सका उचित व्यवहार किया गया अर्थात् उसके अस्त्र शस्त्रों को हस्तगत नहीं किया गया, उससे कोई युद्ध का हर्जाना भी नहीं लिया गया तथा न उससे यह कहा गया कि विद्या और कला के जो बहुमूल्य उपकरण इटेली तथा जर्मनी से लाये गये थे उन्हें लौटा दिया जाय। फ्रांस की जो सीमायें नैपोलियन के समय में बन गई थीं उनमें प्रकट रूप से कमी कर दी गई और उसके लिए सन् १७६२ ई० की प्राकृतिक सीमायें कुछ वृद्धि करके छोड़ दी गईं। पेरिस की दूसरी सन्धि से इनको भी कम कर दिया गया।

वीयेना की कांग्रेस, १८१४-१८१५ ई०

नैपोलियन के पतन के पश्चात् यूरोप की शक्तियों को नवीन राजनैतिक प्रयोगों के लिये सुन्दर सुयोग मिला। वह एक ऐसा समय था जब यूरोप के राष्ट्रों को सम्मिलित करके, किसी भी प्रकार का संघ स्थापित करने में सफलता प्राप्त हो सकती थी। फ्रांस के क्रांतिकारियों और नैपोलियन का सामना करने के लिये बड़ी शक्तियों में संगठन हो चुका था, और उन्होंने सम्मिलित रूप से अपनी इच्छानुसार फ्रांस के भाग्य का निर्णय भी कर दिया था। अब प्रश्न यह था कि क्या वे समान अधिकार और कर्तव्य रखने वाले संयुक्त यूरोप की स्थापना करने में भी कृतकार्य होंगी? परन्तु वीयेना की कांग्रेस इस महत्वपूर्ण कार्य में किंचित मात्र भी सफल न हुई। इस सम्बन्ध में प्रशा के विख्यात राजनीतिवेत्ता गेन्ट्स (Gentz) ने अपने विचारों को इन शब्दों में प्रकट किया था,—"लोगों को विश्वास था कि यूरोप की राजनैतिक व्यवस्था में सर्वांगी सुधार किये जायेंगे, तथा शांति का पूर्ण उत्तरदायित्व लिया जायेगा। सारांश यह कि स्वर्ण-युग लौट आयेगा। कांग्रेस ने दीर्घकालीन व्यवस्था को, जो तलवार के बल पर इसके पूर्व ही स्थापित कर दी गई थी, पुनरावृत्ति करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं किया......उसने उच्चकोटि का कोई भी कार्य न किया। उसने सर्व-साधारण को प्रसन्न करने के लिए अथवा सब के हित के लिए कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिससे, मानव ने दीर्घ समय तक जो विपत्तियां सहन की थीं उनका पारि-तोषिक मिल जाता अथवा उसे भविष्य के लिये संतोष हो जाता। कांग्रेस के सन्धिपत्र पर ऐसे कार्यों के स्थान पर जो शताब्दियों तक स्थायी रह सकते हैं, अल्पकालीन निर्णय की छाप लगी हुई है।" संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वीयेना की कांग्रेस के निर्णय सर्वसाधारण के लिए हर्ष व सन्तोष का साधन न बन सके। इसका सब से बड़ा कारण यह था कि यूरोप की महाशक्तियां अपने पारस्परिक मतभेद तथा निजी स्वार्थ को विस्मरण न कर सकीं। इसके अतिरिक्त सन् १८१४ अथवा सन् १८१५ ई० में यूरोप की राजनैतिक व्यवस्था इतनी अधिक

उन्नत अवस्था में न थी कि उसके आधार पर समस्त महाद्वीप के लिए, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के ढंग पर अथवा किसी अन्य प्रकार का संधानीय शासन (Federation) स्थापित किया जाता।

वीयेना की कांग्रेस का कार्य दो सन्धिपत्रों द्वारा पूर्ण किया गया था। इन पर २० नवम्बर सन् १८१५ ई० को यूरोप की महान् शक्तियों ने हस्ताक्षर किये थे।

पेरिस की द्वितीय संधि २० नवम्बर १८१५ ई०

प्रथम, पेरिस का द्वितीय संधिपत्र जिसके द्वारा, जैसा कि बतला चुके हैं (पृष्ठ३७५, भाग १), नेपोलियन के एल्बा से लौट आने के कारण फ्रांस पर नवीन प्रतिबन्ध लगाये गये, उसके लिए सन् १७८६ ई० की सीमायें निर्धारित की गईं, उससे युद्ध का हर्जाना वसूल किया गया तथा विद्या और कला के बहुमूल्य उपकरण अन्य देशों को लौटा दिये गये। इसके अतिरिक्त हर्जाना वसूल न होने तक वेलिंगटन को आदेश दिया गया कि वह फ्रांस के उत्तरी-पूर्वी दुर्गों में सेना सहित पड़ा रहे। द्वितीय संधिपत्र 'चतुर्मुखी संमैत्री' (Quadruple Alliance) के सम्बन्ध में किया गया। इसमें आस्ट्रिया, प्रशा, रूस और इंग्लैंड सम्मिलित हुये। इसे हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का उन्नत स्वरूप कह सकते हैं। रूस के ज़ार सिकन्दर प्रथम ने एक इससे भी बड़ी योजना उपस्थित की थी, परन्तु इंग्लैंड के सहमत न होने के कारण वह कार्य रूप में परिणित न की जा सकी।

रूस का ज़ार सिकन्दर प्रथम अपने युग की एक ऐसी देन था जिसका ठीक प्रकार से समझना कठिन है। नेपोलियन की पराजय तथा वीयेना की कांग्रेस के विषय में उसने जो पराक्रम दिखलाया था

यूरोप के संधान के लिये सिकंदर प्रथम की योजना

उससे यूरोपीय राष्ट्रमण्डल में उसका महत्व अधिक हो गया था। यूरोप के उलझे हुये मामलों को सुलझवाने में इसके पूर्व रूस के किसी भी शासक ने इतनी ख्याति और महत्व प्राप्त नहीं किया था। सिकन्दर प्रथम (१८०१-१८२५) एक रहस्यमय तथा कल्पना जगत में विचरण करने वाला व्यक्ति था। नेपोलियन उसे "कूटनीति प्रवीण बिज़न्चियम* का निवासी" कहकर पुकारता था। मेटर्निक का विचार था कि वह "एक पागल मनुष्य है जिसको संतुष्ट रखना ही [illegible] है।" [illegible] में सिकन्दर के हृदय में सद्भावनापूर्ण विचार आया करते थे और उसको अपना और आकर्षित करना भी सरल था।

* पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी जो बास्पोरस के जलडमरूमध्य पर बसी हुई थी।

परन्तु वह अपने विचारों को बदलता रहता था। वह सुन्दर योजनायें निर्मित कर सकता था, किन्तु उन्हें कार्य रूप में परिणित करना उसे न आता था। अपने स्विज़ शिक्षक से उसने रूसो के दार्शनिक सिद्धान्त सीखे थे और अपने रूसी पथप्रदर्शक से सैनिक प्रतिष्ठा तथा महत्ता का पाठ पढ़ा था। सिकन्दर में सब से बड़ा गुण यह था कि वह कभी कभी अपने समय से बहुत आगे बढ़ जाता था तथा उदार विचार रखने के प्रमाण उपस्थित करता था। अपने शासन के प्रारम्भिक काल में वह पोलैंड के लिये एक संविधान स्वीकृत कर चुका था। वह रूस के लिए भी संविधान बनाने के स्वप्न देखा करता था। परन्तु उसके उदार विचारों की नींव गहरी नहीं थी। जैसा कि उसके एक मन्त्री ने लिखा था, "सम्राट इसके लिए प्रसन्नतापूर्वक तैयार हो सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वाधीन कर दिया जाय, परन्तु शर्त यह है कि वह उसकी इच्छा के अनुकूल कार्य करे।"

ज़ार सिकन्दर प्रथम यूरोप के लिये संघानीय (Federal) आधार पर योजना बनाने के लिए पूर्णतया उपयुक्त था। उसके दो शताब्दी पूर्व महारानी ऐलिज़बेथ के मत से फ्रांस के सम्राट हेनरी चतुर्थ ने होली ऐलायन्स के समान अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर एक योजना बनाई थी जो इतिहास में 'महान् योजना' (Grand Design) के नाम से विख्यात है। इसमें यूरोप के लिए एक साधारण सभा अथवा सिनेट के स्थापित करने का सुझाव दिया गया था। इसमें सभा के लिये ६६ राज्यों का प्रतिनिधित्व रक्खा गया था। सलि (Sully) नाम के प्रसिद्ध प्रोटेस्टेंट विद्वान ने 'महान् योजना' का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया था,—"यूरोपीय देशों को सदा के लिये रक्तपूर्ण संकटों से, जो यूरोप में सदा आया करते थे, उन्मुक्त करना तथा उनके लिए स्थायी शांति की स्थापना करना, जिस से आज से समस्त शासक, बन्धुओं के तुल्य जीवन व्यतीत कर सकें।" हेनरी चतुर्थ की सन् १६१० ई० में मृत्यु हो जाने के कारण उसकी योजना अधिक उन्नति न कर सकी। इसके तीन वर्ष पश्चात् फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान ऐबे दी सेंट पीयेर (Abbe de St. Pierre) ने संघानीय यूरोप की योजना को उठाया। उसने यह मत प्रकट किया कि यूरोप में एक संघ स्थापित किया जाये, जिसके सदस्यों को एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध करने के अधिकार को त्याग देना पड़ेगा एवं एक स्थायी कांग्रेस स्थापित करके पारस्परिक मतभेद व विद्वेष को तिलाजलि दे देनी पड़ेगी। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रूस के ज़ार सिकन्दर प्रथम ने इस प्रकार की एक योजना बनाई और उसे यूरोप के राष्ट्रों के सम्मुख प्रेषित किया। इसके पूर्व सन् १८०४ ई० में उसने ग्रेट ब्रिटेन को अपने पक्ष में कर लिया था, परन्तु छोटे पिट ने अपनी स्वीकृति इस विचार से दी थी कि सिकन्दर की योजना का उपयोग केवल फ्रांस के विरुद्ध

किया जायेगा। इसके विरुद्ध ज़ार ने उसे 'महान् योजना' की भांति समस्त यूरोप के लिये निर्मित किया था। इस से ग्रेट ब्रिटेन का केवल इतना प्रयोजन था कि उसकी सहायता से नैपोलियन को नीचा दिखाया जाये। इसके विपरीत ज़ार का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर समस्त यूरोप के लिए एक संघ (League) अथवा उच्च न्यायालय स्थापित करना था, जिसके सम्मुख समस्त सम्मिलित मामले लाये जा सकें। परिणाम यह हुआ कि जब सिकन्दर ने अपनी होली एलायन्स अथवा 'पवित्र संमैत्री' (Holy Alliance) की योजना प्रकाशित की तो अंगरेज़ी शासन ने उसमें सम्मिलित होने से साफ़ जवाब दे दिया। स्वाधीनता प्रिय अंगरेज़ एक ऐसी निर्बल तथा अस्पष्ट योजना में कैसे सम्मिलित हो सकते थे जिसका उद्देश्य "समस्त अवसरों पर तथा समस्त स्थानों में एक दूसरे की सहायता तथा मदद करना था?"

होली ऐलायन्स

होली ऐलायन्स की घोषणा मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के सम्मुख पेरिस के सन्निकट २६ सितम्बर सन् १८१५ ई० को की गई थी। प्रारम्भ में इसमें केवल रूस, प्रशा और आस्ट्रिया सम्मिलित हुये थे। परन्तु इसके पश्चात् पोप तथा तुर्की व ग्रेट ब्रिटेन के शासकों के अतिरिक्त सभी शासकों ने किसी न किसी समय उसमें सम्मिलित होना स्वीकार किया। होली ऐलायन्स के उद्देश्य काफ़ी ऊँचे थे, परन्तु कार्य रूप में उसकी स्थापना से कोई विशेष लाभ न हुआ। प्राय: लोगों का यह भी विचार था कि यह लोकतन्त्र और राष्ट्रीयता की प्रवाहित धाराओं को रोकने के लिये एक सुदृढ़ बाँध है अथवा जनसाधारण के विरुद्ध शासनाधिकारियों का एक संघ अथवा उदार विचार के लोगों के विरुद्ध एक बहुत बड़ा षड्यन्त्र है। कहने को तो उसका उद्देश्य यह बतलाया गया था कि भिन्न देशों के शासक एक दूसरे को अपना बन्धु समझें और वे सब सत्य, प्रेम तथा चिरस्थायी भ्रातृत्व की शृंखला में आबद्ध रहें; शासकगण अपनी प्रजा को अपनी सन्तान के समान समझें और उस पर उसी प्रकार शासन करें जिस प्रकार घर का वयोवृद्ध अपने परिवार पर शासन करता है। परन्तु व्यवहार बहुधा इन उत्तम सिद्धान्तों के विरुद्ध किया गया। अतएव साधारण रूप से लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रजा की स्वाधीनता को नष्ट करने के लिए एक बहुत बड़ा जाल बिछा दिया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि होली ऐलायन्स के सृजन के समय रूस के ज़ार सिकन्दर ने यह मत भी उपस्थित किया था कि उसका गुप्त अर्थ यह भी है कि देश के शासन के लिए संवैधानिक सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया जाये, परन्तु ऐसा करना उस समय की प्रथा के बिल्कुल विपरीत था।

कुछ लेखक ऐसे भी हैं जिन्होंने होली ऐलायन्स के महत्व पर प्रकाश डालते समय अतिशयोक्ति से काम लिया है। वास्तव में यह विशाल योजना कभी भी कार्य रूप में परिणित न हो सकी। सिकन्दर के विचार प्रशंसा के योग्य थे, पर वह "होली ऐलायन्स की सूक्ष्म आत्मा को शरीर में बद्ध न कर सका।" कासलरे का विचार था कि वह केवल "एक उत्तम प्रकार का रहस्य तथा व्यर्थ प्रयत्न है।" मैटर्निक ने, जो ज़ार को जेकोबिन समझता था, उसके विषय में यह मत प्रकट किया था कि यह "देखने में बहुत बड़ी चीज़ है परन्तु इसमें वास्तविक तत्व कुछ भी नहीं है" अथवा यह कि यह केवल एक 'नैतिक प्रदर्शन' है। उसने होली ऐलायन्स के विषय में यह भी लिखा था कि यह "जनता के अधिकारों को कुचलने के लिये अथवा निरंकुश सिद्धान्त के उत्थान के लिये अथवा किसी अन्य प्रकार के अत्याचार को संचालित करने के लिये कोई संस्था नहीं है। यह केवल इसलिये निर्मित की गई है कि इसके द्वारा अत्यन्त धार्मिक एवं सद्‌विचार रखने वाला सम्राट सिकन्दर अपने हृदय के उद्‌गारों को प्रकट कर सके तथा ईसाई धर्म के सिद्धान्त राजनीति के लिये उपयुक्त हो सकें।" अतएव हम कह सकते हैं कि होली ऐलायन्स का व्यावहारिक महत्व बहुत कम था। फिर भी हम उसकी अवहेलना नहीं कर सकते। कारण कि उसके द्वारा उस सैद्धान्तिक अन्तर का पता चलता है जो पूर्वीय यूरोप की शक्तियों तथा ब्रिटिश शासन के बीच उत्पन्न हो गया था।

रूस के ज़ार सिकन्दर की भांति आस्ट्रिया का विख्यात मन्त्री मैटर्निक (१८०६—१८४८) भी इस युग का एक प्रसिद्ध विद्वान तथा राजनीतिज्ञ था।

मैटर्निक की योजना

नैपोलियन के पतन के पश्चात् लगभग चालीस साल तक यूरोप की राजनीति और व्यवस्था पर उसका गम्भीर प्रभाव रहा। उसका व्यक्तिगत आकर्षण तथा उसके सामाजिक गुण, उसका अनुभव, उसकी दूरदर्शिता तथा व्यक्ति को पहचानने की योग्यता, उसकी षड्‌यन्त्र रचने में क्षमता, उसका कठिन समस्याओं को सरलता से हल करने का स्वभाव, इन समस्त विशेषताओं के कारण मैटर्निक को वीयेना की कांग्रेस के समय महत्ता प्राप्त करने में सहायता मिली। इसके पश्चात् भी वह इन विशेषताओं की सहायता से मध्य रोप की शक्तियों पर प्रभाव रखता रहा। मैटर्निक ने भी यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के लिये एक योजना बनाई। ज़ार ने यूरोप के शासकों को सम्मिलित करके एक ऐसी संस्था निर्मित की थी जिसका उद्देश्य नैतिक तथा ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार सम्मिलित विषयों पर विचार करना तथा उनका हल प्रस्तावित करना था। परन्तु उसे इस महान्

कार्य में सफलता न मिल सकी थी। इसके स्थान पर मैटर्निक ने एक ऐसी संस्था बनाई थी जिसके द्वारा महान् शक्तियाँ व्यावहारिक रूप में छोटी शक्तियों पर प्रभावशाली हो गई तथा उसके नेतृत्व में राजनैतिक समस्याओं पर विचार करने लगीं। २० नवम्बर सन् १८१५ ई० को रूस, प्रशा, अस्ट्रिया और इंग्लैंड ने 'चतुर्मुखी संमैत्री' (Qaudruple Alliance) की शर्तों पर हस्ताक्षर किये। उसका उद्देश्य यह बतलाया गया था कि वे सब मिलकर इस बात पर ध्यान देंगे कि पेरिस के सन्धिपत्रों के अनुसार व्यवहार किया जाता है अथवा नहीं एवं विपरीत अवस्था में उनमें से प्रत्येक ६० सहस्र सैनिक देगा जिस से एक शक्तिशाली सेना की सहायता से उनके अनुसार व्यवहार कराया जा सके। यह बात भी निश्चित कर दी गई थी कि हस्ताक्षर करने वाले देशों की बैठक भविष्य में भी हुआ करेगी। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और कांग्रेसों की नीव पड़ी। किन्तु जो परिणाम ज़ार की योजना का हुआ था वही परिणाम मैटर्निक की योजना का भी हुआ। होली ऐलायन्स की भांति चतुर्मुखी संमैत्री भी अधिक काल तक स्थिर न रह सकी। जिस प्रकार अंगरेज़ी शासन के सम्मिलित न होने से प्रथम का अन्त हो गया था उसी प्रकार कुछ वर्षों के पश्चात् उसके पृथक हो जाने के कारण द्वितीय का भी अन्त हो गया।

चतुर्मुखी संमैत्री की शर्तें निश्चित करते समय यूरोप के देशों ने बड़े धैर्य तथा दूरदर्शिता से काम लिया था। फिर भी उसकी एक धारा ऐसी थी जिसका अर्थ तोड़ मरोड़ कर निकाला जा सकता था। यह प्रसिद्ध छठी धारा थी, जिस पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है। "इस उद्देश्य से कि वे सम्बन्ध जो इस समय चारों बादशाहों को इतने सुन्दर ढंग से जोड़े हुये हैं अधिक सुदृढ़ हो जायें संमैत्री करने वाले श्रेष्ठतम पक्ष इस बात की स्वीकृति देते हैं कि वे निश्चित अवधि के पश्चात् अपनी छत्रछाया में अथवा अपने प्रतिनिधि मन्त्रियों की छत्रछाया में अधिवेशन किया करेंगे, जिनका उद्देश्य महान् सम्मिलित आदर्शों पर दृष्टि डालना तथा ऐसे कार्यों का निश्चित करना होगा जो इस कोटि के अधिवेशनों में, राष्ट्रों की शांति तथा भलाई एवं यूरोप की शांति की स्थिरता के लिये अत्यन्त आवश्यक समझे जायेंगे।" इसी धारा के आधार पर यूरोप की राजनैतिक व्यवस्था का वह भव्य भवन खड़ा किया गया जो आठ वर्षों (१८१५-१८२३) तक स्थापित रहा। शीघ्र ही यह बात ज्ञात हुई कि 'महान् सम्मिलित आदर्शों' के अन्तर्गत केवल फ्रांस पर ही दृष्टि रखना न होगा वरन् मित्र राष्ट्रों को अन्य देशों के मामलों के विषय में भी, जिनका फ्रांस से कोई सम्बन्ध न था, निर्णय करना होगा। इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन को भी सम्मिलित सम्मेलनों के सिद्धान्त के लिये स्वीकृति देनी पड़ी जब कि उसे वास्तव में इसका बिल्कुल भी ज्ञान

न था कि उक्त सम्मेलनों को क्या करना होगा। परिणाम यह हुआ कि ज़ार सिकन्दर के संधानीय यूरोप के स्थान में, महाद्वीप में महान् शक्तियों का एकशास्ता शासन स्थापित हो गया। छोटे राष्ट्रों की दृष्टि में यह सर्वथा अन्याय था। उनके मत में उक्त महाशक्तियों के एकशास्तृत्व और नेपोलियन के एकशास्तृत्व में, जिसके स्थान में वह स्थापित किया गया था, कोई अन्तर न था। किन्तु उनके प्रतिरोध का कोई परिणाम न निकला।

यूरोप की अंतर्राष्ट्रीय संमैत्री ने चार स्थानों में सम्मेलन किये,—ऐक्सला-शापेल (Aix-la-Chapelle), ट्रोप्पाव (Troppau), लाइबाक (Laibach), और वेरोना (Verona)। देखना है कि इस सम्मेलनों में कैसी गुज़री। इनका हाल मालूम करने से यह भी ज्ञात हो जायेगा कि इस युग में अंगरेज़ी राजनीति के क्या सिद्धान्त थे।

ऐक्सलाशापेल की कांग्रेस, १८१८ ई०

प्रथम अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन जर्मनी के प्रसिद्ध नगर ऐक्सलाशापेल में हुआ। मैटर्निक ने उसके विषय में लिखा था कि उसने "इस से अधिक सुन्दर तथा छोटी कांग्रेस नहीं देखी।" कारण यह था कि जिस अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को उसने जन्म दिया था उसके अन्तिम उत्कर्ष को हम इस समय देख सकते थे। सभी देशों ने उसकी महानता को स्वीकार किया था। अतएव उसके पास विभिन्न देशों से विनयपत्र आये। डेन्मार्क ने स्वीडन के विरुद्ध सहायता के लिये प्रार्थना की। हैस के निर्वाचक ने बादशाह का पद प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। जर्मनी के शासकों ने अपनी शिकायतों को दूर कराने का प्रयत्न किया। मोनाको (Monaco) के निवासियों ने अपने शासक के विरुद्ध शिकायत की। सम्मेलन में आस्ट्रिया और प्रशा के यहूदियों की दशा पर भी ध्यान दिया गया। इन बातों के अतिरिक्त भी कांग्रेस की आंतरिक निर्बलता प्रकट हुये बिना न रही। वास्तव में ऐक्सलाशापेल की कांग्रेस में महान् शक्तियों के बीच वैमनस्य के चिह्न दृष्टिगोचर हुये, जो बाद के सम्मेलनों में अधिक बढ़ गये। उनमें फ्रांस से सेनायें हटा लेने के सम्बन्ध में आपस में पूर्ण एकता थी। फ्रांस को अंतर्राष्ट्रीय संमैत्री में सम्मिलित भी कर लिया गया। अत: वह अब मैटर्निक के शब्दों में 'नैतिक पंचमुखी संमैत्री' (Moral Pentarchy) बन गई। परन्तु अन्य आवश्यक विषयों के सम्बन्ध में मित्र राष्ट्र एकमत स्थिर न कर सके, जैसे हब्शियों का व्यापार और बारबरी के डाकू आदि। प्रथम के विषय में ग्रेट ब्रिटेन का यह मत था कि यूरोप की शक्तियों को एक दूसरे के जहाज़ों की तलाशी लेने का अधिकार प्रदान किया जाय। परन्तु यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो

सका। कारण कि अन्य देश ग्रेट ब्रिटेन से उसकी जलशक्ति के कारण ईर्ष्या करते थे। दूसरी समस्या के विषय में रूस ने यह मत प्रेषित किया कि भूमध्यसागर में एक रूसी सेना रक्खी जाय जिस से डाकुओं को जड़ मूल से नष्ट कर दिया जाय। यह एक ऐसा प्रस्ताव था जिसको ग्रेट ब्रिटेन किसी दशा में भी स्वीकार नहीं कर सकता था। अतएव यह अस्वीकृत कर दिया गया। इस प्रकार पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष के कारण चतुर्मुखी संमैत्री के सदस्यों में एक मत न हो सका तथा उनकी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था विफल प्रमाणित हुई।

ऐक्सलाशापेल की कांग्रेस का वास्तविक महत्व यह है कि उसके कारण अँगरेज़ मंत्री तथा राजनीतिज्ञ चतुर्मुखी संमैत्री के उद्देश्यों तथा कार्यप्रणाली की ओर से सावधान हो गये। उसमें ज़ार सिकंदर ने यह मत प्रकट किया था कि समस्त राष्ट्रों की ओर से यह घोषणा प्रकाशित की जाय कि विभिन्न देशों की तत्कालीन सीमायें तथा स्वाधीन शासकों के अधिकार अक्षुण रहेंगे। दूसरे शब्दों में इसका यह अर्थ था कि इटैली और जर्मनी के एकीकरण असम्भव थे, बेल्जियम हालैंड से और नार्वे स्वीडन से पृथक न हो सकते थे तथा बाल्कन प्रायद्वीप के राज्य भी स्वाधीन न हो सकते थे। इसका दूसरा अर्थ यह था कि यदि किसी देश के निवासियों की ओर से शासन के विरुद्ध क्रांति की गई और वह उसको दबाने में कृतकार्य न हुआ तो ऐसी दशा में अन्य देश आवश्यक रूप से उसकी सहायता करेंगे। यह एक बड़ा ही ख़तरनाक सिद्धान्त था जिसके कारण संवैधानिक उन्नति का मार्ग अत्यन्त पीछे हट सकता था। इस से, जैसा कि संकेत किया गया है, राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के मार्ग में भी भयंकर अवरोध उपस्थित होने की सम्भावना थी। अच्छाई यह हुई कि ब्रिटिश शासन के विरोध के कारण यह प्रस्ताव रद कर दिया गया। अतएव यूरोपियन राष्ट्रों के लोकतन्त्र तथा राष्ट्रीयता के मार्ग पर अग्रसर होने का रास्ता खुला रहा। पार्लेमेंट के भय से कासलरे, वेलिंगटन तथा कैनिंग में से कोई भी ऐसे सागर में यात्रा करने को तत्पर न था जहाँ इसके पूर्व कोई भी न गया हो। विशेषकर ऐसी दशा में जब जहाज़ के चलाने का उत्तरदायित्व आस्ट्रिया तथा प्रशा जैसी उल्टी हवा चलाने वाली शक्तियों पर था।

चतुर्मुखी संमैत्री का द्वितीय सम्मेलन ट्रोप्पाव में और तृतीय सम्मेलन लाइबाक में हुआ। प्रथम नगर जर्मनी में और दूसरा नगर आस्ट्रिया, हंग्री में स्थित था। अँगरेज़

ट्रोप्पाव और लाइबाक के सम्मेलन, १८२०-१८२१ ई०

मंत्री और राजनीतिज्ञों का यह सन्देह कि यूरोपीय संस्था के सदस्य महाद्वीप की स्वतन्त्राओं को समाप्त करके दम लेंगे दूसरे और तीसरे सम्मेलनों के पश्चात् काफ़ी दृढ़ हो गया। दूसरा सम्मेलन सन् १८२० ई० में ट्रोप्पाव में आमन्त्रित किया गया था। इसके बाद वाले वर्ष में वह

लाइबाक में उठ आया था। इसके आमन्त्रित किये जाने का विशेष कारण यह था, कि नेपिल्ज़ के निवासियों ने अपने बादशाह फ़र्डिनेन्ड के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था तथा उसे एक संविधान स्वीकृत करने के लिये भी विवश किया था। आस्ट्रिया के मन्त्री मैटर्निक को यह सहन न हुआ। उसने सेना भेज कर विद्रोह को सरलता से दबा दिया। ब्रिटिश द्वीपसमूह के वैदेशिक मन्त्री कॉस्लरे ने भी उसका समर्थन किया। इसके दो मुख्य कारण थे। प्रथम यह कि इटेली के मामलों में अस्ट्रिया की विशेष अभिरुचि थी, क्योंकि अस्ट्रियन साम्राज्य का बहुत बड़ा भाग उपरोक्त प्रायद्वीप में था। द्वितीय, पाँच वर्ष पूर्व अस्ट्रिया और नेपिल्ज़ के बीच यह बात सन्धि द्वारा निश्चित हो गई थी कि यदि द्वितीय की शासन प्रणाली में कोई इस प्रकार का परिवर्तन किया जायेगा जो प्रथम की शासन-प्रणाली के अनुकूल न हो तो ऐसी दशा में उसे विरोध करने का अधिकार प्राप्त होगा। परन्तु जब मैटर्निक ने इस सिद्धान्त को महान् शक्तियों से स्वीकृत कराने का प्रयत्न किया कि यदि यूरोप के किसी देश में भी जनता की ओर से क्रांति की जायेगी तो ऐसी परिस्थित में अन्य देशों को यह अधिकार प्राप्त होगा कि उसे सेना भेज कर कुचल दें, तो कॉस्लरे ने इसका घोर विरोध किया। परन्तु इसके बाद ही कुछ विशेष कारणों से ज़ार सिकन्दर के विचार बदल गये और वह अपनी उदार नीति को त्याग कर अस्ट्रिया की प्रतिक्रियावादी नीति का समर्थन करने लगा। इस से मैटर्निक का कार्य बहुत सरल हो गया। इसके पूर्व उसे इस बात का भय रहता था कि कहीं रूस का ज़ार फ्रांस और जर्मनी के छोटे राज्यों से मिल कर अस्ट्रिया के लिये कोई संकट पैदा न कर दे। परन्तु अब यह भय जाता रहा। मैटर्निक को अब इस बात की पूरी आशा हो गई कि वह रूस की सहायता से उदार विचार रखने वालों का विरोध करने में अधिक प्रयत्नशील हो सकेगा। ऐसी दशा में प्राकृतिक रूप से आवश्यक था कि बड़ी शक्तियों में विभाजन हो जाय अर्थात् अस्ट्रिया, प्रशा और रूस के प्रतिक्रियावादी शासन एक दल में हो जायें और ग्रेट ब्रिटेन तथा फ्रांस के वैधानिक शासन दूसरे दल में।

ओप्पाव की घोषणा

बदली हुई दशा का प्रकट प्रमाण ओप्पाव की घोषणा से प्राप्त हुआ। इसमें यूरोप की पूर्वीय शक्तियों ने अपने नवीन सिद्धान्त का उल्लेख स्पष्टता से किया था। "वे राज्य जिनमें किसी ऐसी (राजनैतिक) क्रांति के कारण जिस से दूसरे राज्यों को भय है, परिवर्तन उपस्थित हुआ है, स्वाभाविक रीति से यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के सदस्य नहीं रहते और वे उस से उस समय तक पृथक रहेंगे जब तक उनकी ओर से इस बात का पूरा भरोसा न हो जाय कि वहां नियमानुसार शान्ति और व्यवस्था स्थापित रहेगी। यदि इस प्रकार के परिवर्तनों के कारण अन्य राज्यों के लिये तुरन्त

आतंक उत्पन्न होने की सम्भावना है तो शक्तियां सम्मिलित रूप से यह प्रतिज्ञा करती हैं कि वे शान्ति के साथ अथवा आवश्यकता की दशा में तलवार के बल पर अपराधी राज्यों को महान् संमैत्री में वापस लाने का प्रयत्न करेंगी।" नियमानुसार ग्रेट ब्रिटेन ने इस घोषणा में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। कॉस्लरे को दूसरी बार चतुर्मुखी संमैत्री के प्रतिक्रियावादी सदस्यों की नीति के विरुद्ध प्रतिरोध उपस्थित करना पड़ा। उसने स्पष्ट रूप से कह दिया कि यदि उसके अनुसार कार्य किया गया तो सब लोग यही कहेंगे कि यूरोप के शासकों ने प्रजा की स्वाधीनता को कुचलने के लिये एक संस्था बना ली है। इसके अतिरिक्त यह कैसे हो सकता कि कोई भी महाशक्ति अन्य शक्तियों की सेनाओं को अपने देश में प्रवेश करने की आज्ञा दे। विशेषकर ऐसी दशा में जब आवश्यकता के होने अथवा न होने का निर्णय उस देश पर निर्भर न होकर उन शक्तियों पर निर्भर होगा? सारांश यह कि ग्रेट ब्रिटेन ने इस नई पुलिस व्यवस्था में, जिसके लिये मैटर्निक और ज़ार प्रयत्नशील थे, सम्मिलित होने से साफ़ इन्कार कर दिया। यदि वह ऐसा न करता तो आवश्यक रूप से यूरोप का उन्नीसवीं शताब्दी का इतिहास लोकतन्त्र तथा संगठन के स्थान में प्रतिक्रियावाद तथा अत्याचार का इतिहास बन जाता।

कांग्रेस का चौथा और अन्तिम समारोह इटैली के विख्यात नगर वैरोना में हुआ। इसमें यूरोप की महाशक्तियों ने सबसे अधिक ध्यान स्पेन की ओर आकर्षित किया। वहाँ सन् १८२० ई० में प्रजा की ओर से एक क्रान्ति की गई थी जिसके कारण वहाँ के बादशाह सातवें फर्डिनेंड को धार्मिक न्यायालय (Inquisition) को समाप्त कर देना पड़ा था और एक संविधान की घोषणा भी करनी पड़ी थी।

वैरोना की कांग्रेस, १८२२ ई०

इस उदार कार्य-प्रणाली के विरुद्ध उसने शासकों से सहायता की प्रार्थना भी की थी। यह उपरोक्त बादशाह की चाल थी जिसे उसकी प्रजा न समझ सकी थी। फ्रांस में इस समय अट्ठारहवां लुई शासन कर रहा था। इसलिये स्वाभाविक रूप से उसके प्रतिनिधि ने वैरोना की कांग्रेस में स्पेन के बूरबन शासन के प्रति सहानुभूति प्रकट की एवं अन्य शक्तियों से भी उसके लिये सहायता का इच्छुक हुआ। आस्ट्रिया, प्रशा तथा रूस, जो निरंकुश शासकों को सहायता देने का दम भरते थे, तुरंत इसके लिये तत्पर हो गये। इसके विरुद्ध ग्रेट ब्रिटेन का प्रतिनिधि वेलिंगटन अपने सिद्धान्त पर स्थिर रहा और स्पेन के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने से साफ़ इन्कार कर दिया। परिणाम यह हुआ कि महाद्वीप की शक्तियों से ग्रेट ब्रिटेन का स्पष्ट रूप से मतभेद हो गया और जब फ्रांस की सेना प्रीनीज़ को पार करके स्पेन की ओर बढ़ी तो यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था लड़खड़ा कर धराशायी हो गई। उक्त कांग्रेस के प्रारम्भ होने के

पूर्व कॉस्लरे के स्थान पर कैनिंग ब्रिटिश द्वीपसमूह का बाह्य मन्त्री नियुक्त हो गया था। उसने यूरोपीय व्यवस्था के समाप्त हो जाने पर हर्ष प्रकट किया और कहा, "वैरोना में उपस्थित समस्या ने एक तथा विभक्त न होने वाली संस्था को उसी प्रकार तीन विभिन्न भागों में विभाजित कर दिया है जिस प्रकार इंग्लैंड, फ्रांस और रूस के संविधान एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं। प्रत्येक राष्ट्र को अपनी चिन्ता करनी चाहिये और ईश्वर को हम सब की चिन्ता करनी चाहिये।"

फ्रांस की सहायता से स्पेन में निरंकुश शासन पुनः स्थापित कर दिया (सन् १८२३ ई०)। अब यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि स्पेन के उपनिवेशों के साथ जो अधिकतर अमेरिका में स्थित थे क्या व्यवहार किया जाय। ब्रिटिश द्वीपसमूह तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका दोनों इसके विरुद्ध थे कि यूरोप के प्रतिक्रियावादी देश अमेरिका में हस्तक्षेप करें। इस सम्बन्ध में द्वितीय के अध्यक्ष मुनरो ने सन् १८२३ ई० में एक विख्यात सिद्धान्त प्रकाशित किया, जो उसके नाम पर 'मुनरो का सिद्धान्त' (Monroe Doctrine) कहलाता है। इसके द्वारा यह बात स्पष्ट कर दी गई कि यदि मित्र राष्ट्र (आस्ट्रिया, प्रशा और रूस) अपनी नीति पद्धति के अनुसार अमेरिका में व्यवहार करने का प्रयत्न करेंगे तो इस से वहां की शान्ति और सुरक्षा के लिए भय तथा आतंक उत्पन्न हो जायेगा और ऐसी दशा में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का शासन यह परिणाम निकालेगा कि उसके साथ शत्रुता का व्यवहार किया गया है। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसका महत्व अत्यन्त अधिक है। इसके कारण न केवल स्पेन के उपनिवेशों वरन् अमेरिका के अन्य देशों की स्वाधीनता भी अक्षुण रही तथा वे उन्नति के मार्ग पर यथा पूर्व अग्रसर होते रहे। मुनरो के सिद्धान्त से ब्रिटिश द्वीपसमूह की सरकार को पूर्ण सहानुभूति थी। उसने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से मिलकर स्पेन के उपनिवेशों की स्वाधीनता को स्वीकार किया। इस प्रकार कैनिंग ने स्पेन पर किये गये आक्रमण का प्रतिउत्तर दिया। "प्राचीन संसार के संतुलन को अक्षुण रखने के लिए मैंने एक नवीन संसार को जन्म दिया है।"

मुनरो का सिद्धान्त, १८२३ ई०

यूरोप की जिस अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का उल्लेख यहां किया गया है, वह उन्नीसवीं शताब्दी में इस कोटि की प्रथम और अन्तिम व्यवस्था थी। इसके पश्चात् बीसवीं शताब्दी में यूरोप के राष्ट्रों ने अमेरिका से मिलकर इस ओर ध्यान दिया और उन्हें पूर्व की अपेक्षा अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई। प्रथम के सफल न होने का सब से बड़ा कारण यह था कि ब्रिटिश द्वीपसमूह ने उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर

पतन के कारण

लिया था। दूसरा प्रधान कारण यह था कि महाशक्तियां सब के लाभ के लिए अपने लाभ को दृष्टि से ओझल न कर सकीं। हमें इसमें सन्देह है कि ब्रिटिश द्वीप समूह ने कभी भी इस युग की यूरोपीय व्यवस्था के आदर्शों से पूर्ण सहानुभूति दिखलाई थी। उसकी दृष्टि में शोमों की सन्धि की भांति 'चतुर्मुखी संमैत्री' का भी यही महत्व था कि वह यूरोप के नवीन प्रबन्ध को क्रांतिकारी फ्रांस से सुरक्षित रखने के लिए बनाई गई थी। इसके विरुद्ध निरंकुश शासन उसे रूढ़िवाद की सब से सुदृढ़ ढाल अथवा सभी प्रकार के प्रयत्नों के विरुद्ध, जिनका आदर्श उन्नति करना था, सब से सुदृढ़ दीवार में बदलना चाहते थे। ब्रिटिश नीति पद्धति का आदर्श यह था कि स्वाधीन राज्यों के आन्तरिक झगड़ों में हस्तक्षेप न किया जाय। कॉस्लरे और कैनिंग दोनों ने इस पर ज़ोर दिया था। परन्तु प्रथम इसके विरुद्ध था कि अन्य शक्तियों से बिल्कुल असहयोग ग्रहण कर लिया जाय। परन्तु उसके उत्तराधिकारी कैनिंग का सिद्धान्त इसके विपरीत था। अतएव वह मैटर्निक की दृष्टि में कंटक था। मैटर्निक का विचार था कि "वह एक अपशकुन वाला पुच्छल तारा है जिसे ईश्वर ने क्रोधावेश में यूरोपीय आकाश पर प्रकट किया है।"

वैरोना के सम्मेलन के पश्चात् वर्तमान शताब्दी को छोड़कर यूरोपीय शक्तियों ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न कभी नहीं किया परन्तु वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में वे पूर्ण रूप से "अपनी अपनी ढपली और अपना अपना राग" के सिद्धान्त का भी पालन न कर सके। उन्नीसवीं शताब्दी में कई बार ऐसे अवसर आये जब पूर्व के प्रतिक्रियावादी शासनों को पश्चिम के संवैधानिक शासनों के साथ एक स्थान पर बैठकर महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार करना पड़ा। इनमें से तीन समस्यायें उल्लेखनीय हैं,—(१) पूर्वीय समस्या, (२) बेल्जियम की स्वाधीनता की समस्या (३) पालैंड की समस्या। इनको हल करते समय भी यूरोप के राष्ट्रों ने स्वतंत्रता से काम लिया और निजी हित को सर्वदा ध्यान में रक्खा। अतएव उनका प्रयत्न सन् १८१५ ई० की होली ऐलायन्स और वर्तमान शताब्दी के राष्ट्र संघ से भिन्न था।

दूसरा अध्याय

लोकतंत्र तथा राष्ट्रीयता की शिथिल धारायें

(१८१५-१८३०)

वीयेना के महासम्मेलन के पश्चात् कुछ समय के लिये रूढ़िवाद का बोल बाला रहा। अस्ट्रिया के मंत्री मैटर्निक ने उदार विचार के लोगों (Liberals) का सामना इतने प्रयत्न और कार्यशीलता से किया कि लोकतंत्र तथा राष्ट्रीयता की धारायें जिनका उद्गम स्थान फ्रांस था बहुत ही धीरे धीरे आगे बढ़ सकीं। ऐसा प्रतीत होता था मानो राजनैतिक क्षेत्र का यह अद्वितीय खिलाड़ी अपनी प्रतिक्रियावादी नीति में सफल हो गया है। फ्रांस में अठारहवाँ लूई पुराने बूरबन झंडे की छाया में शासन करने लगा। उसका उत्तराधिकारी दसवाँ चार्ल्ज़ उस से भी अधिक प्रतिक्रियावादी तथा रूढ़िवाद का समर्थक था। सन् १८२० ई० तक स्पेन के उदार विचार के निवासी भी दबे रहे। रूस में अत्यन्त प्राचीन शासन पद्धति चलती रही। अस्ट्रिया का बादशाह फ्रांसिस प्रथम और प्रशा का बादशाह फ्रेड्रिक विलियम तृतीय दोनों पुराने ढंग की नीति प्रणाली के अनुसार दृढ़ता से शासन करते रहे। इंग्लैंड जैसे प्रगतिशील देश में भी जिसे हम लोकतंत्र और राष्ट्रीयता का गढ़ कह सकते हैं, शासन को सन् १८३२ ई० तक टोरी दल के सिद्धान्तों का आश्रय लेना पड़ा। सारांश यह कि यूरोप के प्रत्येक देश में उदार विचार के लोग दबे रहे और लोकतंत्र तथा राष्ट्रीयता की धाराओं के मार्ग में प्रबल अवरोध रहा। परन्तु यह दशा अधिक समय तक स्थापित न रह सकी। शीघ्र ही तिमिराच्छादित आकाश में प्रकाशपुञ्ज दृष्टिगोचर हुआ और अस्ट्रिया के प्रतिक्रियावादी मन्त्री मैटर्निक के अतिरिक्त भी यूरोप के देशों में कुछ समय पश्चात्

लोकतंत्र, राष्ट्रीयता तथा प्रगतिवाद की गौरवपूर्ण विजय हुई। इसके परिणाम स्वरूप रूढ़िवाद एवं प्रतिक्रियावाद का दुर्ग बालू की प्राचीर की भाँति ढह गया।

फ्रांस में बूरबन वंश का लौटना तथा सन् १८३० ई० की राज्यक्रांति

पहले की भाँति अबकी बार भी लोकतन्त्र की लहर फ्रांस से आगे बढ़ी। जैसा कि बतला चुके हैं, सन् १८१४ ई० में मित्र राष्ट्रों ने सोलहवें लूई के छोटे भाई अठारहवें लूई को फ्रांस के सिंहासन पर सुशोभित कर दिया था। वह एक ऐसा व्यक्ति था जिसे हम रूढ़िवाद का समर्थक कह सकते हैं। वह प्रत्यक्ष रूप से सन् १७८६ ई० की राज्यक्रांति का उपहास कर चुका था। अन्य सहस्रों व्यक्तियों की भांति वह भी क्रांति के युग में स्वदेश के बाहर चला गया था और लगभग बीस वर्ष तक अन्य लोगों के साथ राजसिंहासन प्राप्त करने के विचार से षड़यंत्र करता रहा था। परन्तु जब वह फ्रांस के राजसिंहासन पर बिठलाया गया तो राष्ट्र ने उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। उसके विरुद्ध न तो सामूहिक रूप से किसी प्रकार की अप्रसन्नता का प्रदर्शन किया गया और न उसका किसी प्रकार से संगठित विरोध ही किया गया। कारण यह था कि फ्रांसीसी राष्ट्र अन्तरात्मा से राजतंत्र का प्रेमी था, और शान्ति के साथ नैपोलियन के निरंकुश शासन के अधीन जीवन व्यतीत कर चुका था।

अठारहवाँ लूई, १८१४-१८२४ ई०

अठारहवें लूई में कई दोष थे, किन्तु उसने कभी राज्यक्रांति और नैपोलियन के वरद प्रसादों को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया। वह अपने छोटे भाई काउंट आफ् आर्त्वा (Count of Artois) के समान कट्टर पन्थी न था। वह वाल्तेयर तथा अन्य दार्शनिकों का पारायण कर चुका था। छः वर्ष तक इंग्लैंड में रहने के कारण उसे वहां की उदार संस्थाओं का ज्ञान था। उसकी आयु ६० वर्ष की थी। वह अधिक स्थूल काय था और अधिकतर रोगग्रसित भी रहता था। इन सब बातों का फल यह हुआ कि उसने फ्रांस में निर्हस्तक्षेपी नीति का अनुकरण किया और नैपोलियन के प्रीफेक्टों और छोटे प्रीफेक्टों को, उसकी क़ानूनी किताबों को, उसके चर्च को जिसमें सन् १८०१ ई० के कन्कार्डेट (Concordat) के अनुसार सुधार कर दिया गया था,

सन् १८१४ ई० का संवैधानिक अधिकारपत्र

उसके 'प्रतिष्ठा मंडल' (Legion of Honour) तथा उसके अत्यन्त केन्द्रीय विश्वविद्यालय को, उसके बनाये हुये अभिजातवर्ग (Nobility) तक को अक्षुण्ण रक्खा। इसके अतिरिक्त उसने जून सन् १८१४ ई० में एक संवैधानिक अधिकारपत्र भी स्वीकार किया, जिसका संक्षिप्त वर्णन इसके पूर्व किया जा चुका है। इसमें संदेह नहीं कि उपरोक्त अधिकारपत्र में इस सिद्धान्त पर ज़ोर दिया गया था कि समस्त अधिकारों का आदि स्रोत बादशाह है, न कि उसकी प्रजा। तथापि बहुत सी बातों में वह अंगरेज़ी संविधान से समानता रखता था। उदाहरणार्थ, कानून निर्मित करने का अधिकार बादशाह तथा दो धारा सभाओं को प्रदान किया गया था। प्रथम, उच्च सभा जिसमें बादशाह द्वारा नियुक्त किये गये कुलीन बैठते थे। दूसरी, निम्न सभा जिसमें धनी नागरिकों द्वारा निर्वाचित सदस्य बैठते थे। विधान मण्डल में केवल बादशाह की ओर से विधान प्रेषित किये जा सकते थे। अधिकारपत्र द्वारा यह भी निश्चित कर दिया गया था कि उपरोक्त सभाओं का अधिवेशन प्रति वर्ष हुआ करेगा, क़ानून की दृष्टि में सब समान होंगे, भाषण और प्रकाशन की स्वतन्त्रता होगी, सब को सरकारी पद प्राप्त करने का अधिकार समान होगा तथा सबों को धार्मिक और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। ये मनुष्य के जन्म सिद्ध अधिकार हैं जो वर्तमान काल में समस्त प्रगतिशील देशों में उपलब्ध हैं। सन् १८१४ ई० के अधिकारपत्र की सब से प्रमुख विशेषता यह थी कि उसके द्वारा दीर्घकालीन परम्परायें समाप्त कर दी गईं थीं एवं क्रांति तथा नैपोलियन के समय की प्रथाओं ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया था। उनकी त्रुटियों और दोषों के विपरीत भी हम यह दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि उपरोक्त अधिकारपत्र के द्वारा फ्रांस में संवैधानिक राजतंत्र तथा उत्तरदायी शासन की स्थापना आवश्यक हो गई थी। बादशाह और प्रजा के बीच सुन्दर सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हो गया एवं देश के समस्त उदार विचार रखने वाले मनुष्यों को संतोष प्राप्त हो गया।

अठारहवें लुई के अधिकारपत्र से सब लोग संतुष्ट न हुये थे। गत राज्यक्रांति के कारण वहां के निवासियों ने राजनैतिक विषयों में रुचि रखना प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु स्वाभाविक रूप से वे गम्भीर विषयों पर एकमत न होते थे। बादशाह के अधिकारों को किस सीमा तक परिमित किया जाय, निर्धन मनुष्यों को मतदान का अधिकार प्रदान किया जाय अथवा नहीं, पादरियों और अभिजातवर्ग का समाज में क्या स्थान होना चाहिये, ये तथा कई अन्य महत्वपूर्ण विषय ऐसे थे जिनके सम्बन्ध में वे एकमत न थे। अतएव इस काल में फ्रांस में कई राजनैतिक दलों का

राजनैतिक दल

प्रादुर्भाव हुआ। उदाहरणार्थ (अ) राजतन्त्र के उग्रवादी समर्थक (Ultra-Royalists) जिनमें अधिकतर वे पादरी और अभिजातवर्ग के लोग सम्मिलित थे जो राज्यक्रांति के समय फ्रांस को त्याग कर बाहर चले गये थे, किन्तु अब लौट आये थे। उनकी अभिलाषा थी कि गत पच्चीस वर्षों में जो उत्तम कार्य किये गये थे वे सब स्थगित कर दिये जायें एवं समाज व शासन की दीर्घकालीन व्यवस्था पुन: स्थापित कर दी जाय। इनका पथप्रदर्शक बादशाह का छोटा भाई काउण्ट आफ़ आर्त्वा (Count of Artois) था। उनकी संख्या कम अवश्य थी, परन्तु वे शांतिपूर्वक बैठने वाले व्यक्ति न थे। शासन पर भी उनका यथेष्ट प्रभाव था। (ब) राजतन्त्र के नरम दल के समर्थक (Moderate Royalists) जिन्होंने गत् राज्यक्रांति और नेपोलियन से कुछ शिक्षा ग्रहण की थी। वे इस बात को भली भांति समझते थे कि सोलहवें लूई और मेरी एन्तोयनेत का समय लौटकर नहीं आ सकता। अतएव उनकी आकांक्षा थी कि सब लोग चार्टर का पालन हृदय से करें। एक ओर तो वे प्रतिक्रियावादी कुलीनों से कहते थे कि क्रांति के वरद परिणामों को स्वीकार कर लो। दूसरी ओर वे जनसाधारण से कहते थे कि राजतन्त्र का विरोध न करो। दोनों प्रकार के, राजतन्त्र के समर्थक सम्मिलित रूप से संख्या में अत्यन्त अधिक थे। अत: सन् १८१५ ई० के चुनाव में उन्हीं को सफलता प्राप्त हुई। (स) उदार विचार के मनुष्य (Liberals)—ये लोग सम्राट के विरुद्ध न थे परन्तु उनकी इच्छा थी कि जनता को सन् १८१४ ई० के चार्टर के अतिरिक्त कुछ अन्य अधिकार प्रदान किये जायें। उनकी अभिलाषा थी कि मतदान के लिये योग्यता कम कर दी जाय तथा बादशाह विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों के परामर्श से शासन कार्य करे। (द) बोनापार्ट के दल वाले (Bonarpartists)—इनमें नेपोलियन के साथी सैनिक तथा अफ़सर आदि, जो उसके साथ युद्ध में ख्याति प्राप्त कर चुके थे, सम्मिलित थे। ये लोग अठारहवें लूई के लौटने के विरुद्ध थे तथा नेपोलियन बोनापार्ट के पुत्र नेपोलियन द्वितीय* को राजसिंहासन पर बिठलाना चाहते थे। (य) गणतन्त्रवादी (Republicans)—ये लोग बूरबन वंश तथा नेपोलियन दोनों के विरुद्ध थे और चाहते थे कि सन् १७९२ ई० का गण-राज्य पुन: स्थापित कर दिया जाय। प्रथम तीन दल पूर्णरूप से अठारहवें लूई के समर्थक थे अथवा कुछ शर्तों पर उसके शासन को

[illegible]

में उसकी मृत्यु हुई।

स्वीकार करने को उद्यत थे। परन्तु अन्तिम दोनों दल किसी भी शर्त पर उसे सहन न करना चाहते थे।

जब तक अठारहवाँ लूई जीवित रहा उसके पक्ष के दलों की उन्नति होती रही। इसमें सन्देह नहीं कि वह पूर्णरूप से बादशाह के दैवी अधिकारों में विश्वास करता था, किन्तु वह अवैधानिक कार्य करके स्वयं को संकट में न डालना चाहता था। जब वह सन् १८२४ ई० में मरा तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके शासनकाल में बूरबन वंश ने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करली है। उसका उत्तराधिकारी दसवाँ चार्ल्ज़ उससे भिन्न था। वह स्पष्ट कहता था कि

दसवां चार्ल्ज़, १८२४–१८३० ई०

इंग्लैंड के बादशाह की भांति शासन करने से तो उत्तम है कि मैं लकड़ी काटने का पेशा ग्रहण कर लूं। राजसिंहासन पर बैठते ही उसने इस बात का प्रयत्न आरम्भ कर दिया कि उसको कुलीनों तथा पादरियों सहित वे सब अधिकार पुन: प्राप्त हो जायें जो उन्हें राज्यक्रांति के पूर्व उपलब्ध थे। विशेष रूप से उसकी कृपादृष्टि पादरियों पर थी। सन् १८२६ ई० में उसने गिर्जाघरों के सम्बन्ध में एक आलोचना के योग्य क़ानून बनाया। इसको व्यवहार में कभी नहीं लाया गया तथा उसके निर्मित किये जाने का वास्तविक उद्देश्य भी केवल यह था कि जनता को यह मालूम हो जाय कि शासन की दृष्टि में चर्च का यथेष्ट सम्मान है। तथापि जनता में बड़ी बेकली फैली। एक बिशप विश्वविद्यालय का प्राध्यापक बना दिया गया तथा पादरियों से कहा गया कि अध्यापकों पर कड़ी दृष्टि रक्खें। फ्रांस में सहस्रों मौंक आगये थे और वे तथा जेज़ुइट्स (Jesuits) अथवा ईसाई धर्म के प्रचारक शासन की सहायता तथा पक्षपातपूर्ण दृष्टि से अपने काम में बड़ी कार्यशीलता दिखला रहे थे। दसवें चार्ल्ज़ ने एक आदेश प्रेस पर कड़ी दृष्टि रखने के लिये प्रकाशित किया। इसका वास्तविक उद्देश्य यह था कि शासन के नवीन कार्यों का विरोध न हो। शासन के नवीन ढंग को देखकर ड्यूक आफ़ वेलिंगटन से यह कहे बिना न रहा गया कि दसवाँ चार्ल्ज़ एक ऐसा शासन स्थापित कर रहा है जो पादरियों पर आश्रित है तथा जिसका ध्येय पादरियों को लाभ पहुंचाना है।

अभिजातवर्ग से भी न रहा गया। जब उसने देखा कि पादरी शासन की सहायता से निजी शक्ति में वृद्धि कर रहे हैं तो उसने भी खोई हुई जागीरों को पुन: प्राप्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु बहुत समय पूर्व वे टुकड़ों में बेच दी गई थीं। अस्तु उनको लौटाना कठिन था। यदि ऐसा किया भी जाता तो सहस्रों कृषक और जमींदार भूमि रहित हो जाते तथा शासन के विरुद्ध एक नवीन शक्तिशाली

राजनैतिक दल निर्मित हो जाता। ऐसी दशा में उन्होंने एक अरब फ्रैंक क्षतिपूर्ति के स्वरूप में स्वीकार करके संतोष किया।

जौलाई मास के अध्यादेश
२५ जौलाई १८३० ई०

शासन की इस कार्यप्रणाली के कारण, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, विरोधी दलों में पर्याप्त शक्ति आगई। सन् १८२७ ई० के निर्वाचनों में उन्हें विजय प्राप्त हुई, किन्तु चार्ल्ज़ ने अपना ढंग न बदला। वह राजतन्त्र के उग्रवादी समर्थकों के दल के मंत्रियों की सहायता से शासन का कार्य चलाता रहा। इनमें अन्तिम मंत्री पोलीनयाक (Polignac) था। वह दीर्घकालीन व्यवस्था (Ancien Regime) का उग्रवादी समर्थक था। उसकी नियुक्ति का यह अर्थ था कि चार्ल्ज़ ने समस्त राष्ट्र को चुनौती दी है और बीच के अन्तर को बढ़ाकर खाई के समान कर दिया है। नवीन मन्त्री ने जब परिस्थिति को क़ाबू के बाहर देखा तो वह वाह्यनीति में सफलता उपलब्ध करके प्रजा की आंखों में चकाचौंध उत्पन्न करने का प्रयत्न करने लगा। यह उपाय सन् १७८९ ई० की राज्यक्रांति के युग में तो सफल प्रमाणित हो चुका था, परन्तु अब समय दूसरा था। अब पोलीनयाक इस उपाय से आन्तरिक समस्याओं को नहीं सुलझा सकता था। ऐसा करने के लिये उसने उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा भी न की। इसके पूर्व कि लोहा काफ़ी गरम हो, उसने उसे पीटना प्रारम्भ कर दिया। संसद के उदार दल के सदस्यों ने अन्य विरोधी दलों से मिलकर एक ऐसे मन्त्रिमंडल के प्रति घोर विरोध प्रकट किया था जिसके पक्ष वालों की संख्या उसमें कम थी। परन्तु सम्राट ने इसे अपना अपमान समझकर दोनों सभाओं को भंग कर दिया (सन् १८३० ई०)। इसके बाद जो निर्वाचन किये गये उनमें उसके पक्ष वालों की संख्या पहले से भी पचास कम होगई। अतएव शासन के समर्थकों में प्रकट रूप से कमज़ोरी आगई। इससे शिक्षा ग्रहण न करके चार्ल्ज़ ने २५ जौलाई को तीन अध्यादेश (Ordinances) प्रकाशित किये। प्रथम से गत् निर्वाचन व्यर्थ कर दिये गये तथा पुन: निर्वाचन किये जाने का आदेश दिया गया। द्वितीय से प्रेस की स्वतन्त्रता अपहरण कर ली गई तथा समाचारपत्रों के प्रकाशन के लिये सरकारी स्वीकृति अनिवार्य कर दी गई। तीसरे अध्यादेश से मतदान के लिये भूमिकर का प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस प्रकार व्यापारी तथा उद्योग धन्धे वाले इस आवश्यक अधिकार से वंचित कर दिये गये। उक्त अध्यादेशों के प्रकाशित होने से संवैधानिक शासन के अन्तिम चिह्न भी लुप्त हो गये और फ्रांसीसी राष्ट्र के लिये ऐसी कोई असम्भावना न रही कि दीर्घकालीन निरंकुश शासन पद्धति, जिसका राज्यक्रांति द्वारा अन्त कर दिया गया था, पुनः स्थापित न की जायेगी।

दूसरे दिन समाचारपत्रों के षड्यंत्र से पेरिस के निवासियों ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया। पेरिस ने विगत राज्यक्रांति के दिनों में भी राष्ट्र का नेतृत्व किया था और अब की बार भी क्रांति करने तथा उसमें सफलता प्राप्त करने का समस्त श्रेय उसी के निवासियों को प्राप्त है। समाचारपत्रों के सम्पादकों ने तो केवल क्रांति का बिगुल बजाया था। उसको सफलता के निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचाने का श्रेय गण-राज्य के समर्थकों को प्राप्त है। उन्होंने इसके पूर्व ही पेरिस में गुप्त समितियाँ स्थापित कर ली थीं। अब उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिये उपयुक्त स्थानों पर मार्गों और गलियों में मोर्चे खड़े किये तथा सर्वसाधारण को तैयार होने का आदेश दिया। यह सब ज्ञात करके मंत्रियों को बड़ा आश्चर्य हुआ किन्तु उनका कुछ वश न चला। देश के वीरों ने ओतेल दि वील में, जहाँ सन् १७८९ की क्रांति के युग में पेरिस के कम्यून के अधिवेशन हुआ करते थे, पुराने वयोवृद्ध नेता लाफ़ेयत की अध्यक्षता में एक अल्पकालीन सरकार स्थापित कर ली। जब दसवें चार्ल्ज़ ने यह सुना तो उसके होश उड़ गये। अब वह सावधान हुआ। उसने २५ जोलाई के अध्यादेशों को स्थगित करने का वचन दिया। परन्तु अब क्या हो सकता था? उसने यह भी प्रयत्न किया कि राजसिंहासन पर अपने पोते को बिठला दे, परन्तु इसमें भी उसे सफलता नहीं मिली। जब कुछ करते न बना तो वह स्वदेश को नमस्कार करके 'सफ़र को चला गया।'

सन् १८३० ई० की राज्यक्रांति

यह फ्रांस की दूसरी राज्यक्रांति थी। इतिहास में उसका विशेष महत्व है। प्रकट रूप से तो उसका परिणाम केवल यह हुआ कि बूरबन वंश की बड़ी शाखा का स्थान छोटी शाखा ने ग्रहण कर लिया अर्थात् दसवें चार्ल्ज़ के स्थान पर लूई फिलिप फ्रांस में शासन करने लगा। परन्तु वास्तव में इसका महत्व इससे अधिक है। क्रांति के लिये गण-राज्यवादियों ने खून पसीना एक कर दिया था, परन्तु वे फ्रांस में गण-राज्य स्थापित करने में सफल न हुये। यदि इस समय वहां उसकी स्थापना कर दी जाती तो वह यूरोप की शक्तियों के लिए चुनौती के समान प्रमाणित होता और मित्र राष्ट्र जो विगत राज्यक्रांति को भूले न थे, तुरन्त उसका अन्त कर देते। ऐसी परिस्थिति में उसके समर्थकों ने स्वयं को विवश पाया। उन्होंने संसद में राजतंत्र के विरुद्ध प्रतिरोध तो अवश्य प्रकट किया परन्तु उन्हें देश में सहायता और सहानुभूति के लक्षण प्रतीत न हुये। अस्तु उदार दल के सदस्यों ने फ्रांस के भाग्य का निर्णय अपने हाथों में ले लिया। उन्होंने एक ऐसा सुन्दर मार्ग ग्रहण किया कि फ्रांस के निवासी भी प्रसन्न हो गये तथा

मित्र राष्ट्रों के आक्रमण का भय भी न रहा। उन्होंने राजसिंहासन पर लूई फ़िलिप ड्यूक आफ़ ओर्लियंज़ को बिठलाया, जो बूरबन वंश से होने के अतिरिक्त भी क्रांतिकारियों की ओर से सन् १७९२ ई० में जेमाप (Jemappes) के युद्ध में भाग ले चुका था। सन् १८३० ई० की राज्यक्रांति से देश के संविधान में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। उसके करने वाले अथवा उसके समर्थक सर्वसाधारण के प्रतिनिधित्व के लिये भी कुछ न कर सके। वास्तव में यह एक आश्चर्य का विषय है। बादशाह से अध्यादेशों के निर्माण का अधिकार ले लिया गया एवं संसद को विधान प्रेषित करने का अधिकार भी उपलब्ध हो गया। प्रेस पर से प्रतिबन्ध हटा दिये गये तथा कैथोलिक धर्म राज्यधर्म न रहा। किन्तु जनसाधारण को विधान-मण्डल के लिये प्रतिनिधि भेजने का अधिकार न मिल सका। यह अधिकार केवल अच्छी हैसियत के व्यक्तियों को प्राप्त था, परन्तु वह भी प्रकट रूप से सीमित रहा।

जनता के जन्मसिद्ध अधिकार

इसके अतिरिक्त भी कि सन् १८३० ई० की क्रांति से फ्रांस की साधारण जनता को मतदान का अधिकार न मिल सका था हम उसके महत्व को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकते। इसमें सन्देह नहीं कि सन् १६८८ ई० की भाँति सन् १८३० ई० की क्रांति से भी कोई विशेष प्रकार के संसदीय अथवा आर्थिक परिवर्तन घटित न हुये थे और इनके बिना लोकतंत्र के सिद्धान्त का कुछ अर्थ नहीं होता, किन्तु इंग्लैंड और फ्रांस दोनों देशों में बादशाह के 'ईश्वर प्रदत्त शासन' का स्थान 'जनता के जन्मसिद्ध अधिकारों' ने ले लिया था। विलियम तृतीय की भाँति लूई फ़िलिप के शासन की सारी शक्ति भी जनता पर आश्रित थी। बादशाह और जनता के बीच संघर्ष होने की दशा में विजय-लक्ष्मी जनता के हाथ में रहती। "बादशाह हमारे अधिकारों का ध्यान रखेगा क्योंकि वह हमारे कारण ही सफल हो सकेगा।" फ्रांस ने सदा के लिए विधानवाद (Legitimacy) के सिद्धान्त को जिन पर वीयेना के महासम्मेलन में बड़ा ज़ोर दिया गया था, अस्वीकार कर दिया था। राजतंत्र के उग्रवादी समर्थकों का कार्यक्रम भी सदा के लिये विफल हो गया था। पादरियों तथा अभिजातवर्ग ने जो कुछ भी शक्ति सन् १८१४ ई० के पश्चात् पुनः प्राप्त की थी उसका भी अन्त हो गया। भविष्य में लोकतंत्र का भवन अत्यन्त सुदृढ़ नींव पर निर्मित किया जा सकता था। अधिकारपत्र का रूप भी परिवर्तित हो गया। अब वह कोई ऐसी वस्तु न थी जिसे बादशाह की निर्बलता के कारण बलपूर्वक प्राप्त किया गया हो तथा जिसे वह स्वेच्छापूर्वक स्थगित कर सकता हो वरन् उसने राष्ट्र के

जन्मसिद्ध अधिकारों का रूप धारण कर लिया था जिसे संसार की कोई शक्ति भी उस से पृथक न कर सकती थी।

बेल्जियम का स्वाधीन देश

फ्रांसीसी क्रांति की ज्वाला उसके पड़ोसी बेल्जियम में भी पहुंची और वहां उसकी पृथकता के प्रश्न ने शीघ्र ही एक गम्भीर समस्या का रूप धारण कर लिया

बेल्जियम तथा हालैंड का एकीकरण १८१५ ई०

वीयेना की कांग्रेस में जो निर्णय किये गये थे उनके अनुसार बेल्जियम तथा हालैंड एक में मिला दिये गये थे। इसके पूर्व सौ वर्ष तक ये दोनों देश एक दूसरे से पृथक रह चुके थे। जब डच ने स्पेन के बादशाह फिलिप द्वितीय के विरुद्ध युद्ध करके स्वाधीनता प्राप्त कर ली तो बेल्जियम का देश उसके साम्राज्य में सम्मिलित रह गया था (सन् १६०६ ई०)। कुछ समय के पश्चात् उस पर आस्ट्रिया का और फिर क्रांति के बीच उस पर फ्रांस का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। जब नैपोलियन का साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया तो कास्लरे के मत से बेल्जियम और हालैंड सम्मिलित कर दिये गये। मित्र राष्ट्रों का विचार था कि फ्रांस के उत्तर में एक सुदृढ़ राज्य स्थापित हो जाय जिससे यदि वहाँ कोई नया तूफ़ान उठे तो संगठित राज्य उसका सामना बिना किसी दूसरे की सहायता के स्वयं कर सके। परन्तु उपरोक्त देशों का एकीकरण राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के बिल्कुल विरुद्ध किया गया था। उसके द्वारा दो ऐसे देश मिला दिये गये थे जो विभिन्न नस्लें, धर्म, भाषायें तथा परम्परायें रखते थे। परन्तु इस चित्र का एक दूसरा रूप भी था। एकीकरण से बेल्जियम के निवासियों को अत्यधिक लाभ हुआ था। वे अब हालैंड के व्यापार तथा विस्तृत वैदेशिक साम्राज्य से लाभ उठा सकते थे। उन्होंने इस स्थिति से खूब लाभ उठाया भी। अतएव उनके नगर लियेज़ (Liege) और गैंट (Ghent) आदि धन सम्पन्न व्यापार तथा उद्योग के केन्द्र बन गये। यदि बुद्धिमत्ता से काम लिया जाता तो दोनों देश सम्मिलित रह सकते थे। यदि ऐसा होता तो उन्हें आने वाली अन्तर्राष्ट्रीय कठिनाइयों का सामना करने में बड़ी सुविधा होती।

कई कारण ऐसे थे जिनसे बेल्जियम निवासी सन् १८१४ ई० के प्रबन्ध से सन्तुष्ट न थे। स्टेट्स जनरल में, जो दोनों का सम्मिलित संसद था, इसके होते हुये भी कि बेल्जियम की जनसंख्या हालैंड की

बेल्जियम निवासियों के असंतुष्ट होने के कारण

जनसंख्या से अत्यन्त अधिक थी, दोनों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त था। शासन के उच्च पदों पर भी अधिकतर डच अधिकार किये हुये थे। यह एक ऐसा

विषय था जिसका बेल्जियम निवासी घोर विरोध कर सकते थे। किन्तु वहां के उग्रवादी पादरियों का धार्मिक स्वतंत्रता के विरुद्ध आवाज़ उठाना कोई अर्थ नहीं रखता। एक कठिन प्रश्न भाषा के सम्बन्ध में भी था। बेल्जियम के निवासी अधिकतर डच भाषा बोलते थे। अतएव वह स्वाधीन बेल्जियम की भाषा के रूप में तो स्वीकार की जा सकती थी, किन्तु यह बराबर अन्याय था कि संयुक्त शासन ने उसे राजकीय भाषा का पद प्रदान करके उसे समस्त देश के लिये आवश्यक कर दिया था। प्रेस के साथ भी बुरा व्यवहार किया गया। संविधान के विरुद्ध यह प्रयत्न भी किया गया कि बेल्जियम निवासी शासन के विरुद्ध स्वाधीनतापूर्वक अपने विचार प्रकट न करें। इस से शासन का विरोध और भी अधिक उग्र हो गया था। जब उसने अपनी आर्थिक नीति में सुधार न किया तो उसके विरुद्ध एक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। हालैंड ने अत्यन्त अधिक राष्ट्रीय ऋण ले लिया था। इसके आधे भुगतान के लिये बेल्जियम पर दबाव डाला गया। इस उद्देश्य से शासन की ओर से जो कर बेल्जियम पर नियुक्त किये गये वे भी कड़ी आलोचना के पात्र बने। एक कर आटे पर और दूसरा मांस पर लगाया गया। ये नित्य प्रति की आवश्यक वस्तुयें थीं जिनके बिना किसी का काम न चल सकता था। निर्धनों तथा कम स्थिति रखने वालों ने इस भार को सब से अधिक अनुभव किया। यही लोग क्रांति के सब से शक्तिशाली साधन होते हैं। बेल्जियम में विद्रोह की अग्नि भड़की और वह उस समय शांत हुई जब उक्त देश हालैंड से पृथक होकर स्वाधीन राज्य बन गया।

सन् १८३० की क्रांति

बेल्जियम में दो राजनैतिक दल थे। पादरी (Clericals) और उदार विचार के लोग (Liberals)। राष्ट्रीय संकट के सम्मुख उन्होंने पारस्परिक मतभेद को विस्मरण करके एक शक्तिशाली दल बनाया तथा स्वदेश की कठिनाइयों पर विचार किया। वास्तव में वे हालैंड से पृथक न होना चाहते थे। कारण कि दोनों के एकीकरण के कारण उनके देश की आर्थिक स्थिति बहुत सुन्दर हो गई थी। वे केवल यह चाहते थे कि किसी प्रकार शासन के दोष दूर हो जायें। किन्तु बादशाह विलियम ने जो ज़िद्दी मनोवृत्ति का था उनकी इच्छा पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। इसी समय फ्रांस से क्रांति के समाचार आये (जौलाई सन् १८३० ई०)। उनको सुनकर बेल्जियम निवासियों का उत्साह बढ़ गया। २५ जौलाई को रात्रि के समय ब्रूसेल्ज़ नगर में एक संगीत नाटक किया गया जिसका विषय नेपिल्ज़ का स्वतन्त्रता संग्राम था। उसको देखकर दर्शकों के उत्साह की सीमा न रही। बाहर आकर उन्होंने शीघ्र ही झगड़े प्रारम्भ कर दिये

जो बाद को क्रांति के रूप में परिवर्तित हो गये। जब उसे दबाने के लिये विलियम सेना लेकर आया तो वह नगर में प्रविष्ट होने से रोक दिया गया। इसका बहुत अच्छा नैतिक प्रभाव हुआ। विद्रोह की ज्वाला समस्त देश में फैल गई और एक अस्थायी सरकार ने तुरन्त बेल्जियम की स्वाधीनता की घोषणा कर दी। १० नवम्बर को राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन किया गया। इसमें स्वाधीन राष्ट्र के लिये संविधान की रचना की गई। इसका मुख्य सिद्धांत यह था कि वास्तव में किसी भी देश के स्वामी वहां के निवासी होते हैं, न कि बादशाह। कांग्रेस में यह भी निश्चित कर दिया कि बेल्जियम का शासन एक ऐसे व्यक्ति को दिया जायेगा जो वहां के निवासियों द्वारा निर्मित संविधान को चलाने की शपथ लेने को तैयार है। इस विषय में बेल्जियम निवासियों की वही स्थिति थी जो सन् १६८८ ई० की क्रांति के समय अंगरेज़ों की थी। उन्होंने अंत में ल्योपोल्ड आफ़ सैक्स-कोबर्ग को पसंद किया तथा जोलाई सन् १८३१ ई० में उसे बादशाह के प्रतिष्ठित पद पर आसीन किया।

विलियम ने यूरोप की शक्तियों को लिखा कि वे उस एकीकरण को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न करें जिसका उत्तरदायित्व उन्होंने अपने ऊपर लिया था।

यूरोपीय शक्तियों का व्यवहार

परन्तु अब परिस्थिति बदल गई थी। यदि यही प्रार्थना दस वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १८२० ई० में की जाती तो वे अवश्य अविलम्ब बेल्जियम के मामले में अपनी अभिरुचि प्रदर्शित करते। यूरोप की अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था जो नवम्बर सन् १८१५ ई० में स्थापित की गई थी, बिल्कुल समाप्त हो चुकी थी। आस्ट्रिया और रूस पोलैंड की क्रांति को दबाने की चिन्ता में थे। प्रशा इतना शक्तिशाली न था कि विलियम की ओर से युद्ध करता। फ्रांस तथा इंग्लैंड अपने सिद्धांत के अनुसार बेल्जियम की स्वाधीनता के विरुद्ध कोई काम न करना चाहते थे। इस सम्बन्ध में लन्दन में यूरोप की शक्तियों का एक सम्मेलन किया गया। उसने बेल्जियम की स्वाधीनता के पक्ष में मत दिया। अस्तु बेल्जियम और हालैंड का एकीकरण समाप्त कर दिया गया, और बेल्जियम के निवासियों ने फ्रांस के बादशाह लुई फ़िलिप के द्वितीय पुत्र ड्यूक आफ़ नेमूर (Duke of Nemours) को सिंहासन पर बिठलाने का प्रस्ताव स्वीकार किया। परन्तु महाशक्तियों को यह बात स्वीकार न थी कि फ्रांस और बेल्जियम इतने सन्निकट सम्बन्ध द्वारा आबद्ध कर दिये जायें। लुई फ़िलिप स्वयं यूरोपीय युद्धों से दूर रहना चाहता था। उसने अपने पुत्र की नियुक्ति के विरुद्ध मत प्रकट किया। अतएव बेल्जियम के निवासियों को अपने प्रस्ताव को स्थगित कर देना पड़ा। दूसरी बार, जैसा कि

बतला चुके हैं, उन्होंने सेक्स-कोबर्ग के राजकुमार ल्योपोल्ड को राजसिंहासन के लिए नियुक्त किया। यूरोप की शक्तियों ने इस प्रस्ताव को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया।

जर्मनी का संघ

जर्मनी में भी लोकतन्त्र और राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों ने अपना प्रभाव दिखलाया। किन्तु कुछ समय तक वहां कोई बड़ा आन्दोलन नहीं हुआ। आस्ट्रिया के प्रभुत्व के अतिरिक्त इसका एक विशेष कारण यह भी था कि वहां प्रारम्भ में, जैसा कि बतला चुके हैं, अगणित छोटे और बड़े राज्य थे। नैपोलियन के जर्मनी पर अधिकार कर लेने के तीन विशेष परिणाम हुये थे। प्रथम, जब राइन नदी के पश्चिमी तट की भूमि फ्रांस को दे दी गई तो इसके पश्चात् चर्च और नाइटों के अधिकार की भूमि तथा अधिकतर स्वतन्त्र नगर इत्यादि अन्य राज्यों में सम्मिलित कर दिये गये। केवल ३८ जर्मन राज्य, जिनमें चार स्वाधीन नगर भी सम्मिलित थे, शेष रहे। इनको संयुक्त करके वीयेना के महासम्मेलन के अवसर पर जर्मनी का संघ (German Confederation) बना दिया गया। द्वितीय, प्रशा की दशा इतने सुन्दर ढंग से परिवर्तित हो गई थी कि उसके लिये आस्ट्रिया के स्थान पर जर्मनी का नेता बनने का मार्ग खुल गया था। तृतीय, जर्मनी में राष्ट्रीय जागृति हो गई थी। वहां के निवासियों के हृदयों में यह भावना बिठा दी गई थी कि उन्हें अपने देश को विदेशियों के अन्यायपूर्ण व्यवहार तथा आतंक से उन्मुक्त कराना है तथा एक लिखित संविधान निर्मित करके शासन कार्य में स्वयं भाग लेना है। इसका प्रथम परिणाम यह हुआ कि प्राचीन ढंग के निरंकुश शासनों के विरुद्ध जर्मनी में अशांति फैल गई।

नैपोलियन के शासन का प्रभाव

मैटर्निक तथा अन्य राजनीतिज्ञों ने सन् १८१५ ई० में जो संघ जर्मनी में स्थापित किया था वह वास्तव में स्वाधीन शासकों और स्वाधीन नगरों का संघ था, न कि वहां के राज्यों का संघ। इन शासकों में आस्ट्रिया, प्रशा, डेन्मार्क तथा नैदरलैंड्ज़ के शासक भी सम्मिलित थे, क्योंकि इन चारों के राज्यों का कुछ न कुछ भाग जर्मनी में भी था। इस प्रकार संघ में दो शासक ऐसे थे जो पूर्ण रीति से विदेशी थे। परन्तु उसके जो सबसे बड़े और शक्तिशाली सदस्य थे उनके पूरे राज्य उसमें सम्मिलित न थे। उसकी सभा (Diet) के अधिवेशन फ्रैंकफोर्ट नगर में हुआ करते थे, परन्तु उनमें जनता के प्रतिनिधि नाम को भी सम्मिलित न होते थे। डायट के सदस्य

जर्मन संघ के दोष

होने का गौरव विभिन्न शासकों के प्रतिनिधियों को प्राप्त था जो उनके परामर्श के बिना कोई कार्य न कर सकते थे। यह सभा इतनी शक्तिहीन तथा निकम्मी थी कि यूरोप के निवासी उसकी दशा को देखकर हँसते थे। संघ की एक त्रुटि यह भी थी कि उसके सदस्यों को अन्य देशों से सब प्रकार के प्रतिज्ञापत्र करने का अधिकार था। किन्तु वे संघ अथवा उसके किसी भी सदस्य के विरुद्ध ऐसा न कर सकते थे। संघ का सबसे बड़ा दोष यह था कि उसके संविधान का सुधार उसी अवस्था में सम्भव था जब वे सभी शासन, जो उसमें सम्मिलित थे, उसके लिये स्वीकृति प्रदान करते। यह ज्ञात करके आश्चर्य होता है कि इन दोषों के होते हुये भी, जिनका उल्लेख यहां किया गया है, जर्मनी का संघ सन् १८१५ ई० से सन् १८६६ ई० तक स्थापित रहा। उसका अन्त उस समय हुआ जब प्रशा ने युद्ध करके आस्ट्रिया को उस से पृथक कर दिया।

जर्मन छात्रों का देशप्रेम

जर्मनी के जो निवासी उदार नीति तथा प्रगति के समर्थक थे उन्हें इसका घोर दुःख था कि वियेना की कांग्रेस में जर्मनी को वास्तविक रूप में राष्ट्रीय राज्य बनाने के उद्देश्य से कोई बड़ा क़दम नहीं उठाया गया था। यह बात भी प्रकट थी कि उसके शासक अपनी निरंकुश नीति का त्याग न करेंगे। ऐसी दशा में आवश्यक था कि राष्ट्रीय जागृति में वृद्धि हो। इसका एक रूप यह भी था कि उपरोक्त देश के छात्रों ने राजनैतिक मामलों में विशेष भाग लिया तथा उन दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। जर्मनी के जो छात्र सन् १८१३ ई० के स्वाधीनता युद्ध में भाग लेकर अपने कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में लौटकर आये थे उन्होंने अगणित समितियां स्थापित कीं और योग्य मनुष्यों के उस समाज (League of Virtue) की सहायता का दृढ़ संकल्प किया जो ऐना के विध्वंसकारी युद्ध के पश्चात् जर्मन राष्ट्र में जागृति उत्पन्न करने तथा उसे बनाये रखने के ध्येय से बनाई गई थी। छात्रों ने प्रकट रूप से प्रतिक्रियावादी दल के विरुद्ध स्वर ऊँचा किया तथा जर्मनी की स्वाधीनता का बीड़ा उठाया।

कार्ल्सबाद के प्रस्ताव, १८१९ ई०

१८ अक्टूबर सन् १८१७ ई० को जर्मनी के छात्रों ने आयज़नाक (Eisenach) नगर में वार्टबूर्ग (Wartburg) के प्रासाद में, जहां एक प्राचीन शासक का निवास था, एक विख्यात समारोह किया। इसमें उन्होंने धर्मसुधार (Reformation) की तृतीय शताब्दी तथा स्वाधीनता युद्ध की चतुर्थ जयन्ती मनाई। उनके उत्साह और संकल्प को देखकर

मैटर्निक जैसे रूढ़िवादी व्यक्ति भी चकित थे। इस अवसर पर छात्रों ने ओजस्वी भाषण दिये तथा सभा के अन्त में निरंकुश शासन के विषय में कुछ पुस्तकों की होली जलाई। इसके कुछ समय पश्चात् कार्ल सैंद (Karl Sand) नाम के छात्र ने, जो जोश में अंधा हो रहा था, एक अत्यन्त विख्यात पत्रकार कौटसैबू (Kotzebue) की हत्या कर दी (२३ मार्च सन् १८१६ ई०)। कौटसैबू एक रूढ़िवादी व्यक्ति था और रूस की ओर से जर्मनी में गुप्तचर का कार्य करता था। लोगों का विचार था कि उसी के प्रभाव से ज़ार ने अपनी पुरानी उदार नीति को तिलांजलि दे दी है। उपरोक्त हत्या से उदार नीति के समर्थक और भी अधिक बदनाम हुये और मैटर्निक को इसका सुयोग प्राप्त हो गया कि उनके कुचलने के लिए कोई गम्भीर क़दम उठाये। उसने अगस्त सन् १८१६ ई० में कार्ल्सबाद (Carlsbad) नगर में बड़े शासकों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन किया। इसमें भाषण की स्वतन्त्रता को रोकने तथा क्रांति के प्रेमियों को दंडित करने के विचार से कई प्रस्ताव स्वीकार किये गये, जैसे प्रत्येक विश्व-विद्यालय में शिक्षकों पर कड़ी दृष्टि रखने के लिए एक विशेष पदाधिकारी नियुक्त किया जाय, छात्रों के केन्द्रीय यूनियन को, जिस पर क्रांतिकारी होने का संदेह था, भंग कर दिया जाय, सरकारी पदाधिकारियों के निरीक्षण के बिना कोई समाचार-पत्र, पत्रिका अथवा पुस्तिका प्रकाशित न की जाय तथा एक विशेष आयोग (Commission) क्रांतिकारी ढंग के षड्यंत्रों की जांच करने के अभिप्राय से स्थापित किया जाय इत्यादि। ये प्रस्ताव आस्ट्रिया की ओर से जर्मन संघ में पेश किये गये और तुरन्त स्वीकार कर लिये गये। फल यह हुआ कि जर्मनी में उदार प्रणाली के सुधारों तथा प्रगति के मार्ग में बड़ा अवरोध उपस्थित हुआ और लगभग पचास वर्ष तक वह शासन के आतंकपूर्ण व्यवहार तथा अत्याचार का शिकार बना रहा।

दक्षिणी राज्यों में संवैधानिक शासन की स्थापना

कार्ल्सबाद के प्रस्तावों के अतिरिक्त भी दक्षिणी राज्यों ने उदार नीति तथा उन्नति का प्रमाण दिया। इस से भी पूर्व बवेरिया का बादशाह इस सम्बन्ध में पर्याप्त ख्याति तथा प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। उसने सन् १८१८ ई० में अपने राज्य के लिए एक संविधान की स्वीकृति दे दी थी। इसके द्वारा वहां एक संसद की स्थापना की गई थी और प्रजा को उसमें भाग लेने का अधिकार दे दिया गया था। इसके दो वर्ष के भीतर बादन और वूर्टम्बर्ग के शासकों ने भी उसका अनुकरण किया। दूसरा बड़ा सुधार यह किया गया कि समस्त जर्मनी के लिये धीरे धीरे एक प्रवेश्य-संघ (Zollverein) बनाया गया और यह निश्चित कर दिया गया कि तिजारती

वस्तुओं पर एक राज्य से दूसरे राज्य में प्रवेश करते समय किसी प्रकार के प्रवेश्य-कर का बन्धन न होगा। उपरोक्त संघ से कुछ राजनैतिक लाभ भी हुये। एक विशेष बात यह थी कि आस्ट्रिया उसमें सम्मिलित न किया गया था और उसके स्थान पर अध्यक्ष का आसन प्रशा ने ले लिया था। इस प्रकार जर्मनी के भावी एकीकरण तथा साम्राज्य की रूपरेखा तैयार कर दी गई।

फ्रांस और बेल्जियम की भांति जर्मनी और इटैली के कुछ राज्यों में भी सन् १८३० ई० में लोकतंत्रवादी आन्दोलन हुये, परन्तु देशभक्त अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सफल मनोरथ न हुये। इसका मुख्य कारण मैटर्निक का प्रभुत्व तथा उसकी सुव्यवस्था थी। उसके कारण दोनों देशों में बहुत छोटे आधार पर इधर उधर आन्दोलन किये गये, किन्तु उदार दल की ओर से कोई महान् आन्दोलन सम्भव न हो सका। जर्मनी में १८३०-३१ के प्रदर्शनों तथा झगड़ों के कारण सेक्सनी, हनोवर और हेस के शासक इतने भयभीत हुये कि उन्होंने अपने राज्यों में फ्रांस के सन् १८१४ ई० के संविधान के आधार पर संविधान स्वीकृत कर दिये। मैटर्निक ने उन्हें प्रत्येक प्रकार से ढाढ़स देने का प्रयत्न किया। अस्तु हनोवर तथा हैस के शासकों ने स्वीकृत किये गये संविधानों को स्थगित कर दिया। सेक्सनी के शासक ने उसे स्थगित तो न किया किन्तु उसने उसको कार्य रूप में परिणित करने का भार ऐसे मंत्रियों को दे दिया जो रूढ़िवादी विचार रखते थे।

सन् १८३० ई० के आन्दोलन

स्पेन और इटैली

स्पेन और इटैली दो ऐसे देश हैं जो उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में रूढ़िवाद के गढ़ कहे जा सकते थे। इसके अतिरिक्त वे कैथोलिक धर्म के सब से बड़े केन्द्र भी थे। जब नैपोलियन ने अपने भाई को वहाँ के निवासियों की इच्छा के विरुद्ध स्पेन का बादशाह बनाया तो वहां उसके विरुद्ध एक युद्ध आरम्भ हो गया जो उस समय समाप्त हुआ जब वेलिंगटन ने आक्रमणकारियों को पिरोनीज़ पर्वत की दूसरी ओर खदेड़ दिया। इस बीच में स्पेन निवासी फ्रांसीसियों का सामना बड़ी दृढ़ता से करते रहे और अपना काम एक प्रकार के स्वाधीन शासन द्वारा चलाते रहे। इस सब के होते हुये भी वे उन्नति व लोकतंत्र के प्रभाव को स्वदेश में प्रविष्ट होने से न रोक सके। इस अराजकता के युग में प्रेस के प्रतिबन्ध कम कर दिये गये थे और जनता राजनैतिक विषयों में अभिरुचि रखने लगी थी। नैपोलियन ने भी रूढ़िवाद के सिद्धान्त को कई प्रकार से

स्पेन में उन्नति और लोकतंत्र के उदाहरण

बहुत ही निर्बल कर दिया था। उसने जागीरदारों के करों को समाप्त कर दिया था, आन्तरिक प्रवेश्य-कर की प्रथा को बन्द कर दिया था तथा मठों की संख्या घटाकर एक तिहाई कर दी थी। इसके अतिरिक्त उसने कुछ अन्य सुधार भी किये थे, जैसे उसने धार्मिक न्यायालय (Inquisition) को हटा दिया था तथा कलाकौशल को स्वतन्त्र छोड़ दिया था। इन सुधारों से देश को बड़ा लाभ हुआ था।

सन् १८१२ ई० का संविधान

सन् १८१२ ई० में स्पेन के राष्ट्रीय संसद (Cortes) ने एक संविधान बनाया जो फ्रांस के सन् १७६१ ई० के संविधान से समता रखता था। उसके बनाने वाले यह अच्छी तरह जानते थे कि जनता अपने बादशाह से अधिक प्रेम करती है। अस्तु वहां राजतन्त्र बना रहा, किन्तु बादशाह के अधिकार प्रकट रूप से सीमित कर दिये गये। विधान निर्माण के लिये केवल एक सभा आवश्यक समझी गई, जिसका निर्वाचन प्रत्येक दूसरे वर्ष होता था। संविधान के द्वारा केवल कैथोलिक धर्म नियमानुकूल निश्चित किया गया। प्रेस के प्रतिबन्ध हटा दिये गये। जागीरदारों के कर तथा कुलीनों के विशेषाधिकार समाप्त कर दिये गये। ये सुधार जो स्पेन जैसे रूढ़िवादी देश में किये गये थे सन्तोषप्रद थे।

फर्डिनेन्ड सप्तम द्वारा संविधान का स्थगित होना

स्पेन के बादशाह फर्डिनेन्ड ने विगत छः वर्ष, नज़रबंदी की दशा में, फ्रांस में व्यतीत किये थे। जब वह अंगरेज़ों की सहायता से स्पेन लौटा और उसका सिंहासन उसे पुनः प्राप्त हो गया तो उसने नवीन प्रकार के शासन को, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, स्थगित कर दिया। कारण यह था कि उसका निर्माण फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के अनुकूल किया गया था। उसने यह भी घोषित किया कि जो लोग उसका समर्थन करेंगे उन्हें मृत्युदंड दिया जायेगा। उसने पुराने ढंग का निरंकुश शासन फिर से स्थापित कर दिया और कई आलोचनात्मक कार्य भी किये। उदाहरणार्थ उसने धार्मिक न्यायालय तथा जागीरदारी के करों आदि को पुनः स्थापित किया, प्रेस पर फिर प्रतिबन्ध आरोपित किये, धर्म-प्रचारकों (Jesuits) के लौटने की आज्ञा दे दी, उदार विचार के लोगों को बन्दी बनाया अथवा उन्हें वध करा दिया। इस प्रकार स्पेन में घड़ी की सुई पीछे घूम गई तथा पुरानी व्यवस्था पुनः स्थापित कर दी गई।

इटैली में भी स्पेन की भाँति कुछ काल तक लोकतन्त्र तथा राष्ट्रीयता की

अनुपम धारायें आगे न बढ़ सकीं। अतएव वीयेना की कांग्रेस के लगभग ५० वर्ष पश्चात् तक वह मैटर्निक के शब्दों में केवल 'एक भौगोलिक चिह्न' रहा। उसकी उन्नति तथा एकीकरण के मार्ग में कई रुकावटें थीं। वह कई छोटे तथा स्वाधीन राज्यों में विभक्त था। इसके अतिरिक्त उसके उत्तरी भाग में आस्ट्रिया का तथा मध्य भाग में पोप का प्रभुत्व था। अर्वाचीन युग में वहां उन्नति तथा लोकतन्त्र की किरणें सब से प्रथम नैपोलियन बोनापार्ट के समय में प्रस्फुटित हुईं। उसके आगमन से वहां जागीरदारी की प्रथा का उन्मूलन हो गया, राजनैतिक स्वाधीनता तथा व्यवस्थित शासन का रिवाज प्रारम्भ हुआ, और जनसेवा के कार्यों की उन्नति हुई। उसने इस बात की आशा भी दिलाई कि वह इटैली के एकीकरण का प्रयत्न करेगा। परन्तु जब उसने अपनी महत्वाकाक्षाओं की पूर्ति के लिये इटैली द्वारा अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न किया तो उसके समर्थकों की आंखें खुल गईं, और उनकी समझ में यह अच्छी तरह आ गया कि इटैली के निवासियों को अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा, और उसके एकीकरण तथा उन्नति के लिए स्वयं प्रयत्नशील होना पड़ेगा।

इटैली में नैपोलियन का प्रभाव

सार्डीनिया का बादशाह विक्टर ऐमैनुअल प्रथम अपनी राजधानी ट्यूरिन में २० मई सन् १८१४ ई० को लौटा। उसके आते ही वे सुन्दर सुधार जो नैपोलियन के समय में किये गये थे समाप्त कर दिये गये तथा कुलीनों को उनके विशेषाधिकार लौटा दिये गये। पादरियों को उनकी जागीरें वापिस मिल गईं तथा उनके न्यायालय भी पुनः स्थापित कर दिये गये। प्रेस पर प्रतिबन्ध फिर से लागू कर दिये गये। धार्मिक स्वतंत्रता समाप्त कर दी गई। विश्वविद्यालय पर पादरियों का निरीक्षण स्थापित कर दिया गया। दर्शन की जिन पुस्तकों में उदार विचारों का प्रतिपादन किया गया था वे सब ग़ैर-क़ानूनी निश्चित कर दी गईं। क्रांतिकारी सिद्धान्तों के विरोध ने इतनी अधिक शक्ति ग्रहण की कि ट्यूरिन नगर के एक औद्भिदीय उद्यान (Botanical Garden) को, जिसे फ्रांसीसियों ने स्थापित किया था, नष्ट कर दिया गया और वहां की नगर पालिका को एक पुल को, जिसका निर्माण फ्रांसीसियों के हाथों हुआ था, नष्ट होने से बचाने के लिये उसके निकट एक गिर्जाघर बनाना पड़ा। जब हम इस प्रकार के उदाहरणों पर ध्यान देते हैं तो इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि वास्तव में इटैली समय की गति से बहुत पीछे था।

पीडमोंट में सुधारों का अंत

जो दशा पीडमोंट की थी वही दशा अन्य राज्यों की भी थी। वहां भी

फ्रांसीसियों के सुन्दर कार्यों का उसी प्रकार अन्त कर दिया गया जिस प्रकार उपरोक्त राज्य में किया गया था। लोम्बार्डी तथा वेनीशिया में आस्ट्रिया का शासन पुनः स्थापित कर दिया गया। वहां के निवासियों को भारी आर्थिक बोझ भी उठाना पड़ा। यद्यपि दोनों की सम्मिलित जनसंख्या हैप्सबर्ग साम्राज्य की जनसंख्या का आठवां भाग भी न थी परन्तु उन्हें सरकारी भूमि कर का एक चौथाई भाग देना पड़ता था। पारमा तथा टस्कनी की दशा किसी सीमा तक संतोषजनक थी। इसके प्रतिकूल मोडेना में आस्ट्रियन शासन के समान दोष विद्यमान थे। पोप के राज्य में सन् १८१४ ई० में एक घोषणा प्रकाशित की गई जिसके द्वारा समस्त सुन्दर सुधारों को समाप्त कर दिया गया यहां तक कि रोम नगर में सड़कों पर रोशनी करने तथा चेचक का टीका लगवाने तक की मनाही कर दी गई। शासन पर पादरियों का प्रभुत्व दुबारा स्थापित कर दिया गया। धार्मिक न्यायालय (Inquisition) फिर स्थापित हो गया और लगभग दो सहस्र मठ जो बन्द कर दिये गये थे, फिर से खोल दिये गये। केवल नेपिल्ज़ ही एक ऐसा राज्य था जहां घड़ी की सुई पूरे प्रकार से उल्टी नहीं घुमाई गई थी। वहां फ्रांसीसी क़ानून पूर्ववत् अक्षुण्ण रहे, कुलीन वर्ग अपने प्राचीन अधिकारों से वंचित रहा, मठों की संख्या में वृद्धि न की गई तथा पादरियों को केवल वही जागीरें लौटाई गईं जो बेचे जाने से बच गई थीं। इन सब बातों के होते हुये भी नेपिल्ज़ के शासक ने एक ऐसे मार्ग से निकलना अस्वीकार कर दिया जिसे मूरा ने बनवाया था। उसने पृथ्वी में धँसे हुए पौम्पेयी नगर की खुदाई को भी रोक दिया, क्योंकि उसको प्रारम्भ करने का श्रेय फ्रांस के वैज्ञानिकों को प्राप्त था।

अन्य राज्य

यह एक बड़े ही संतोष का विषय है कि इटैली में केवल नैपोलियन के सुधारों का नाश किया गया था; फ्रांसीसी क्रांति के सिद्धांतों को, जो वहां उसके साथ पहुंचे थे, कोई भी न हटा सकता था। उन्होंने लोगों के हृदयों में घर कर लिया था। इसका सुन्दर प्रभाव कुछ वर्षों के पश्चात् प्रकट हुआ। इटैली के निवासियों के हृदयों में राष्ट्रीयता का उत्साह बढ़ रहा था। इसे आस्ट्रिया की पुलिस भी नष्ट न कर सकती थी। इटैली के विधानों तथा शासनों में भी क्रांतिकारी चिह्न दृष्टिगोचर थे। इनको समाप्त करना भी कठिन था। सारांश यह कि वहां के निवासी नैपोलियन को बुरी दृष्टि से देख सकते थे, क्योंकि उसने उनके देश पर आक्रमण किये थे तथा उनके साथ उत्तम व्यवहार भी न किया था। परन्तु वे इस बात को नहीं भूल सकते थे कि वह

नैपोलियन के कार्यों का चिरस्थायी स्वरूप

फ्रांसीसी राज्यक्रांति का सर्वोत्तम वरप्रसाद था, और उसने उनके देश में एक ऐसे युग का प्रारम्भ किया था जो उन्नति और लोकतन्त्र का युग था।

स्पेन के उपनिवेश और सन् १८२० की क्रांति

मैटर्निक और उसके साथियों ने जो सफलता इटैली और स्पेन में प्राप्त की थी वह स्थायी न थी। शीघ्र ही वहां लोकतन्त्र के सिद्धान्त ने विजय पाई, परन्तु इटैली के विभिन्न राज्यों का एकीकरण कुछ काल तक सम्भव न हो सका। स्पेन में उपनिवेशों को जाने वाली सेना ने विद्रोह किया तथा वहां के प्रगतिशील निवासियों ने सन् १८१२ ई० के संविधान को, जिसे फर्डिनेन्ड सप्तम ने स्थगित कर दिया था, फिर से चालू कर दिया। यह सब कैसे हुआ अब हम इस पर प्रकाश डालते हैं। उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका में स्पेन के साम्राज्य में कई उपनिवेश सम्मिलित थे, जैसे मैक्सिको, मध्य अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका के कई बड़े भाग आदि। इसके अतिरिक्त कई द्वीपों पर भी उसका अधिकार था। उपनिवेशों के साथ मातृभूमि की ओर से बुरा व्यवहार किया जाता था और उनकी खानों तथा उत्पत्ति के अन्य साधनों से अनुचित लाभ उठाया जाता था। एक बड़ा दोष यह भी था कि उपनिवेश स्पेन के केवल एक अथवा दो बन्दरगाहों से व्यापार कर सकते थे। चार्ल्स तृतीय (१७५९–१७८८) ने उनकी यह शिकायत दूर की। उसने न केवल स्पेन के समस्त बन्दरगाह उपनिवेशों के लिये खोल दिये वरन् उनको दूसरी सुविधायें भी प्रदान कीं। जब उनके निवासियों ने यह देखा कि अंगरेज़ी उपनिवेश स्वाधीनता युद्ध में सफल हुए हैं तो उनका साहस भी बढ़ गया। अस्तु उन्होंने भी तलवार के बल से स्वाधीनता प्राप्त करने का निश्चय किया।

स्पेनिश उपनिवेशों के विद्रोह (१८१०–१८२५)

सन् १८१० ई० में स्पेनिश उपनिवेशों के निवासियों ने विद्रोह का क्रम प्रारम्भ किया और सन् १८२५ ई० तक कई बड़े उपनिवेश बिल्कुल स्वाधीन होगये। सबसे प्रथम मैक्सिको, न्यूग्रेनाडा, वैनेजुला, पेरू, ब्यूनाज़आयर्ज़ और चिले के निवासियों ने स्पेन के गवर्नरों को हटाकर शासन पर स्वयं अधिकार किया। स्पेन के शासन ने उक्त विद्रोहों को कठोरता से दबाने का प्रयत्न किया और आरम्भ में उसे सफलता भी प्राप्त हुई। परन्तु बाद को उपनिवेश अपने उद्देश्य में पूर्ण रूप से सफल हुये। सन् १८१७ ई० में एक योग्य नेता बॉलीवर के नेतृत्व में वैनेजुला ने स्वाधीनता प्राप्त की। इसके पश्चात् पाँच वर्ष के अन्दर न्यूग्रेनाडा, पेरू, इक्वेडोर, चिले और मैक्सिको भी

स्पेन के अधिकार से स्वतन्त्र हो गये। सबके अन्त में उत्तरी पेरू ने स्वाधीनता प्राप्त की (सन् १८२५ ई०)। इसका नाम बदल कर उसे स्वाधीनता दिलाने वाले योद्धा के नाम पर बॉलीविया कर दिया गया। फर्डिनेन्ड सप्तम ने विद्रोहों का दमन करने में अगणित सैनिकों को नष्ट कर दिया था, परन्तु इससे कोई विशेष लाभ न हुआ था। उसने मित्र राष्ट्रों को भी सहायता के लिये लिखा था, परन्तु इस से भी कोई विशेष लाभ न हुआ था। ऐसा होना इसलिए आवश्यक था कि मैटर्निक ने जो अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था बनाई थी उसका उद्देश्य केवल यूरोप के विद्रोहों और षड्यन्त्रों को नष्ट करना था न कि अमेरिका जैसे दूरस्थ देश में हस्तक्षेप करना। इसके अतिरिक्त मुनरो की विख्यात घोषणा (सन् १८२३ ई०) भी उनके मार्ग में अवरोध थी। इसके अतिरिक्त जब से उपनिवेशों को मातृभूमि के प्रतिबन्धों से मुक्ति मिली थी तब से ब्रिटिश द्वीपसमूह उन से व्यापार करके बहुत धन प्राप्त कर चुके थे और वे इस से किसी दशा में भी वंचित होने के लिये तैयार न थे। ज़ार ने फर्डिनेन्ड के साथ सहानुभूति अवश्य प्रकट की, परन्तु इसके अतिरिक्त उसने कोई सहायता न दी कि उसने एक जहाज़ी बेड़ा, जो जीर्ण शीर्ण अवस्था में था, स्पेन के हाथ बेच दिया।

स्पेन में सन् १८१२ के संविधान की दूसरी बार घोषणा

स्पेन में भी शीघ्र ही क्रांति की ज्वाला भड़की। जनवरी सन् १८२० ई० में एक सेना अमेरिका जाने के उद्देश्य से कैडिज़ के बन्दरगाह में ठहरी हुई थी। उसके सैनिकों ने आगे बढ़ने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। वे उन विपत्तियों को सहन करने के लिये तैयार न थे जो स्पेन के सैनिकों को अमेरिका में सहन करनी पड़ रहीं थीं। उनके पथप्रदर्शक दो उत्साही अफ़सर थे, जो शासन की अयोग्यता तथा अत्याचारी व्यवहार से दुखित थे। उन्होंने सन् १८१२ ई० के संविधान की दूसरी बार घोषणा की। यह देखकर अन्य नगरों के उदार विचारों के लोगों ने भी विद्रोह का झंडा ऊँचा किया। राजधानी मैड्रिड में एक जनसमूह ने राजप्रासाद को चारों ओर से घेर लिया और बादशाह को इसके लिये बाध्य किया कि संविधान को स्थापित रखने की शपथ ले। सर्वसाधारण धार्मिक न्यायालय के बन्दीगृह में भी घुस गये और उन यंत्र आदि को नष्ट कर दिया जिनके द्वारा अभियुक्तों को दारुण वेदना दी जाती थी। परन्तु वास्तव में फर्डिनेन्ड के हृदय में उक्त शपथ को बनाये रखने का कोई विचार न था। वह केवल एक तूफ़ान के सामने झुक गया था। जैसे ही वह निकल गया वैसे ही उसने अपना पुराना ढंग फिर ग्रहण कर लिया।

स्पेन की राज्यक्रांति के समाचार शीघ्र ही इटैली में पहुंचे। वहां क्रांति के लिए पृष्ठभूमि पहले ही से तैयार थी। वहां सन् १८१४ ई० से उन्नति और लोकतंत्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध जो उल्टी हवा चलाई गई थी उससे जनता के राजनैतिक आन्दोलन में नवीन स्फूर्ति आगई थी। परन्तु कुछ काल तक उसका कार्य गुप्त रूप से चलाया गया। इटैली के सभी राज्यों में गुप्त समितियां स्थापित हो गई थीं। इनके विचित्र नाम थे तथा विलक्षण रीतियों से वे अपना कार्य संचालित करती थीं। अपने देश को स्वाधीन करना उनका सर्वोच्च आदर्श था। उनमें सब से प्रसिद्ध कार्बोनारि (Carbonari) नाम की गुप्त समिति थी। इसकी स्थापना मूरा (१८०८-१८१५) के शासनकाल में उन लोगों की ओर से की गई थी जो फ्रांसीसियों के शासन से अप्रसन्न थे। उनमें अधिकतर गणतन्त्रवादी दल के लोग (Republicans) सम्मिलित थे। उपरोक्त समिति की स्थापना करते समय ये लोग एक विशेष पहाड़ पर शरण लिये हुये थे। इसी पहाड़ के कोयला तैयार करने वालों के नाम पर उन्होंने अपनी समिति का नाम कार्बोनारि रक्खा था। देश के लिये स्वाधीनता प्राप्त करने के अतिरिक्त उसके सदस्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता, संवैधानिक शासन तथा देश के एकीकरण के लिए भी प्रयत्नशील थे। नेपिल्ज़ के राज्य में 'कार्बोनारि' अथवा 'कोयला तैयार करने वालों' का अधिक ज़ोर था। उनकी सहयाता के लिए अन्य लोग भी तैयार थे। जब उन्होंने यह सुना कि स्पेन के बादशाह ने संवैधानिक शासन स्वीकार कर लिया है तो उन्होंने भी उसके प्राप्त करने के लिए प्रबल चेष्टा की। उन्होंने स्पेन का सन् १८१२ ई० का संविधान पसन्द था। अतएव उन्होंने सन् १८२० ई० में बादशाह फर्डिनेंड को उसकी स्वीकृति के लिए बाध्य किया। इसके पूर्व इटैली के किसी अन्य राज्य में संवैधानिक शासन स्थापित न हो सका था। यह नैपिल्ज़ और उसके वीर नवयुवकों के लिए गौरव का विषय था। किन्तु जिस प्रकार स्पेन के बादशाह फर्डिनेंड सप्तम को अपनी शपथ को बनाये रखने की चिन्ता न थी उसी प्रकार नेपिल्ज़ के बादशाह को भी उसकी चिन्ता न थी। एक ओर वह झूठी शपथ ले रहा था तथा उसका पालन न करने की अवस्था में ईश्वर के कोप को आमन्त्रित कर रहा था। दूसरी ओर वह अपने दूत सहायता प्राप्त करने के लिए अन्य देशों को भेज रहा था।

नेपिल्ज़ में संविधान की घोषणा, सन् १८२० ई०

नेपिल्ज़ के बादशाह को अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़ी। आस्ट्रिया के मन्त्री मैटर्निक ने रूस, प्रशा, फ्रांस तथा इंग्लैंड को 'विद्रोह और जुर्म' के रोकने के लिए आमन्त्रित किया। उसका मत था कि उस समय के लोकतंत्रवादी

आन्दोलन उसी प्रकार भयंकर प्रमाणित होंगे जिस प्रकार फ्रांस की १७८६ ई० की राज्यक्रांति भयंकर प्रमाणित हुई थी। उसकी दृष्टि में क्रांति एक महामारी के समान थी जिसका प्रभाव केवल रोगी मनुष्य पर ही नहीं होता वरन् उसकी छूत अन्य देशों के लिये भी विनाश का कारण बन जाती है। ऐसी दशा में आवश्यक था कि इस बढ़ती हुई महामारी को शीघ्र से शीघ्र समाप्त कर दिया जाता। मैटर्निक नेपिल्ज़ के क्रांतिकारियों के विशेष रूप से विरुद्ध था। उसकी दृष्टि में वे 'अर्द्ध सभ्य मनुष्यों' के समान शिक्षा दीक्षा से पूर्णतः रहित थे। ऐसी दशा में उसने, जैसा कि हम गत अध्याय में वर्णन कर चुके हैं, अक्टूबर सन् १८२० ई० में ट्रोप्पाव नगर में यूरोपीय शक्तियों का एक सम्मेलन आमन्त्रित किया। जनवरी सन् १८२१ ई० में लाईबाक की कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें नेपिल्ज़ का बादशाह फर्डिनेंड स्वयं उपस्थित हुआ था। मैटर्निक और उसके प्रतिक्रियावादी सहयोगी रूस और प्रशा ने उक्त बादशाह की सहायता के लिए सेना भेजने का निर्णय किया, किन्तु जैसा कि हम बतला चुके हैं, ब्रिटिश द्वीपसमूह तथा फ्रांस इस नीति के बिल्कुल खिलाफ़ थे। मार्च के महीने में अस्ट्रिया की सेना ने नेपिल्ज़ की क्रांति का पूर्ण रूप से दमन कर दिया तथा उसके नेताओं को तलवार के घाट उतार दिया अथवा कारावास में डाल दिया अथवा उन्हें देश से निर्वासित कर दिया। इस प्रकार फ़र्डिनेंड संविधान स्वीकार करने के उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया गया। क्रांतिकारियों के निर्बल होने के कारण यह सब कार्य बड़ी सरलता से सम्पन्न हुआ।

वहां के क्रांतिकारियों का दमन

जिस समय अस्ट्रिया की सेना नेपिल्ज़ के क्रांतिकारियों के दमन के लिए दक्षिण की ओर बढ़ रही थी ठीक उसी समय पीडमोंट में भी विद्रोह की ज्वाला भड़की। वहां के देशभक्तों ने लोम्बार्डी के उन निवासियों की सहायता से, जो अस्ट्रिया के शासन से असन्तुष्ट थे, काम करने का प्रयत्न किया किन्तु वे सफल मनोरथ न हुये। वेनीशिया की सेना ने इस आन्दोलन का शीघ्र ही अन्त कर दिया। अतएव इटैली में राजनैतिक सुधार तथा लोकतंत्र का प्रश्न कुछ समय के लिये स्थगित कर दिया गया।

स्पेन के क्रांतिकारियों का दमन (१८२३-१८२५)

नेपिल्ज़ की तरह स्पेन के क्रांतिकारियों का दमन भी सरलता से कर दिया गया। उसकी समस्या वैरोना के महासम्मेलन में यूरोप की पांच महाशक्तियों के समक्ष उपस्थित किया गया (सन् १८२२ ई०)। ज़ार इसके लिए तत्पर था कि अपनी सेना फ्रांस के द्वारा स्पेन भेजे, किन्तु अठारहवें लूई को यह बात स्वीकार न थी। ब्रिटिश द्वीपसमूह ने स्पेन के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने से कोरा जवाब दे

दिया। इसका उल्लेख इसके पूर्व भी किया जा चुका है। ऐसी दशा में केवल फ्रांस के शासन ने एक सेना पिरीनीज़ को पार करके स्पेन भेजी। इसका उद्देश्य यह बतलाया गया था कि वह केवल फ्रांस के प्राचीन बादशाह हेनरी चतुर्थ के एक उत्तराधिकारी को स्पेन के राजसिंहासन पर सुशोभित रखना चाहता है। फर्डिनेन्ड ने उपरोक्त सेना की सहायता से क्रांतिकारियों का दमन बड़ी कठोरता से किया। उसके अत्याचारपूर्ण तथा लोमहर्षक कामों को देखकर उसके मित्र फ्रांसीसियों को भी आश्चर्य हुआ। फ्रांस के लोकतन्त्र प्रिय निवासियों को इसका सब से अधिक दुःख था। उनके शासन ने एक पड़ोसी देश के झगड़ों में हस्तक्षेप करके वही कार्य किया था जिसका प्रयत्न अस्ट्रिया और प्रशा सन् १७९२ ई० में फ्रांस के विरुद्ध कर चुके थे।

इटैली में सन् १८३० ई० के आन्दोलन

सन् १८३० ई० में इटैली में भी फ्रांस और जर्मनी की भांति उदार सिद्धान्तों के अनुसार आन्दोलन किये गये। अबकी बार नेपिल्ज़ और पीडमोंट के राज्य, जो सन् १८२१ ई० में मैटर्निक के हस्तक्षेप के कारण कृतकार्य न हुए थे, शांत रहे। परन्तु मध्य इटैली के राज्यों ने फ्रांस के नवीन बादशाह लूई फ़िलिप से सहायता प्राप्त करने की आशा में अपने शासकों के विरुद्ध विद्रोह किये। पोप के राज्य में भी क्रांतिकारियों ने लोकतन्त्र और राष्ट्रीयता के तिरंगे झंडे को ऊँचा किया तथा सन् १८३१ ई० में नये पोप सोलहवें ग्रेगरी (Gregory XVI) की अधीनता को मानने से साफ़ इन्कार कर दिया। पारमा और मोडेना के राज्यों में भी इसी प्रकार के आन्दोलन किये गये। वहां के हैप्सबर्ग वंश के शासक सहायता के लिए अस्ट्रिया चले गये। मैटर्निक ने तुरन्त अपनी सेना इटैली भेज दी। उसने समस्त क्रांतिकारी आन्दोलनों के कुचलने में सफलता प्राप्त की तथा क्रांतिकारियों की एक संख्या को फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिया। अस्तु भागे हुये बादशाह लौट आये। लूई फ़िलिप ने यह वचन दिया था कि वह यूरोप की किसी शक्ति को इटैली में हस्तक्षेप न करने देगा, किन्तु वह उसके अनुसार कार्य न कर सका। इतना अवश्य हुआ कि उसने अपनी एक सेना पोप के राज्य में नियत कर दी।

पुर्तगाल

जिस समय नैपोलियन के सैनिकों ने सन् १८०७ ई० में पुर्तगाल पर आक्रमण किया था उस समय वहां का बादशाह अपने परिवार के साथ अपने दूर के उपनिवेश ब्राज़ील को चला गया था। इसके पश्चात् पुर्तगाल के प्राचीन

मित्र ग्रेट ब्रिटेन ने हस्तक्षेप करके फ्रांसीसियों को पुर्तगाल से निकाल दिया था तथा लिस्बन में एक अस्थायी शासन स्थापित कर दिया था। सन् १८१५ ई० में यूरोप के सब देशों में शांति स्थापित हुई परन्तु पुर्तगाल का शाही परिवार न लौटा एवं अंगरेज़ों ने भी व्यापार के हेतु पुर्तगाल में अपना प्रभुत्व अक्षुण्ण रक्खा। शीघ्र ही यह बात प्रकट हो गई कि उन्हें केवल अपने लाभ की चिन्ता है। ऐसी दशा में आवश्यक था कि उनका विरोध किया जाता। रूढ़िवादी और उदार विचार के नेताओं ने एकता करके अंगरेज़ों के विरुद्ध आवाज़ ऊंची की और इस बात पर ज़ोर दिया कि बादशाह के परिवार को वापिस बुलाया जाय। पुर्तगाल में भी स्वतन्त्रता, समानता और बान्धुत्व के सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा उसी प्रकार हो चुकी थी जिस प्रकार स्पेन में हुई थी। ब्रिटिश शासक लार्ड बेरेस्फोर्ड (Lord Beresford) को कई बार छोटे आधार पर किये गये विद्रोहों का दमन करना पड़ा। अन्ततः सन् १८२० ई० में उसकी अनुपस्थिति में पुर्तगाल के सैनिकों ने स्पेन के सैनिकों का अनुकरण करके अस्थायी सरकार को समाप्त कर दिया। यह देखकर उदार विचार के लोगों ने इस सुअवसर से लाभ उठाया और स्पेन के आधार पर संविधान निर्मित करके उसको घोषित कर दिया। दूसरे वर्ष बादशाह जोन षष्ठ ब्राज़ील के शासन को अपने पुत्र डोम पेडरो (Dom Pedro) के अधीन करके पुर्तगाल लौट आया और सन् १८२२ ई० में संविधान को अक्षुण्ण रखने की शपथ ली।

राष्ट्रीय आन्दोलन

पुर्तगाल के रूढ़िवादियों ने उसका घोर विरोध किया। उन्होंने बादशाह के छोटे पुत्र डोम मीगेल (Dom Miguel) को अपना नेता घोषित किया। यह देखकर जोन ने संविधान को स्थगित कर दिया, परन्तु रूढ़िवादी इस पर भी संतुष्ट न हुये। उनका विरोध ज्यों का त्यों चलता रहा। उनके कारण बादशाह को सिंहासन पर स्थित रहने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सन् १८२६ ई० में जोन षष्ठ की मृत्यु हुई। उसके स्थान पर उसका पुत्र पैडरो सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने एक अधिकारपत्र स्वीकृत करके साधारण ढंग की संसदी शासन पद्धति स्थापित की। यह फ्रांस के सन् १८१४ ई० के संविधान के अनुरूप निर्मित की गई थी। इसके पश्चात् उसने इस शर्त पर शासन सूत्र अपनी सप्तवर्षीय पुत्री मेरिया के अधीन कर दिया कि वह अपने चाचा डोम मीगेल से अपना विवाह कर लेगी। डोम मीगेल ने भी मेरिया तथा संविधान के प्रति सच्चे बने रहने का वचन दिया। परन्तु जब वह सन् १८२८ ई० में पुर्तगाल लौटा तो उसने अपने

रूढ़िवादियों की सफलता

वादों को विस्मृत कर दिया। वह रूढ़िवादियों की सहायता से निरंकुशता से शासन करने लगा। इस स्थिति में वह सन् १८३४ ई० तक अपने स्थान पर रहा। वह तीन वर्ष तक वीयेना में निवास कर चुका था। वह मैटर्निक का केवल मित्र ही नहीं वरन् उसका समर्थक भी था। वह स्वयं अत्याचारपूर्ण नीति का अनुगामी तथा आतंक प्रेमी भी था। इन कारणों से उसने फर्डिनेंड सप्तम की भांति अत्यन्त कठोरता तथा निर्दयता से शासन किया। तत्पश्चात् पन्द्रह वर्ष तक मेरिया ने शासन किया।

यूनान का स्वाधीनता युद्ध
(१८२१–१८२९)

बालकन प्रायद्वीप के देशों में यूनान सब से अधिक प्रसिद्ध है। उसका ऐतिहासिक महत्व भी सब से अधिक है। प्राचीन काल में उसके निवासियों ने विद्या तथा कला की उन्नति और युद्ध कला में जो अनुपम चमत्कार प्रदर्शित किया था उसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं (प्रथम भाग अध्याय १)। नैपोलियन बोनापार्ट के युद्धों के समाप्त होने के कुछ वर्ष पश्चात् उन्होंने यूरोप के इतिहास में विशेष कीर्ति उपार्जित की। यों तो इस युग में फ्रांस, बेल्जियम, जर्मनी और इटैली आदि में भी क्रांतियाँ हुई थीं और कुछ देशों में क्रांतिकारी सफल भी हुये थे, किन्तु यूनान का उदाहरण इन सब से पृथक है। यूनान ने उपरोक्त देशों के पूर्व ही न केवल क्रांति वरन् स्वाधीनता की लड़ाई प्रारम्भ कर दी थी। इसके अतिरिक्त उसने तुर्की जैसी ऐशियाई शक्ति के विरुद्ध मोर्चा लिया था, जो सर्वदा से अपने निरंकुश तथा अत्याचारपूर्ण व्यवहार के लिए बदनाम थी। उसने स्वाधीनता युद्ध में पूर्ण सफलता उपलब्ध की। यह भी एक ऐसी विशेषता है जो हम बेल्जियम को छोड़कर इस काल के अन्य देशों के इतिहास में नहीं पाते। इस सम्बन्ध में यूनान का नाम प्राचीन इतिहास में अमर था तथा अर्वाचीन इतिहास में भी अमर रहेगा।

यूनान की तरह बालकन प्रायद्वीप के अन्य देश भी इस समय तुर्की साम्राज्य में सम्मिलित थे। परन्तु अन्य देशों की तुलना में यूनानियों के साथ कुछ अच्छा व्यवहार किया जाता था। उनको तुर्की के वैदेशिक विभाग तथा युद्ध के कारण अधीन देशों के शासनों में श्रेष्ठ स्थान दिया जाता था। तुर्की बेड़े में भी यूनानी बड़ी संख्या में काम करते थे तथा उसके कई उच्च पदाधिकारी यूनानी जाति के थे। यूनानियों को व्यापार तथा कलाकौशल के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता थी। उनको स्थानीय प्रशासन के विशेष अधिकार भी

उपलब्ध थे। समुद्र तट पर रहने वाले यूनानी और एजियन सागर के द्वीपों के निवासी इस सम्बन्ध में विशेष रूप से सौभाग्यशाली थे। यूनानियों को केवल कुछ निश्चित धन राशि कर के रूप में केन्द्रीय शासन को देनी पड़ती थी तथा कुछ नाविक भी तुर्की बेड़े में नौकरी करने के लिये भेजने पड़ते थे। यूनानियों को धार्मिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त थी। इस सम्बन्ध में उनकी स्थिति आयरलैंड के कैथोलिकों और अस्ट्रिया के प्रोटेस्टैन्टों से भी अधिक संतोषजनक थी। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में यूनान में प्राचीन विद्या और कला का पुनरुत्थान बहुत बड़े स्तर पर हो चुका था। इससे तथा धार्मिक स्वतन्त्रता के कारण यूनानियों में अकस्मात राष्ट्रीयता की अनुभूति हो गई थी और वे राष्ट्र के कल्याण के लिये किसी महान् कार्य के करने के लिये उत्सुक थे। फ्रांस की राज्यक्रांति तथा नैपोलियन का भी उनके विचारों पर सुन्दर प्रभाव पड़ा था। उन्होंने भी राष्ट्रीय उन्नति के विचार से फ्रांस और इटैली की तरह गुप्त समितियां स्थापित कर ली थीं। इन कारणों से यूनानी स्वाधीनता युद्ध के प्रारम्भ करने को विवश हुये।

यूनानियों ने तुर्की के विरुद्ध सर्वप्रथम फ्रांस की सन् १७८९ ई० की राज्यक्रांति से भी पूर्व शस्त्र उठाये थे, परन्तु वे कृतकार्य न हुए थे। जिस काल में

पराजय

अमेरिका में स्वाधीनता का युद्ध चल रहा था उस समय उक्त प्रायद्वीप में मोरीया के निवासियों ने तुर्की की अधीनता से स्वतन्त्र होने का प्रयत्न किया था (सन् १७७४ ई०), परन्तु उस समय, जैसा कि वर्णन किया गया है, भाग्य ने उनका साथ न दिया था। इसके पश्चात् सन् १८२१ ई० में उत्तर की ओर मौलडेविया (Moldavia) और वौलेकिया (Wallachia) के प्रान्तों में एक महान् आन्दोलन किया गया, किन्तु वह राष्ट्रीय आधार पर नहीं किया गया था। इस समय सुल्तान और यानीना (Janina) के शासक अली के बीच युद्ध हो रहा था। अतएव यूनान के नेता इप्सिलांति (Ypsilanti) को आन्दोलन करने का अनुपम अवसर प्राप्त हुआ। परन्तु सन् १७७४ ई० की भांति अबकी बार भी यूनानी सफल न हुये। उनके नेता को अस्ट्रिया में शरण लेनी पड़ी। उसकी असफलता का सबसे बड़ा कारण यह था कि वह रूस से सहायता प्राप्त करने की आशा करता था, परन्तु मैटर्निक के प्रभाव से ज़ार सिकन्दर प्रथम के विचार बदल गये थे। अतएव उसने यूनानियों की सहायता न की।

इसी बीच में मोरीया के प्रायद्वीप में भी विद्रोह की आग फैल गई थी। अबकी बार आन्दोलन राष्ट्रीय आधार पर किया गया। अतएव वह शीघ्र ही यूनान के समस्त देश में फैल गया और उसने एक अत्यन्त भयानक रूप धारण

कर लिया। इसके लिये यूनानियों की एक गुप्त समिति ने, जिसका नाम 'Hetairia Philike' अर्थात् 'मित्र-समाज' (Society of Friends) था, पृष्ठभूमि पहले ही से तैयार कर ली थी। यों तो यूनानियों ने युद्ध में असाधारण वीरता, आत्मोत्सर्ग तथा दृढ़ता का प्रमाण दिया, परन्तु उनके नाम पर एक काला धब्बा भी है। उन्होंने मोरीया में अगणित मुस्लिम निवासियों को तलवार के घाट उतार दिया। इसके प्रत्युत्तर में तुर्कों ने थैसेली और मेसीडन के निवासियों की अत्यन्त क्रूरता से हत्या की तथा यूनानी स्त्रियों को दास बनाकर बेचा। उन्होंने तीन यूनानी पादरियों को भी फांसी के तख्ते पर लटका दिया। सारांश यह कि इस प्रकार के भद्दे कृत्यों के साथ यूनानियों का स्वाधीनता युद्ध चलता रहा। सन् १८२४ ई० के पश्चात् ऐसा प्रतीत हुआ कि यूनानी वीरों को अबकी बार भी पराजय स्वीकार करनी पड़ेगी। इस वर्ष सुल्तान ने मिस्र के शासक मुहम्मदअली को, जो अपनी युद्ध शक्ति और योग्यता के लिये प्रसिद्ध था, प्रलोभन देकर अपनी सहायता के लिये बुलाया। उसके तथा उसके पुत्र इब्राहीम पाशा के आते ही युद्ध का चित्र बदल गया। ऐथेन्स और कई अन्य प्रसिद्ध नगरों तथा दुर्गों पर शत्रु का अधिकार हो गया। यह देखकर यूनानी यूरोप के अन्य देशों से कुमक प्राप्त करने का पूरी कोशिश से प्रयत्न करने लगे।

अन्य देशों का हस्तक्षेप

युद्ध के बदले हुये चित्र ने यूरोपीय राष्ट्रों के हस्तक्षेप को आवश्यक कर दिया था, किन्तु उनमें पारस्परिक ईर्ष्या थी। इसके अतिरिक्त उनके आदर्श भी विभिन्न थे। ऐसी अवस्था में उनमें एकमत कैसे हो सकता था? यह एक ऐसा उलझा हुआ प्रश्न था जिसका हल किसी की समझ में न आता था। इंग्लैंड और आस्ट्रिया रूस से डाह करते थे। मेटर्निक इस बात को बिल्कुल न चाहता था कि इस सीमा के विशाल राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये जिसे वह विद्रोह कहकर सम्बोधित करता था कोई कार्य किया जाय। परन्तु जब सन् १८२७ ई० तक युद्ध की दशा विशेष रूप से बिगड़ गई तो यूरोपीय राष्ट्रों से सहन न हो सका। उधर कुमक के भेजे जाने के लिये अन्य प्रकार से भी मार्ग निष्कंटक हो गया था। रूस में निकोलस प्रथम (१८२५–१८५५) ने, जो अपने दृढ़ संकल्प के लिये विख्यात था, सिकन्दर का स्थान ले लिया था। ब्रिटिश द्वीपसमूह में रूढ़िवादी वाह्यमन्त्री कासलरे का स्थान उदार विचार के मन्त्री कैनिंग ने ले लिया थी। रूस तुर्कों को उपरोक्त युद्ध में विजयी होते न देख सकता था। इंग्लैंड इस बात को सहन न कर सकता था कि जिस युद्ध में विख्यात अंगरेज़ कवि बायरन प्राणों की आहुति चढ़ा चुका था तथा जिसके लिये अन्य अंगरेज़ स्वयंसेवक भी आत्मोत्सर्ग कर चुके थे, उसमें

विजय लक्ष्मी तुर्की का साथ दे। सारांश यह कि इस प्रकार के कारणों से सन् १८२७ ई० में रूस, फ्रांस और ब्रिटिश द्वीपसमूह के शासनों ने सम्मिलित होकर सुल्तान को युद्ध बन्द करने को लिखा। भूमध्य सागर के अंगरेज़ी तथा फ्रांसीसी बेड़ों को यूनान जाने की आज्ञा दी गई। अंगरेज़ी तथा फ्रांसीसी शासनों का उद्देश्य सुल्तान को केवल भयभीत करना था, न कि उस से युद्ध करना। इसके विपरीत उनके बेड़ों ने २० अक्टूबर सन् १८२७ ई० को रूसी बेड़े की सहायता से सुल्तान और इब्राहीम पाशा के सम्मिलित बेड़े को नवारीनो की खाड़ी में ध्वंस कर दिया। इस समाचार को पाकर यूरोप के राजनीतिज्ञ आश्चर्य चकित हुए। इंग्लैंड की ओर से क्षमा याचना कर ली गई, परन्तु फ्रांसीसी सेना ने मोरीया पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् रूस और तुर्की में एक साधारण युद्ध हुआ और तेरह सहस्र रूसी सेना कुस्तुन्तुनिया की दिशा में बढ़ती हुई दृष्टिगोचर हुई। यह देखकर सुल्तान संधि के लिये तत्पर हो गया।

ऐड्रियेनोपल की संधि, १८२९ ई०

तुर्की के प्रसिद्ध नगर ऐड्रियेनोपल में सन्धि की शर्तें निश्चित की गईं। यूनान को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी गई। दूसरे वर्ष ग्रेट ब्रिटेन, रूस तथा फ्रांस को इसको अक्षुण्ण रखने का उत्तरदायित्व दिया गया। रूस के जहाज़ों का जलडमरूमध्य दानियाल तथा बौस्पोरस से गुज़रने का अधिकार स्थापित रहा। बालकन प्रायद्वीप के जो राज्य डैन्यूब नदी के तट पर स्थित थे उन पर रूस का प्रभुत्व स्थापित कर दिया गया। दूसरे प्रकार से भी उक्त सन्धि रूस के अनुकूल थी। सन् १८३३ ई० में बवेरिया के बादशाह लूई का पुत्र ओटो (Otto) यूनान के सिंहासन पर बिठलाया गया। इस प्रकार सुल्तान के साम्राज्य का एक बड़ा देश स्वाधीन हो गया। उसका अनुकरण करके बालकन प्रायद्वीप में अन्य स्वाधीन राज्यों का उत्थान भी हुआ। इस प्रकार कुछ समय के पश्चात् उसकी राजनैतिक स्थिति पूर्णतया बदल गई।

पोलैंड

प्राचीन इतिहास

सोलहवीं शताब्दी से पोलैंड का शक्तिशाली देश विस्तूला नदी की तलहटी में बसा हुआ था। सत्रहवीं शताब्दी में उसने कई बार अपनी सैनिक शक्ति का प्रमाण दिया था। उस समय उसने बाल्टिक सागर के बन्दरगाहों को प्राप्त करने के उद्देश्य से स्वीडन से संघर्ष किया था, रूस के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप किया था तथा तुर्कों को दूर भगाने में अस्ट्रिया की सहायता की थी (सन् १६८३ ई०)।

उसने तुर्की साम्राज्य के कुछ भाग पर अधिकार करने में भी सफलता प्राप्त की थी। जैसे जैसे पोलैंड के राज्य में वृद्धि हुई वैसे वैसे उसके पड़ोसियों की ईर्ष्या भी बढ़ी तथा अन्त में वे उसकी स्वाधीनता को अक्षुण्ण न देख सके। उधर पोलैंड के देश तथा शासन व समाज में कुछ ऐसे दोष विद्यमान थे जिनके कारण उसके पड़ोसियों अर्थात् रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशा को बड़ी सुविधा मिली। वहां सर्वदा से प्राकृतिक सीमाओं तथा सुदृढ़ किलों का अभाव था, उसकी भूमि चौरस थी उसकी जनसंख्या इतनी कम थी कि अपने शत्रुओं का सामना करने के लिये वह पर्याप्त सेनायें एकत्रित न कर सकता था। पोलैंड में कुछ अल्पसंख्यक तथा भिन्न मतों को मानने वाली जातियाँ भी निवास करती थीं जो अपनी अपनी मांगों तथा पारस्परिक द्वेष के कारण शासन के मार्ग में अवरोध उपस्थित करती रहती थीं। सब से दोषयुक्त विषय यह है कि आवश्यकता के समय वे स्वदेश के शत्रुओं से सहायता माँगने में भी आगा पीछा न करती थीं।

ऐसी अवस्था में आवश्यक था कि पोलैंड को बाह्य संकटों का सामना करना पड़े। इस प्रकार का एक बहुत बड़ा संकट सन् १७७२ ई० में उपस्थित हुआ। इस वर्ष रूस की सम्राज्ञी कैथरिन महान् ने प्रशा के बादशाह फ्रेडरिक महान् तथा आस्ट्रिया की महारानी मैरिया थेरिसा से मिलकर पोलैंड का प्रथम विभाजन किया। प्रथम ने उसके उस समस्त भाग पर अधिकार कर लिया जो डूना तथा नीपर नाम की नदियों के पूर्व में था। द्वितीय ने डेनसिक (Danzig) के प्रसिद्ध नगर को छोड़कर पश्चिमी प्रशा पर अधिकार कर लिया तथा आस्ट्रिया ने क्रेको (Cracow) नगर को छोड़कर गेलिशिया को अपने अधिकार में ले लिया। इस प्रकार स्वाधीन पोलैंड को अपनी भूमि के लगभग चौथाई तथा अपनी जनसंख्या के पाँचवें भाग से हाथ धो लेने पड़े। उसकी प्राकृतिक सम्पत्ति के आधे भाग पर भी शत्रुओं का अधिकार हो गया था।

प्रथम विभाजन, १७७२ ई०

पोलैंड के प्रथम विभाजन का फल यह भी हुआ कि वहां के बहुत से अमीर तथा देशभक्त सुधार की प्रबल इच्छा प्रकट करने लगे, किन्तु बाह्य शत्रुओं के कारण वहां किसी प्रकार का सुधार सम्भव न हो सकता। लगभग २१ वर्ष तक यह अभागा देश दूसरों के प्रभुत्व में रहा। इसके बाद सन् १७९३ ई० में रूस तथा प्रशा ने मिलकर पोलैंड का दूसरा विभाजन किया। दो वर्ष बाद उसको तीसरी बार विभाजित किया गया। अबकी बार आस्ट्रिया ने भी उसमें भाग लिया था। अन्तिम दो विभाजनों द्वारा विस्तूला की घाटी

दूसरा तथा तीसरा विभाजन, १७९३ व १७९५ ई०

का ऊपरी देश अस्ट्रिया को तथा वारसा नगर के साथ उसका निचला देश प्रशा को प्राप्त हुआ। शेष हिस्से पर जो क्षेत्रफल में सबसे अधिक था रूस की ज़ारीना शासन करने लगी। इस प्रकार स्वाधीन पोलैंड का अस्तित्व मिट गया। इस विषय में हम प्रसिद्ध पोलिश योद्धा तथा देशभक्त कोसियस्को (Kosciuszko) के नाम को विस्मृत नहीं कर सकते। उसने वीरता तथा त्याग का अनुपम उदाहरण पेश किया था। किन्तु उसके प्रयत्नों के अतिरिक्त भी सेनाओं की कमी के कारण बाहरी फौजों की बाढ़ को रोकना न केवल कठिन वरन् असम्भव प्रमाणित हुआ।

स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रयत्न

स्वाधीनता के विनष्ट हो जाने पर भी पोलों में राष्ट्रीयता के उद्‌गारों का अंत न हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में उन्होंने कई बार स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु वे सफल मनोरथ न हुये। सन् १८१८ ई० में ज़ार सिकन्दर प्रथम ने अपने अधीन पोलों को एक संविधान स्वीकृत किया और उनके संसद के पहले अधिवेशन के अवसर पर उसकी स्वयं अध्यक्षता की। इसके पश्चात् उसने मैटर्निक के प्रभाव से उसकी ओर से मुख मोड़ लिया। इसमें सन्देह नहीं कि पोलैंड का संविधान ज्यों का त्यों चलता रहा, किन्तु उसकी कुछ आवश्यक धाराओं को कम महत्व दिया गया। ज़ार के बदले हुए दृष्टिकोण को देखकर रूसी पदाधिकारी भी पोलों के साथ अवांछनीय व्यवहार करने लगे।

सन् १८२५ ई० में सिकन्दर प्रथम की मृत्यु हुई एवं उसके स्थान में निकोलस प्रथम ज़ार हुआ। निकोलस को पूर्ण रूप से निरंकुश शासन प्रणाली रुचिकर थी। उसके सिंहासनारूढ़ होते ही पोलों की विकलता बढ़ी और गुप्त समितियों और कृत्यों की वृद्धि हुई। जब फ्रांस के सन् १८३० ई० की जौलाई की क्रांति के समाचार पोलैंड पहुंचे तो इस वर्ष नवम्बर मास में वारसा नगर में सैनिकों ने विद्रोह किया। जनवरी सन् १८३१ ई० में क्रांतिकारियों की ओर से यह घोषणा की गई कि पोलैंड का राजसिंहासन खाली है। दूसरे शब्दों में इसका यह अर्थ था कि पोलैंड ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी। फ़र्वरी के प्रारम्भ में २ लाख रूसी सेना पोलैंड में प्रविष्ट हुई। पोलों ने बड़ी वीरता और प्रयत्न से उसका सामना किया, परन्तु पूर्ण एकता तथा अनुशासन की अनुपस्थिति में वे कृतकार्य न हो सके। यूरोपीय शक्तियों ने भी पोलैंड के आंतरिक झगड़ों में हस्तक्षेप करना अनुचित समझा। अस्तु उक्त क्रांति सफल न हुई। फ़र्वरी सन् १८३२ ई० में ज़ार ने संविधान को स्थगित कर दिया तथा पोलैंड को पूर्ण रूप से रूसी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। इसके पश्चात् क्रांतिकारियों को कठोर दण्ड

दिया गया। जिन सैनिकों ने क्रांति में भाग लिया था वे बहुत दूर भेज दिये गये। क्रांतिकारियों के बालकों को, जो पुरुष थे, बन्दी करके रूस की सैनिक पाठशालाओं में भेज दिया गया। पोलिश पाठशालाओं और विश्वविद्यालयों को बन्द कर दिया गया। वारसा के अजायबघरों से राष्ट्रीय चित्र हटा दिये गये और सेंट पीटर्सबर्ग भेज दिये गये। पोलैंड के शासन के लिये समस्त आवश्यक आदेश रूस की राजधानी से दिये जाने लगे। सन् १८३३ ई० में पोलैंड में विद्रोह की अग्नि पुनः भड़की, परन्तु अबकी बार भी पोलों के सब प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुये। विश्व के प्रथम महायुद्ध (१९१४–१९१८) के पश्चात् पोलैंड की स्वाधीनता लौटा दी गई। इसके पूर्व उसकी प्राप्ति के लिये किसी प्रकार का राष्ट्रीय आन्दोलन सफल न हो सका था।

तीसरा अध्याय

औद्योगिक क्रान्ति

गत अध्यायों में हमने यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था तथा उस लोकतन्त्रीय व राष्ट्रीय उथल पुथल पर प्रकाश डाला था जो वहां फ्रांस की सन् १७८९ ई० की राज्यक्रांति तथा नैपोलियन के प्रभाव से हुई थी। इनके बहुत पहले इंग्लैंड में एक वृहद् एवं महत्वपूर्ण क्रान्ति आरम्भ हो गई थी जिसने विश्व के इतिहास तथा मनुष्य के रहन-सहन को उन से भी अधिक प्रभावित किया। इसके कार्यकर्ताओं ने ओजस्वी भाषणों द्वारा कभी किसी सभा को प्रभावित करने का प्रयत्न नहीं किया। न उन्होंने कभी किसी सेना की सहायता से बेस्तील के दुर्ग पर विजय प्राप्त की और न कभी वाटरलू के युद्ध में नैपोलियन बोनापार्ट को पराजित किया। इसके विपरीत उनका ध्यान नित्य प्रति के साधारण कार्यों की ओर आकर्षित था। उदाहरणार्थ गृह-लक्ष्मी का तकली और चरखे की सहायता से सूत कातना, जुलाहों का प्राचीन तथा अनाकर्षक करघों से कपड़ा बुनना और खानों में कार्य करने वाले मज़दूरों का उसके जल को बाहर करने के प्रयत्न में लगे रहना। ये लोग सदैव पहियों, सिलेन्डरों, चाम-पट्टियों तथा रोलरों आदि में सुधार करने एवं भिन्न प्रकार की कलों के आविष्कार करने में निमग्न थे। अन्त में अगणित असफलताओं तथा निराशाओं के पश्चात् उन्होंने कतिपय ऐसे आविष्कार किये जिनका प्रभाव मनुष्य के जीवन तथा विचारों पर उतना अधिक पड़ा जितना कि राष्ट्रीय महासभा की समस्त आशाओं तथा नैपोलियन की सम्पूर्ण विजयों से भी सम्भव न हो सका था।

उपरोक्त पंक्तियों में हमने जिस क्रान्ति की ओर संकेत किया है वह औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के नाम से विदित है। इसका श्रीगणेश इंग्लैंड में हुआ था। तदुपरान्त उसने यूरोप के अन्य देशों में अपना चमत्कार

दिखलाया। विश्व के इतिहास में किसी भी अन्य घटना ने जनसाधारण के जीवन को ऐसा प्रभावित नहीं किया; न मनुष्य के उत्थान के लिये इतने अधिक सुमार्ग दिखाये, और न किसी अन्य घटना अथवा आन्दोलन के फलस्वरूप मनुष्य को इतना अधिक कष्टमय तथा संदिग्ध जीवन का सामना ही करना पड़ा। अन्य क्रांतियों का कार्य प्राय: रक्तरंजित तथा कोलाहलपूर्ण था। इसके प्रतिकूल औद्योगिक क्रान्ति का अधिकतर कार्य शान्तिपूर्वक हुआ। परन्तु यदि इस क्रान्ति ने एक ओर आवश्यक वस्तुओं तथा सुविधाजनक सामग्री के निर्माण में सहायता दी तो दूसरी ओर उसके कारण देश में बड़ा विनाश भी हुआ और जब वह अपने उत्कर्ष पर थी तो उसने पर्याप्त कोलाहल भी किया। इस क्रान्ति के आरम्भ तथा अन्त के सम्बन्ध में कोई निश्चित तिथि निर्धारित नहीं की जा सकती। परन्तु इतना हम प्रमाण सहित कह सकते हैं कि इंग्लैंड में सन् १७५० ई० और सन् १८५० ई० के बीच उसका सबसे अधिक प्रभाव रहा। तदुपरान्त उसने यूरोप के अन्य प्रदेशों, अमरीका, एशिया तथा अफ्रीका में पदार्पण किया। सभी देशों में उसका प्रभाव समान रहा। परन्तु हम यह कदापि नहीं कह सकते कि आज बीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में भी उसका अन्त हो चुका है; क्योंकि वर्तमान काल में विज्ञान की सहायता से जो आश्चर्यजनक तथा चमत्कारपूर्ण आविष्कार हो रहे हैं उन सबको भी हम एक प्रकार से औद्योगिक क्रान्ति के अन्तर्गत सम्मिलित कर सकते हैं।

आरम्भ, उत्कर्ष तथा अन्त

प्राचीन काल में पाश्चात्य देशों में यूनानियों तथा रोमनों की दो सर्वश्रेष्ठ तथा सभ्य जातियां थीं। उन्होंने इतिहास में उच्चकोटि की ख्याति प्राप्त की थी, किन्तु उनका ध्यान कलों के आविष्कार की ओर नहीं गया। इसके पश्चात् मध्यकालीन युग में भी इस ओर कोई विशेष प्रगति प्रदर्शित नहीं की गई। अत: अठारहवीं शताब्दी से पूर्व तक कलाकौशल का सब कार्य प्राय: उसी भांति होता रहा जिस भांति प्राचीन यूनानियों अथवा रोमनों के समय में होता था। कृषि करने का ढंग भी पूर्ण रीति से प्राचीन था। कपड़ा प्राचीन ढंग के करघों द्वारा बुना जाता था। बढ़ई और लोहारों को सारा कार्य हाथ से करना पड़ता था। तिजारती वस्तुयें एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राचीन ढंग की मन्द चाल वाली गाड़ियों द्वारा भेजी जाती थीं। लन्दन से रोम तक पत्रों के पहुँचने में उतना ही समय लगता था जितना कि कॉन्सटेंटाइन के शासनकाल में लगता था। यदि सीज़र ऑगस्टस के समय का कोई कृषक, जुलाहा अथवा लोहार अठारह सौ वर्ष उपरान्त यूरोप में जीवित अवस्था में लौटकर आ सकता तो उसे अपने युग के कलाकौशल और धन्धों

अठारहवीं शताब्दी से पूर्व की दशा

का अवलोकन करके मनुष्य के उत्कर्ष तथा उसकी सभ्यता पर महान् शोक होता। औद्योगिक क्रान्ति के मायावी जादूगर ने गत दो सौ वर्षों की इस बुरी दशा को बिल्कुल बदल दिया और मनुष्य के उत्थान एवं सभ्यता को उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। अस्तु आज हम अपने चारों ओर अनेक प्रकार की चमत्कारपूर्ण कलों तथा सुख एवं सुविधा के प्रदान करने वाली वस्तुओं को देखते हैं। इस मायावी की माया पर दृष्टि डालना उतना ही महत्वपूर्ण, आवश्यक तथा मनोहारी है जितना कि शासकों, संसदों, युद्धों तथा सन्धियों का ज्ञान प्राप्त करना।

आरम्भ के कारण

स्वभावत: यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अठारहवीं शताब्दी में ऐसी कौनसी घटनायें घटित हुई जिनके परिणामस्वरूप कलों का आविष्कार करने एवं कलाकौशल के प्राचीन ढंग को बदलने के हेतु मनुष्य को बाध्य होना पड़ा। यह एक विचारशील प्रश्न है। इसलिये उस पर संक्षेप रूप में विचार करना अति आवश्यक है। इस सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि मनुष्य के जीवन में कभी कभी संयोग से ऐसी घटनायें घटित हो जाया करती हैं जिनका उसकी प्रगति पर बड़ा ही आश्चर्यजनक प्रभाव होता है। इसी प्रकार नवीन अनुसन्धानों तथा आविष्कारों के सम्बन्ध में भी मनुष्य को संयोग से पूर्ण रीति से सहयोग प्राप्त हुआ। उदाहरणार्थ यह एक संयोग था कि सर आइज़क न्यूटन ने किसी खास दिन और खास मौके पर वृक्ष से गिरते हुये सेब को देखा और इस सामान्य घटना से पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का ज्ञान प्राप्त किया। यह भी एक आकस्मिक घटना थी कि गालीलियो ने पीसा के गिर्जे में हिलते हुये प्रकाश-दीप को देख कर घड़ी के लटकन के सिद्धान्त को ज्ञात करने में सफलता प्राप्त की। इसी भांति मशीनों के आविष्कार के सम्बन्ध में भी यह एक बहुत बड़ा संयोग था कि एक अँगरेज़ जुलाहे की स्त्री ने उसका चरखा उलट दिया जिससे उसका ऐसा स्वरूप बन गया कि उसे देख कर वह एक पहिये को घुमा कर कई तकुओं के घुमाने में सफल हुआ तथा उसने सूत कातने की एक ऐसी कल का निर्माण किया जिसने कपड़ा बनाने की कला में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। यह भी एक महत्वपूर्ण बात है कि आविष्कारों का श्रीगणेश सदैव कठिन होता है और जब एक या दो आविष्कार हो जाते हैं तो उन्हीं से सम्बन्धित अन्य आविष्कार भी सम्भव होते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार जब हारग्रीव्ज़ ने सूत कातने की 'जेनी' नामक मशीन का निर्माण किया तो उसी सिद्धान्त पर अवलम्बित अन्य मशीनों का भी आविष्कार हुआ जिसके फल-स्वरूप कपड़ा बनाने की कला में क्रान्ति उत्पन्न हो गई। इसी प्रकार जब जेम्स वाट ने भाप के इंजन का आविष्कार किया तो शीघ्र ही दूसरे मनुष्यों ने उसमें सुधार करके उसे भिन्न कार्यों के लिये उपयोगी बना लिया। अठारहवीं शताब्दी में कई अन्य

साधन भी औद्योगिक क्रान्ति के अनुकूल थे जैसे प्रगतिशील मनुष्य, व्यापार की उन्नति तथा निर्मित की गई वस्तुओं की बढ़ती हुई मांग इत्यादि। इस प्रकार के कारणों से सर्वप्रथम यूरोप में व्यापारिक क्रांति हुई जिससे वहां व्यापार के क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति हुई। इसके पश्चात् वहां औद्योगिक क्रान्ति आरम्भ हुई। उपनिवेशों का संस्थापन तथा उनके साथ व्यापारिक सम्बन्ध हो जाने से कुछ विशेष वस्तुओं की आवश्यकता का अधिक अनुभव होने लगा था। वहां सबसे अधिक आवश्यकता सूती कपड़े की थी जो ऊनी कपड़े की अपेक्षा अधिक सस्ता था। इस प्रकार की अन्य वस्तुयें मिट्टी के पात्र, शीशे, जूते तथा लोहे की वस्तुयें थीं। औद्योगिक क्रान्ति को विज्ञान की उन्नति से भी बड़ी सहायता मिली। गैस तथा ताप के सिद्धान्तों के ज्ञान के बिना भाप द्वारा संचालित इंजन में कभी सुधार नहीं हो सकता था। वैज्ञानिकों ने ही ऐसे उपाय ज्ञात किये थे जिनके द्वारा लोहा तथा फ़ौलाद निर्माण किये जा सकते थे। आधुनिक काल में प्रत्येक कला के निमित्त पृथक प्रयोगशालायें हैं जहां उस कला के विषय में प्रयोग किये जाते हैं और उसमें अधिक से अधिक उन्नति करने की चेष्टा की जाती है। जब तक विज्ञान की समुचित उन्नति नहीं हुई उस समय तक औद्योगिक क्रान्ति की गति भी मन्द रही।

उपरोक्त कारणों से यह बात भली भांति सिद्ध हो जाती है कि अठारहवीं शताब्दी ईस्वी में औद्योगिक क्रांति का श्रीगणेश क्यों हुआ था। लेकिन हम केवल इनको औद्योगिक क्रान्ति के कारण नहीं मान सकते।

औद्योगिक क्रान्ति का क्षेत्र

इस विषय के अन्तर्गत हमें उन समस्त आविष्कारों तथा मनुष्यों का उल्लेख भी करना होगा जिनके कारण विभिन्न कलाओं की आश्चर्यजनक उन्नति हुई। ऐसा करने के पूर्व हमारे लिये उक्त क्रांति के क्षेत्र पर प्रकाश डालना भी अति आवश्यक है। औद्योगिक क्रान्ति कुछ विशेष परिवर्तनों की क्रमबद्ध शृंखला थी जिसके द्वारा कपड़ा, लोहा, फ़ौलाद और अन्य वस्तुओं के निर्माण करने की रीतियों में चमत्कारपूर्ण उन्नति हुई। इसके परिणाम स्वरूप जो कार्य पहले हाथ से होता था वह अब कलों द्वारा होने लगा। इसका क्षेत्र अति विशाल था। उसमें व्यापार एवं कलाकौशल से सम्बन्धित कई अन्य बातें भी सम्मिलित थी, जैसे (१) कपड़ा और अन्य वस्तुओं के बनाने के लिये भाप अथवा पानी से चलने वाली कलों का आविष्कार किया गया (२) कतिपय ऐसे आविष्कार हुये जिनके द्वारा जगत में कोयले तथा लोहे का युग प्रारम्भ हुआ। इसका यह मतलब है कि मानव जीवन के उत्थान में एक ऐसा काल आया जब इन दो वस्तुओं का प्रयोग अत्यधिक होने लगा। (३) भाप से चलने वाले इंजन तथा नौकाओं का आविष्कार किया गया, जिनके कारण

कलाकौशल तथा यातायात में क्रान्ति उत्पन्न हुई। (४) जो मनुष्य अभी तक अपने घरों में करघों द्वारा कपड़ा बनाते थे अथवा किसी अन्य घरेलू धन्धे में व्यस्त थे उन्होंने प्राय: अपने पैत्रिक व्यवसाय से विदा लेकर कारखानों तथा मिलों में नौकरी कर ली। (५) इन पर पूंजीपतियों का अधिकार स्थापित हुआ। कारण कि पूंजीपतियों के सहयोग के बिना उनका अपने स्थानों में स्थापित रहना असम्भव था। इसलिये पूंजीवाद की अत्यधिक उन्नति हुई। (६) व्यापार तथा कलाकौशल के सम्बन्ध में जो मध्यकालीन युग की बाधायें थीं वे सब हटा दी गईं और असीमित प्रतिस्पर्द्धा ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया। (७) व्यापार एवं कलाकौशल की इतनी अधिक उन्नति हुई कि सब प्रकार का कलों द्वारा निर्मित सामान बहुत बड़ी मात्रा में तथा कम मूल्य पर उपलब्ध होने लगा। इसके फलस्वरूप जनसाधारण का जीवन पहले की अपेक्षा अधिक सुखमय हो गया। (८) जनसंख्या में असाधारण वृद्धि हुई तथा अधिकांश में लोग ग्रामों के स्थान पर नगरों में निवास करने लगे।

कपड़ा बनाने की कला

औद्योगिक क्रांति ने अपना प्रभाव सर्वप्रथम कपड़ा बनाने की कला में प्रदर्शित किया। इस सम्बन्ध में इंग्लैंड में कई उपयोगी मशीनें निर्माण की गईं जो आधुनिक काल में, जो जटिल मशीनों का युग कहलाता है, नितान्त सरल तथा साधारण दृष्टिगोचर होती हैं। कपड़ा बनाने की कला में पहले सूत कातने का काम बड़ी मन्द गति से तथा निश्चिन्ततापूर्वक किया जाता था। अत: एक जुलाहा बड़ी सरलता से उतना सूत प्रयोग कर लिया करता था जितना कि पांच या छ: मनुष्य एक दिन में कात सकते थे। तदुपरान्त जब सन् १७३८ ई० में लंकाशायर के एक निवासी ने जिसका नाम 'जॉन के' था नाचने वाली ढरकी (Flying Shuttle) का आविष्कार किया तो पर्याप्त धागा उपलब्ध न होने के कारण जुलाहों की मुसीबत दुगुनी हो गई। कारण कि उसके द्वारा एक जुलाहा अकेले धागे को थान की चौड़ाई में एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचाकर दो जुलाहों का कार्य कर लेता था। सौभाग्य से सन् १७६४ ई० में इंग्लैंड निवासी एक जुलाहे ने एक ऐसी मशीन निर्मित की जिसके परिणाम-स्वरूप उनकी मुसीबत दूर हुई। उसका नाम हारग्रीव्ज़ था। वह ब्लेकबर्न नगर का निवासी था। जैसा कि हम पहले वर्णन कर आये हैं, उसकी मशीन का आविष्कार नितान्त संयोगवश हुआ था। एक दिन उसकी स्त्री ने उसके चरखे

हारग्रीव्ज़ की 'जेनी', १७६४ ई०

को उलट दिया। उसमें केवल एक ही पहिया था जिसके घुमाने से एक तकुआ घूमता था और उस पर तागा लिपट जाता था। जब यह साधारण मशीन उलट दी गई तो उसका पहिया कुछ देर तक घूमता रहा और उसका तकुआ तिरछे होने के स्थान पर सीधा हो गया। इस दृश्य को देखकर हारग्रीव्ज़ आश्चर्यचकित हो गया और उसके मस्तिष्क में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि इसी भांति तकुये सीधे सीधे लगाये जायें तो वे सब एक ही पहिये के घुमाने से एक साथ घूम सकते हैं। यह एक ऐसा सिद्धान्त था जो इसके पूर्व किसी के मस्तिष्क में जाग्रत नहीं हुआ था। हारग्रीव्ज़ शीघ्र ही इस सिद्धान्त के अनुसार प्रयोग करने में जुट गया। उसे किसी प्रकार की अड़चन भी नहीं हुई, क्योंकि वह स्वयं बढ़ई के कार्य में दक्ष था। उसने कुछ काल के पश्चात् सूत कातने की एक ऐसी मशीन का आविष्कार किया जिसमें एक पहिया घुमाने से आठ तकुये एक साथ घूमते थे। उसके आविष्कार के द्वारा जुलाहों की कठिनाई दूर हो गई। यह मशीन 'सूत कातने की जेनी' (Spinning Jenny) अथवा केवल 'जेनी' के नाम से विख्यात हुई। जेनी हारग्रीव्ज़ की धर्मपत्नी का नाम था और उसी के नाम पर इस मशीन ने ख्याति प्राप्त की। यदि यह स्त्री अपने पति का चरखा न उलटती तो उसे 'जेनी के आविष्कार करने में कदापि सफलता प्राप्त नहीं होती।

हारग्रीव्ज़ तथा उसकी पत्नी दोनों बड़े प्रसन्न थे परन्तु उनके पड़ोसी बड़े अप्रसन्न तथा चिन्तित हुये। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि उनके सरल हृदय पड़ोसी ने एक ऐसी मशीन निर्माण की है जिस से उनकी जीविका के नष्ट होने की सम्भावना है तो वे उसके मकान में घुस गये और उसकी मशीन को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। दीन हारग्रीव्ज़ को दूसरे नगर को चला जाना पड़ा। यहाँ उसने अपनी मशीनों को बेचकर यथेष्ट सम्पत्ति प्राप्त की। सन् १७७८ ई० तक, जब हारग्रीव्ज़ का स्वर्गवास हुआ, लगभग २० हज़ार 'जेनी' इंग्लैंड में निर्माण की जा चुकी थीं। इन में से कुछ तो इतनी विशाल थीं कि उनसे सौ धागे एक साथ काते जा सकते थे।

इंग्लैंड के अगणित कारीगर चरखे में अधिक सुधार करने के प्रयत्न में तत्पर हुये किन्तु यह सौभाग्य केवल प्रेस्टन निवासी रिचर्ड आर्कराइट (Richard Arkwright) नाम के एक नाई को प्राप्त हुआ कि उसने सर्वप्रथम ऐसे कारखानों के स्थापित करने में सफलता प्राप्त की जहां मशीनें पहले जल द्वारा और इसके बाद भाप द्वारा चलाई गईं। कुछ लोगों का

आर्कराइट तथा उसकी मशीन, १७६८ ई०

कथन है कि जिस मशीन के आविष्कार करने का श्रेय आर्कराइट को दिया जाता है वह वास्तव में किसी अन्य मनुष्य का आविष्कार है और उसने तो केवल उसे गुप्त रूप से प्राप्त करके उसके बनाने के अधिकार की रजिस्ट्री अपने नाम करा ली थी। वास्तविकता कुछ भी हो, सन् १७६८ ई० में उसे एक ऐसी मशीन बनाने का गौरव प्राप्त हुआ जिसमें दो जोड़े रोलर एक दूसरे से कुछ दूरी पर लगे हुये थे। जब कच्चा सूत अथवा ऊन उनके मध्य से निकाला जाता था तो वह दूसरे जोड़े से जो पहले की अपेक्षा कुछ ऊंचाई पर स्थित था, धागे के रूप में बट कर तकुओं पर लिपट जाता है। आरम्भ में जल द्वारा चलाये जाने के कारण यह मशीन 'वाटर फ्रेम' अथवा (Water Frame) 'जल ढांचे' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

इसके पश्चात् कुछ ही काल में आर्कराइट ने कई कारखाने खोले और अपने 'जल ढांचे' द्वारा इतनी सम्पत्ति उपार्जित की कि उसकी गणना धनी मनुष्यों में होने लगी। सन् १७८६ ई० में उसे लार्ड की उपाधि प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके चार वर्ष उपरान्त उसने अपनी मशीन में भाप शक्ति से चलने वाला इंजन लगाया और उसकी आय पहले की अपेक्षा और भी अधिक हो गई। आर्कराइट एक दृढ़ प्रतिज्ञ तथा कुशल व्यवसायी था। उसने अपनी मशीन द्वारा कम से कम २५ लाख डालर पैदा किये थे। इतना अधिक धन प्राचीन काल की मशीनों द्वारा कमाना बड़ा ही कठिन काम था। अस्तु आर्कराइट कारखानों की आधुनिक प्रणाली (Factory System) का प्रवर्त्तक कहलाता है। हारग्रीव्ज़ की भांति उसे भी प्रारम्भ में हाथ से कार्य करने वाले कारीगरों के विरोध का सामना करना पड़ा, लेकिन उसकी किंचित भी चिन्ता न करके वह अपने पथ पर दृढ़ रहा।

क्रॉम्पटन का 'म्यूल', १७७९ ई०

हारग्रीव्ज़ तथा आर्कराइट में से किसी ने भी पूर्ण कठिनाई का निवारण नहीं किया था। जेनी से जो सूत कत कर तैयार होता था वह बड़ा बारीक किन्तु कमज़ोर था। इसके विपरीत आर्कराइट के 'जल-ढांचे' से निर्मित धागा सुदृढ़ परन्तु मोटा होता था। सन् १७७९ ई० में एक नवयुवक क्रॉम्पटन ने दोनों के सिद्धान्तों को सम्मिलित करके एक मशीन निर्माण की जो 'म्यूल' (Mule) के नाम से प्रसिद्ध हुई। उसने गतिवान फ्रेम या ढांचे पर बीस या तीस तकुये इस प्रकार लगाये कि जब वह रोलरों से, जिनके बीच बिना कता हुआ सूत या ऊन निकाला जाता था, कुछ दूरी पर हटाया जाता था तो प्रत्येक तकुआ कुछ ऊन या सूत को बटता हुआ दूर ले जाता था। इस प्रकार जब

वह दृढ़ता सहित बट जाता था तो तुरन्त रोलर रोक दिये जाते थे, किन्तु ढांचा अधिक दूरी पर हटा लिया जाता था। इस तरह सूत अधिक लम्बा तथा बारीक हो जाता था।

क्रॉम्पटन के 'म्यूल' में निरन्तर सुधार होता रहा यहां तक कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक उसमें दो सौ तकुये तक तीव्र गति से काम करने लगे। इसी मशीन का संशोधित रूप हम आधुनिक काल के विद्युत द्वारा संचालित कारखानों में देखते हैं, जहां सूत कातने वाली मशीनों में कम से कम एक हज़ार तकुये कार्य करते हैं किन्तु उनके निरीक्षणार्थ केवल एक या दो लड़के यथेष्ट समझे जाते हैं। इनका काम केवल यह रहता है कि जैसे ही कोई धागा टूटे वैसे ही तुरन्त उसे जोड़ कर सुधार दें।

कार्टराइट का आश्चर्यजनक करघा

क्रॉम्पटन के 'म्यूल' ने जुलाहों की कठिनाइयों को केवल दूर ही नहीं किया बल्कि उन्हें चिन्ता ग्रसित भी कर दिया। कारण कि अब इतनी अधिक मात्रा में सूत निर्माण होने लगा कि प्राचीन ढंग के करघों पर उसका प्रयोग करना दुष्कर था। इस समस्या को हल करने का गौरव कैंट के एक पादरी डाक्टर कार्टराइट (Dr. Cartwright) को प्राप्त हुआ। सन् १७८४ ई० में उसने एक ऐसे करघे का निर्माण प्रारम्भ किया जिस में एक पहिया घुमा देने से कपड़ा बुनने का कार्य स्वयं होता रहता था। तीन वर्ष की निरन्तर कोशिश के उपरान्त उसने अपने कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त की। किन्तु जो करघा तैयार हुआ उसकी बनावट इतनी जटिल थी कि उसे वर्णन करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। परन्तु उसकी मशीन इतनी उपयोगी सिद्ध हुई कि कुछ सुधारों के पश्चात् वह सामान्यतः समस्त कारखानों में प्रचलित हो गई। सन् १८१३ ई० तक इस प्रकार के करघों की संख्या केवल इंग्लैंड में २४ हज़ार थी और सन् १८२३ ई० में यह संख्या ८५ हज़ार तक पहुंच गई। इस आश्चर्यजनक आविष्कार से सहस्रों हाथ से कार्य करने वाले जुलाहों की जीविका समाप्त हो गई। इसके अतिरिक्त हाथ से सूत कातने वाले तथा कपड़ा बुनने वाले कारीगर अधिकांश में वृद्ध थे तथा नवीन प्रकार की मशीनों से कार्य करने में असमर्थ थे। अतः बेकारी, दीनता तथा सर्वव्यापी विपत्ति धीरे धीरे अपनी अन्तिम सीमा पर पहुंचने लगीं।

शनैः शनैः सस्ता कपड़ा निर्माण करने की अन्य प्रकार की मशीनें भी आविष्कार की गईं, जैसे कालिकट या कालिको छापने की मशीन। यह सस्ता

कपड़ा सर्वप्रथम भारत के प्रसिद्ध बन्दरगाह कालीकट (Calicut) से इंग्लैंड में पहुंचा था। इसी कारण से वह अभी तक कालिको अथवा कालिकट कहलाता है। यह श्वेत तथा चमकीला होता था। इंग्लैंड के शिल्पकार उस पर हाथ से लकड़ी के छापों द्वारा भिन्न प्रकार के वेलबूटे बनाते थे। सम्भवत: यह कार्य वहां नेन्टस की धार्मिक घोषणा के पश्चात् ह्यूजीनाट्स के द्वारा प्रारम्भ किया गया था। सन् १७८३ ई० में यह प्रणाली जिसमें बहुत विलम्ब होता था और समय भी नष्ट होता था, समाप्त कर दी गई। अब कपड़ा छापने का कार्य रोलरों की सहायता से होने लगा। इन रोलरों पर विभिन्न प्रकार के वेलबूटे काट दिये जाते थे और कपड़ा शीघ्रता से उनके मध्य से निकाला जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि एक मनुष्य नई प्रणाली से उतना कपड़ा छापकर तैयार कर लेता था जिसके लिये पहले दो सौ मनुष्यों की आवश्यकता होती थी।

कालिकट छापने की नई रीति

कपड़ा स्वच्छ करने की प्रणालियों में भी सुधार किया गया। इस कार्य के निमित्त साधारणतया एसिड का प्रयोग किया जाने लगा। इस से पूर्व शिल्पकारों को अधिकांश में धूप की सहायता लेनी पड़ती थी। एसिड के प्रयोग से कार्य भी उच्च कोटि का होने लगा और समय की भी बचत हो गई। पहले इस कार्य में कई मास लगा करते थे, किन्तु अब नई प्रणाली से वही कार्य कुछ ही दिनों में समाप्त हो जाता था।

कपड़ा स्वच्छ करने की नवीन प्रणाली

इन समस्त आविष्कारों के, जिनका उल्लेख यहां किया गया है, होते हुए भी कपास से बिनौले पृथक करने के लिये किसी मशीन का आविष्कार नहीं हो सका था। इसलिये इस कार्य में बहुत समय नष्ट होता था। उदाहरणार्थ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में जिन्हें हम रुई का भण्डार कह सकते हैं, एक वृद्धा स्त्री को एक पौंड कपास साफ़ करने में लगभग समस्त दिन लग जाता था। चतुर श्रमिक भी प्रति दिन पांच या छ: पौंड कपास से अधिक साफ़ नहीं कर सकता था। सन् १७६२ ई० में उत्तर के एक निवासी ने जिसका नाम व्हिटने था और जो दक्षिणी राज्यों में क़ानून की शिक्षा प्राप्त करने आया था, एक ऐसी मशीन का आविष्कार किया जिसके द्वारा एक दिन में एक मनुष्य एक हजार पौंड से भी अधिक कपास साफ़ कर सकता था। इस आश्चर्यपूर्ण सफलता को देखकर लोगों ने नई मशीन

बिनौले पृथक करने की मशीन

को 'जिन' (Gin) अथवा 'दानव' का नाम प्रदान किया। कालान्तर में यह शब्दार्थ अंगरेज़ी भाषा में सम्मिलित कर लिया गया। इसका अर्थ है 'बिनौले पृथक करने की मशीन'।

मशीन चलाने के लिये जल का प्रयोग

सूत कातने और कपड़ा बुनने की तीव्र गति मशीनों के आविष्कार से कपड़ा निर्माण करने के वार्षिक औसत में पर्याप्त अन्तर हो गया। सन् १७६४ ई० में इंग्लैंड ने बाहर से केवल ४० लाख पौंड रुई की मांग की। सन् १८४१ ई० में उसने लगभग ५ हज़ार लाख पौंड रुई कपड़ा बनाने में व्यय की। इन आविष्कारों के कुछ वर्ष बाद तक लोगों ने इन मशीनों को जल द्वारा चलाया। सन् १७७० ई० और सन् १७८० ई० के मध्य तक सूती कपड़े के अगणित कारखाने नदियों तथा समुद्र के तट पर जहां कोई संकीर्ण खाड़ी थी दृष्टिगोचर होने लगे। सन् १७८८ ई० में इंग्लैंड में उनकी संख्या १४३ तक पहुंच गई। अठारहवीं शताब्दी ईस्वी के अन्त तक मशीनों के चलाने के लिये जल के स्थान पर भाप के इंजन का प्रयोग होने लगा।

जेम्स वाट तथा उसका भाप द्वारा संचालित इंजन

न्यूकोमन का इंजन, १७०४ ई०

कपड़ा बनाने की कला की अधिक उन्नति के निमित्त दो विशेष बातों की आवश्यकता थी। प्रथम, उसकी मशीनें किसी दृढ़ वस्तु अर्थात् लोहे या फौलाद से निर्माण की जायें। दूसरे, उनको चलाने के लिये जल के अतिरिक्त कोई दूसरी शक्ति ज्ञात की जाय, जो भारी मशीनों को चलाने में उपयोगी सिद्ध हो। इस काम में जेम्स वाट (James Watt) ने सूती कपड़े के मिल मालिकों की सहायता की। उसको प्राय: भाप द्वारा संचालित इंजन के आविष्कार का श्रेय प्रदान किया जाता है। किन्तु वास्तव में उसने तो इस इंजन में केवल सुधार किया था। उसके जन्म के पूर्व ही से इस प्रकार के इंजन विभिन्न कार्यों के लिये प्रयोग होते थे। सर्वप्रथम सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी के दूसरे अर्द्धभाग में यह सिद्धान्त हालैंड के एक निवासी के मस्तिष्क में उदय हुआ था कि यदि किसी प्रकार सिलेण्डर के भीतर गैस या बारूद विस्फोट हो सके तो उसके द्वारा पिस्टन आगे पीछे चल सकता है। इस मनुष्य का नाम हुईगेंस (Huyghens) था। यह एक क्रांतिकारी सिद्धान्त था जिसकी ओर उसने संकेत किया था। इससे लाभ उठाकर एक अंगरेज़, ने जिसका नाम 'न्यूकोमन' (Newcomen) था,

सन् १७०४ ई० में एक इंजन आविष्कार किया जिसके द्वारा कानों का जल सरलता से बाहर निकाला जा सकता था। अस्तु यह इंजन इस कार्य के लिये प्रयोग होने लगा।

इस भद्दे तथा प्राथमिक इंजन में सुधार करने का सौभाग्य जेम्स वाट (१७३६–१८१६) को प्राप्त हुआ। वह एक योग्य तथा बुद्धिमान मनुष्य था और ग्लासगो के विश्वविद्यालय में विज्ञान सम्बन्धी यन्त्र बनाता और उनकी मरम्मत करता था। एक दिन न्यूकोमन का एक साधारण इंजन उसके पास मरम्मत के लिये लाया गया। उसने अनुमान किया कि उस से कार्य करने में बहुत सा समय व्यर्थ ही नष्ट होता होगा। कारण कि जब उसमें सिलेण्डर की भाप पिस्टन को एक बार आगे बढ़ा देती थी तो उसे पीछे ढकेलने के लिये भाप को उसके भीतर ठंडा कर देना पड़ता था। इस प्रणाली में परिवर्तन करके वाट ने न्यूकोमन के इंजन में इस प्रकार सुधार करने का प्रयत्न किया कि पिस्टन को आगे ढकेलकर भाप तुरन्त एक दूसरे कोठे में आ जाय और वहां ठंडी होकर पिस्टन को पीछे ढकेलने के लिये प्रयोग की जा सके। इस उपाय से भाप से चलने वाला इंजन साधारण मशीनों के अतिरिक्त कुछ समय के उपरान्त रेलगाड़ियों और समुद्री जहाज़ों के चलाने में भी प्रयोग होने लगा।

जेम्स वाट का संशोधित इंजन, १७६९ ई०

इस प्रकार के इंजन को निर्माण करने में वाट को कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उस समय ऐसे कारीगरों का अभाव था जो सिलेण्डर और पिस्टन को बना सकें। इसके अतिरिक्त वाट एक सामान्य श्रेणी का मनुष्य था और नवीन आविष्कार की चेष्टा में उस पर ऋण भी होगया था। उसके सौभाग्य से एक धनी व्यवसायी ने उसकी सहायता करना स्वीकार कर लिया। उसकी सहायता से वाट को सन् १७६६ ई० में पहला इंजन निर्माण करने में सफलता प्राप्त हुई। इसके पश्चात् जब उसे धन की आवश्यकता प्रतीत हुई तो बरमिंघम के एक धनी शिल्पकार ने जिसका नाम मेथ्यू बोल्टन (Mathew Boulton) था उसके काम में साझा करके उसकी सारी कठिनाइयों का निवारण कर दिया। जेम्स वाट के इंजन को लोगों ने 'बीयेलज़ीबब' (Beelzebub) का नाम प्रदान किया। इस शब्द का अर्थ है 'जिनों का राजा'। एक प्रकार से यह नामकरण उचित भी था, क्योंकि जिनों के राजा की भांति वाट का इंजन भी अग्नि तथा धुआं उगलता था और अन्य आश्चर्यजनक कार्य भी करता था।

प्रारम्भ में मनुष्यों ने वाट के इंजन को खानों से पानी निकालने तथा लोहे की भट्टियों से वायु बाहर करने के कार्य में प्रयोग किया। कुछ समय के उपरान्त

जब उसने उसमें अधिक सुधार कर लिया तो वह आटे की चक्की तथा सूती कारखानों की मशीनों को चलाने में प्रयोग होने लगा। सन् १७८२ ई० में उसने अपने इंजन में एक प्रशंसनीय सुधार यह किया कि सिलेन्डर की भाप पिस्टन को आगे तथा पीछे दोनों ओर ढकेलने लगी। इसलिये वाट का इंजन अन्य कार्यों में भी प्रयोग किया जाने लगा। सन् १८१४ ई० से वह मुद्रालयों की मशीनों को चलाने के लिये प्रयोग होने लगा। फलत: समाचारपत्रों तथा पुस्तकों का मूल्य गिर गया तथा प्रत्येक मनुष्य उन्हें सरलता से खरीदने लगा। इससे भी पूर्व यह इंजन रेलगाड़ियों तथा समुद्री नौकाओं के चलाने के कार्य में प्रयोगित हो चुका था।

नवीन इंजन का प्रयोग

कोयला तथा लोहा

जैसा कि हमने पहले वर्णन किया था, अच्छे प्रकार की मशीनों के निर्माण के लिये कोयले तथा लोहे का समुचित प्रयोग किया जाना परम आवश्यक था। औद्योगिक क्रांति से पहले का समय 'लकड़ी का युग' कहा जा सकता है। कारण कि उस समय मशीनों तथा औज़ारों के बनाने के लिये लकड़ी का प्रयोग बहुत बड़ी मात्रा में किया जाता था। कोयला कानों से बहुत अल्प मात्रा में निकाला जाता था। लोहे को निकालने और साफ़ करने की कोई समुचित रीति भी इस समय तक ज्ञात न हो सकी थी। इसलिये मशीनों और औज़ारों के बनाने में अधिकतर लकड़ी का प्रयोग किया जाता था।

इंग्लैंड में कोयले का अभाव न था। इसके विपरीत वहां लकड़ी की कमी प्रतीत हो रही थी। अत: सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भ में एक अंगरेज़ ने लोहे की भट्टियों में लकड़ी के स्थान में कोयला प्रयोग करने का प्रयत्न किया, परन्तु वह सफल नहीं हुआ। इसके लगभग १०० वर्ष पश्चात् एक अन्य अंगरेज़ ने जिसका नाम डार्बि (Darby) था इस कार्य में अधिक सफलता प्राप्त की। किन्तु उसने कोयले को कोक के रूप में जलाया था। कोक उस हल्के कोयले को कहते हैं जिससे तारकोल आदि पृथक कर लिये जाते हैं। कोक की अग्नि को प्रचंड करने और प्रचंड रखने के निमित्त इस बात की आवश्यकता थी कि उस पर निरंतर तीव्र वायु के झोंके पहुंचाये जायें। डार्बि ने यह कार्य चमड़े की धौंकनियों से लिया। ये धौंकनियाँ जल से घूमने वाले पहिये के द्वारा कार्य करती थीं। इस कार्य के लिये सन्

कोयले का प्रयोग

१७६० ई० में स्काटलैंड के एक इंजीनियर ने जिसका नाम जॉन स्मीटन (John Smeaton) था एक हवा फेंकने वाला पम्प प्रयोग किया, जिसमें चार सिलेन्डर और पिस्टन आदि बने हुये थे। यह पम्प भी जल की शक्ति से संचालित किया गया। इसके आविष्कार से लोहा गरम करने के लिये कोक का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जाने लगा।

जब लोहा गरम करने की प्रणाली में सुविधा हो गई तो यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि उसे किस प्रकार साफ़ करके शक्तिशाली लोहे या फ़ौलाद के रूप में लाया जाय। इस प्रश्न को हल करने का श्रेय हेनरी कोर्ट (Henry Cort नामक अँगरेज़ को प्राप्त है। उसने

लोहा साफ़ करने की नई रीति

सन् १७८४ ई० में यह मालूम किया कि यदि साधारण लोहे को किसी ख़ास भट्ठी में गरम किया जाय और लाल होने पर शीघ्रता से हिला दिया जाय अथवा किसी दृढ़ वस्तु से रगड़ दिया जाय तो उसका मल दूर हो जायेगा। साफ़ होने की अवस्था में यह गरम लोहा भट्ठी से निकाल लिया जाता था और उसी दशा में रोलरों के बीच से निकाला जाता था। इस भाँति उस से छड़ें या चादरें बना ली जाती थीं।

इन प्रणालियों से जिनका उल्लेख यहां हुआ है अच्छा और सस्ता लोहा मशीनों तथा बोयलरों आदि के निर्माण के लिये अधिक मात्रा में उपलब्ध होने लगा। एक मनुष्य ने तो लोहे की चादरों से एक जहाज़ बनाने में भी सफलता प्राप्त की!

किसी भी स्वयं चलने वाले रेल के इंजन या मोटरकार की सफलता उसके सिलेण्डरों तथा पिस्टनोंपर आश्रित है। यदि ये उपयुक्त नहीं हैं तो शीघ्र ही इस प्रकार के मोटरकार और रेलगाड़ी के इंजन में कोई दोष उत्पन्न हो सकता है। इनके उचित ढंग से बनाये जाने के लिये

उपयोगी खरादों का आविष्कार

मॉडस्ले (Maudaslay) नाम के अँगरेज़ ने बड़ी उपयोगी खरादों का आविष्कार किया। उनके द्वारा किसी भी धातु में बिल्कुल ठीक सूराख़ किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त उनकी सहायता से लोहे के सिलेण्डर भी सरलता से निर्माण किये जा सकते थे। इन खरादों में ऐसी व्यवस्था थी कि किसी भी धातु का टुकड़ा जो काटा जाता था और काटने अथवा छिद्र करने वाला यन्त्र अपने अपने स्थान पर अचल रहते थे। [illegible] कहने को एक साधारण आविष्कार है किन्तु उसके बिना [illegible] ढंग से नहीं बनाई जा सकती।

प्रारम्भ में भाप के इंजनों के सम्बन्ध में एक अड़चन यह भी प्रतीत हुई कि

प्राय: भाप की तेज़ी के कारण उनके बायलर फट जाते थे। परन्तु जब उनके निर्माण में सुदृढ़ चादरों का प्रयोग होने लगा तो यह अड़चन दूर हो गई। अब सिलेन्डर और पिस्टन छोटे बनाये जा सकते थे और पूरे इंजन के आकार में भी कमी की जा सकती थी। उपरोक्त आविष्कार करने का श्रेय एक अँगरेज़ को प्राप्त है जिसने सन् १८०० ई० के लगभग इंजन के विषय में यह नवीन सिद्धान्त ज्ञात किया था।

बायलरों में सुधार

यातायात के साधन तथा समाचार भेजने का नवीन ढंग

कलाकौशल तथा यातायात के साधनों में घनिष्ट सम्बन्ध है। प्राय: देशों में दोनों का विकास एक साथ हुआ था। औद्योगिक क्रान्ति के समय भी इंग्लैंड में यही बात दृष्टिगोचर हुई। कारखानों तक कच्चा माल पहुँचाने तथा निर्मित वस्तुओं को सुदूर देशों के बाज़ारों में भेजने के लिये यातायात के उपयोगी साधन अत्यन्त आवश्यक हैं। किन्तु सत्रहवीं शताब्दी तक सड़कों की दशा बड़ी ही शोचनीय थी तथा उस काल में यातायात का कार्य अधिकतर घोड़ों की सहायता से होता था। अठारहवीं शताब्दी के दूसरे अर्द्धभाग में इंग्लैंड में सुन्दर सड़कें निर्माण की गईं। जोन मेक एडम (John Mc. Adam) ने एक प्रकार की सुदृढ़ सड़क बनाई जो उसी के नाम से प्रसिद्ध है। उसने इस कार्य के लिये मिट्टी के गारे तथा पत्थरों का प्रयोग किया। कालान्तर में पत्थरों को जोड़ने के लिये गारे के स्थान में तारकोल प्रयोग किया जाने लगा। फ्रांस में भी अँगरेज़ी सड़कों का अनुकरण किया गया और वहां शासन के संरक्षण में सुन्दर सड़कें निर्माण की गईं।

पक्की सड़कें

पक्की सड़कों के निर्माण तथा उनकी मरम्मत में बहुत धन व्यय होता था। इस बात को ध्यान में रख कर नहरों तथा नदियों से यातायात का कार्य अधिक मात्रा में लिया जाने लगा। अठारहवीं शताब्दी के दूसरे अर्द्धभाग और उन्नीसवीं शताब्दी के आदिकाल में इंग्लैंड, फ्रांस तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सहस्रों मील लम्बी नहरें खोदी गईं। सन् १७६१ ई० में एक प्रसिद्ध नहर वर्सले से मैनचेस्टर तक निर्माण की गई, जिसके द्वारा कानों से ढलाईघरों तक कोयला पहुंचाने में बड़ी सुविधा हुई। यह नहर ड्यूक ऑव ब्रजवाटर के नाम पर 'ब्रजवाटर केनाल' (Bridgewater Canal) कहलाती है। इसके निर्माण से मैनचेस्टर में कोयले का मूल्य आधा रह गया। इस सफलता को देख कर नहरों के निर्माण का कार्य ऐसी शीघ्रता से किया गया कि सन् १८३० ई० में इंग्लैंड में ४००० मील लंबे तथा सुन्दर प्रकार के नदियों तथा नहरों के जल-मार्ग थे। इसी भांति फ्रांस में

नहरें

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इस प्रकार के ७५०० मील लम्बे मार्ग थे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सबसे प्रसिद्ध नहर जो उक्त काल में निर्माण की गई थी एरी नहर (Erie Canal) थी। इसका निर्माण न्यूयार्क राज्य में किया गया था। सभी देशों में नहरों तथा नदियों के प्रयोग से भारी सामान जैसे लोहा तथा कोयला आदि के एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने में बड़ी सुविधा हो गई। परन्तु शीघ्र ही उनका स्थान रेल की सड़कों ने ले लिया।

रेल की सड़कें

नदियों तथा नहरों से सामान ढोने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। यातायात का गतिवेग बहुत कम था तथा उनको बनाने व ठीक अवस्था में रखने में बहुत धन व्यय होता था। इसके अतिरिक्त एक विशेष कठिनाई यह भी थी कि पहाड़ी भाग में उनका निर्माण करना असम्भव सिद्ध हुआ। ये कठिनाइयां रेल गाड़ियों के निर्माण से बड़ी सीमा तक दूर हो गईं। प्रारम्भ में रेल के मार्ग लकड़ी से बनाये गये तथा रेल के डिब्बों का काम घोड़ा गाड़ियों से लिया गया। तदुपरान्त लोहे की सड़कें बनाई गईं और वाट के इंजन से गाड़ियों के खींचने का कार्य लिया गया। इन सुधारों से रेल की व्यवस्था में क्रांति उत्पन्न हुई। जार्ज स्टीफेन्सन (George Stephenson) ने सन् १८१४ ई० में प्रथम संशोधित इंजन निर्माण किया और सन् १८२५ ई० में इंग्लैंड में स्टाकटन-डारलिंगटन रेलवे का कार्य आरम्भ हुआ। सन् १८३० ई० में समाचारपत्रों के इस शीर्षक ने कि २६ मील प्रति घंटा की तेज़ रफ्तार से चलने वाले दानव का जो रेलवे इंजन कहलाता है जन्म हो गया है, संसार को आश्चर्य चकित कर दिया।

रेल की सड़कों से यातायात का कार्य लेने से जो लाभ होते हैं वे सब पर विदित हैं। इंग्लैंड के पश्चात् दूसरे देशों में भी उनका चलन प्रारम्भ हुआ। यूरोप महाद्वीप में बेल्जियम एवं फ्रांस ने अन्य देशों का पथ-प्रदर्शन किया। फ्रांस तथा जर्मनी में रेल की सड़कें जनता के व्यय से निर्माण की गईं परन्तु प्रथम देश में कुछ समय तक हिस्सेदारों को लाभ नहीं हुआ। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और दूसरे देशों में भी रेल के मार्ग निर्माण किये गये। शनैः शनैः संसार के व्यापार तथा कलाकौशल के क्षेत्र में उन्होंने उच्च कोटि का स्थान प्राप्त कर लिया। सन् १८१२ ई० में उनमें विश्व की सम्पत्ति का दशांश और उद्योग धंधों में लगी हुई पूंजी का लगभग एक चतुर्थ भाग लगा हुआ था।

कुछ मनुष्यों ने वाष्प द्वारा संचालित इंजन से नौका चलाने का प्रयत्न भी किया, किन्तु अधिक मात्रा में सफलता ने सब से पहले राबर्ट फ़ल्टन का साथ

दिया। फुल्टन एक नवयुवक अमरीकी था लेकिन उसके माता पिता आयरलैंड के निवासी थे। वह इंग्लैंड में चित्रकला की शिक्षा ग्रहण करने के लिये आया था। जेम्स वाट तथा अन्य इंजीनियरों से उसकी भेंट हुई। तदुपरान्त जब उसे यह ज्ञात हुआ कि नैपोलियन बोनापार्ट को आविष्कारों में अभिरुचि है तब वह फ्रांस चला गया और वहां सन् १८०३ ई० में पेरिस में सीन नदी में अपनी वाष्पीय नौका की परीक्षा की और एक पनडुब्बी का भी प्रदर्शन किया। परन्तु जब फ्रांस के निवासियों ने उसके आविष्कार में कोई रुचि नहीं दिखाई तो वह अमरीका लौट गया। वहां उसने सन् १८०७ ई० में क्लरमों (Clermont) नामक एक नौका का निर्माण किया और उसे न्यूयार्क तथा एलबेनी नगर के मध्य हडसन नदी में कई बार चला कर ख्याति प्राप्त की।

रावर्ट फुल्टन तथा उसकी वाष्पीय नौका

इसके पश्चात् अमेरिका में सन् १८११ ई० में निकोलस रूज़वेल्ट (Nicholas Roosevelt) ने पिट्सबर्ग (Pittsburg) नाम की एक वाष्पीय नौका निर्माण की और उसे ओहियो तथा मिसिसिपी नदियों से न्यू आर्लियन्ज़ के बन्दरगाह तक खेने में सफलता प्राप्त की। ब्रिटिश द्वीपसमूह में सन् १८१२ ई० में हेन्री बेल (Henry Bell) ने कोमेट (Comet) नामी नौका को क्लाइड नदी पर चलाने में सफलता प्राप्त की। वाष्पीय नौकाओं के पश्चात् वाष्पीय जहाज़ों का आविष्कार हुआ। सन् १८१६ ई० में सवाना (Savannah) नामक वाष्पीय जहाज़ ने इसी नाम के नगर से जो जार्जिया के प्रान्त में स्थित है लिवरपूल तक की लम्बी यात्रा की। यह एक बड़ा ही आश्चर्य-जनक आविष्कार था जिसने समुद्री यात्रा एवं व्यापार में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। तदुपरांत अन्य वाष्पीय नौकाओं तथा जहाज़ों का निर्माण किया गया। सन् १८५० ई० तक प्रथम की संख्या में अपरिमित वृद्धि हुई।

अन्य वाष्पीय नौकायें तथा जहाज़

वर्तमान युग में यातायात के साधनों तथा व्यापार एवं कलाकौशल की सफलता बड़ी सीमा तक समाचार भेजने के साधनों पर अवलम्बित है। दूरलिख (Telegraph) के आविष्कार से पूर्व समाचार भेजने का कार्य प्रायः कबूतरों तथा विशेष संकेतों द्वारा किया जाता था। दूरलिख का आविष्कार जर्मनी, इंग्लैंड तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में बिना एक दूसरे की सहायता के हुआ था। इंग्लैंड में इसके आविष्कार का श्रेय मोर्स (Morse) नाम के एक व्यक्ति को

समाचार भेजने के साधन

प्राप्त हुआ था। सन् १८४५ ई० के पश्चात् इसका प्रचलन सब देशों में हो गया। सन् १८६६ ई० में अमेरिका से यूरोप को तार भेजने के लिए अटलांटिक महासागर में तार बिछाये गये। उन्नीसवीं शताब्दी ई० के अन्त तक संसार के प्रत्येक व्यापारिक केन्द्र में तार द्वारा सम्वाद भेजने की व्यवस्था हो गई। सन् १८४० ई० में पेनी पोस्टेज का प्रचलन आरम्भ हुआ तथा सन् १८७५ ई० में अन्तर्राष्ट्रीय डाक संघ (Universal Postal Union) स्थापित किया गया। इसका कार्य अन्तर्राष्ट्रीय डाक की व्यवस्था करना था। सन् १८७६ ई० में बेल (Bell) ने टेलीफोन की मशीन निर्माण की। सम्वाद भेजने के ये सब साधन जिनका उल्लेख यहां हुआ है उन्नीसवीं शताब्दी के समाप्त होने तक कम अथवा अधिक मात्रा में प्रयोग में आ चुके थे। बे-तार के तार तथा रेडियो के आविष्कार बीसवीं शताब्दी में हुये थे।

हम लोग प्राय: इस बात पर ध्यान नहीं देते कि वर्तमान सभ्यता तथा संस्कृति की सफलता अधिकांश में कृत्रिम प्रकाश पर निर्भर है। कलाकौशल, यातायात, सामाजिक प्रथाओं की पूर्ति तथा बौद्धिक एवं *प्रकाश की व्यवस्था* शारीरिक विकास से सम्बन्ध रखने वाले कार्यों आदि में इसकी विशेष आवश्यकता होती है। अठारहवीं शताब्दी के पूर्व कृत्रिम प्रकाश का कार्य मोमबत्तियों, तेल के दीपकों तथा मशालों से लिया जाता था। सन् १७८४ ई० में तेल के दीपकों के लिये एक बल्ले का आविष्कार किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक गैस के लैम्पों का भी प्रचलन हो गया। सन् १८२१ ई० में डेवी (Davy) नाम के एक अंगरेज़ वैज्ञानिक ने यह ज्ञात किया कि यदि बिजली की बेट्री के दोनों तार नितान्त समीप लाये जायें तो उनके द्वारा चिनगारियां उत्पन्न हो सकती है। सन् १८७६ ई० में एडिसन (Edison) ने जो एक प्रसिद्ध अमरीकी वैज्ञानिक था सर्वप्रथम बिजली के बल्बों के बनाने में सफलता प्राप्त की।

नये कारखाने और उनकी व्यवस्था

(Factory System)

जटिल मशीनों के प्रयोगों से कारखानों में एक प्रकार का नया जीवन प्रारम्भ हुआ। कारखानों की स्थिति औद्योगिक क्रांति से भी प्राचीन है। इनकी चर्चा बहुत प्राचीन काल के यूनानियों तथा रोमवासियों के सम्बन्ध में भी हुई है। अन्तर केवल इतना था कि अठारहवीं शताब्दी ईस्वी में कारखानों के मजदूर

मशीनों को हाथ से चलाने के स्थान पर केवल उन्हें सहयोग प्रदान करते थे। इसलिए उनके कार्य का महत्व कम हो गया था। कारखाने के नये जीवन की कई विशेषतायें थीं, जैसे एक ही कारखाने में अगणित श्रमिकों का एकत्रित रहना, उनके कार्य का उपयुक्त विभाजन तथा उन पर निरीक्षकों की वक्र दृष्टि, मशीनों का हाथ की अपेक्षा किसी विशेष शक्ति द्वारा चलाया जाना, पूंजी का विशेष उद्योगों में फंसा रहना तथा श्रमिकों व मिल मालिकों के बीच मज़दूरी के विषय में द्वन्द इत्यादि। यहां हम इन विशेषताओं पर संक्षिप्त रीति से प्रकाश डालेंगे।

विशेषतायें

कारखानों के स्थापित होने से ग्राम जीवन नीरस हो गया और नगरों की अत्यधिक उन्नति हुई। इससे पूर्व अधिकांश में मनुष्य ग्रामों में निवास करते थे और ग्रामों के निकट ही कतिपय सुन्दर नगर बसे हुये थे। जब नवीन प्रकार के कारखानों का निर्माण हुआ तो ग्राम निवासी लाखों की संख्या में नगरों में चले आये और नगरों की संख्या में अत्यन्त वृद्धि हो गई। नगरों के जीवन में भी अन्तर हो गया। प्रत्येक देश में कुछ नये नगर स्थापित हुये। उदाहरणार्थ ब्रिटिश द्वीपसमूह में बरमिंघम, लीड्ज़, शैफील्ड तथा मैनचेस्टर आदि नगरों का अस्तित्व उन स्थानों में हुआ जहां पहले गांव थे।

नगरों का विकास

नगरों के विकास के कारण नवीन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वहां स्वच्छता, स्वास्थ्य तथा शान्ति बनाये रखने का कोई उपयुक्त प्रबन्ध नहीं था। इसके विपरीत वहाँ रोगों तथा अपराधों का सदैव ज़ोर रहता था। श्रमिकों की अधिकता तथा उनकी सरलता से उपलब्धि के कारण मज़दूरी की दर सदैव कम रहती थी। इसके अतिरिक्त मिल मालिक प्रायः पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां और बालकों को नौकर रख लेते थे। अठारहवीं शताब्दी ईस्वी में रुई के कारखानों में कम से कम तीन चौथाई स्त्रियां तथा बालक थे। एक व्यक्ति ने नवयुवक श्रमिकों का उल्लेख करते हुये लिखा था कि "कार्य करते समय बालक एक मशीन का जीवन व्यतीत करते हैं और दूसरे समय पशुओं का।" कारखानों में खतरनाक मशीनों से घायल हो जाने की अवस्था में श्रमिकों की किसी प्रकार की क्षति-पूर्ति नहीं होती थी। खानों में उनकी दशा इससे भी अधिक शोचनीय थी। वहां स्त्रियां तथा बालकों को पृथ्वी के नीचे १२ से १४ घण्टों तक प्रति दिन कार्य करना पड़ता था।

नवीन कठिनाइयों का सामना

कार्य का विभाजन तथा उसका निरीक्षण

नवीन कारखानों के प्रबन्ध के दो प्रमुख सिद्धान्त थे,—कार्य का विभाजन तथा उसका समुचित निरीक्षण। उनके स्थापित होने के पूर्व श्रमिक अपने घर पर स्वाधीनता से कार्य करते थे। अतः वे सब प्रकार के कार्य को शीघ्रता तथा दक्षता सहित सम्पन्न करने की क्षमता रखते थे। कारखानों में उनकी स्वाधीनता का अन्त हो गया और उनका ध्यान केवल अपनी मज़दूरी की ओर रहने लगा। ऐसी अवस्था में काम की ओर से उदासीन रहना उनके लिए स्वाभाविक ही था। ऐसी दशा में मिल मालिकों को उनके निरीक्षण के हेतु पृथक मनुष्य नियत करने पड़े। एक विशेष अन्तर और भी उपस्थित हुआ। किसी विशेष वस्तु के निर्माण करने के सम्बन्ध में सभी प्रकार का काम स्वयं करने के स्थान पर एक मज़दूर को सदैव एक ही प्रकार का काम करना पड़ता था। जब वह मशीन की सहायता से अपना कार्य समाप्त कर लेता था तो दूसरे मज़दूर उससे सम्बन्धित दूसरा कार्य करते थे। इस प्रकार कारखानों में कार्य के समुचित विभाजन की व्यवस्था थी।

पूंजीवाद का विकास

नवीन प्रकार के कारखानों के संस्थापन से पूंजीवाद की अत्यधिक उन्नति हुई। इसके कारण कतिपय मिल मालिकों अथवा अन्य लोगों के पास अधिक पूंजी एकत्रित हो गई तथा वे उसका इच्छानुसार प्रयोग करने लगे। यूरोप के कारखानों में पाश्चात्य प्रदेशों की पूंजी का बहुत बड़ा भाग लग गया था परन्तु उस धन पर केवल कतिपय धनिकों अथवा पूंजीपतियों का अधिकार था। प्रारम्भ में कारखानों के मालिक उनका निरीक्षण करते थे और बने हुये सामान के बिकने का समुचित प्रबन्ध भी करते थे। परन्तु जब उद्योग धंधों की उन्नति बड़ी मात्रा में हुई तो कारखानों से उनका सम्बन्ध केवल एक पूंजीपति की हैसियत से रह गया। कारखाने के बाहर भी उनका प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया और वे व्यापारिक क्षेत्र के अतिरिक्त शासन पर भी प्रभाव डालने का प्रयत्न करने लगे। ऐसी दशा में आवश्यक था कि वे प्राचीन काल के अमीरों तथा प्राचीन काल की व्यवस्था का सामना करें। इस कार्य में उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की।

औद्योगिक क्रान्ति के कारण समाज दो मुख्य श्रेणियों में विभाजित हो गया। प्रथम श्रेणी में मध्यम वर्ग के लोग थे जो धनी थे तथा विलासमय जीवन व्यतीत करना चाहते थे। दूसरी श्रेणी निर्धन मज़दूरों की थी। प्रथम

श्रेणी में कारखानों और खानों के मालिक, व्यापारी, साहूकार तथा इसी प्रकार के उच्च व्यवसायों के मनुष्य सम्मिलित थे। इन श्रेणियों के लोगों के बीच प्रायः मज़दूरी के सम्बन्ध में द्वन्द रहता था। कारण कि कारखाने और खानों के मालिक कम से कम मज़दूरी देकर अधिक से अधिक काम लेना चाहते थे। इस द्वन्द के कारण वर्तमान काल में अन्य कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ रहा है।

मज़दूरी के सम्बन्ध में द्वन्द

कारखानों की नवीन व्यवस्था से कई प्रकार के लाभ तथा हानियां हैं। उसके कारण समाज की दो पृथक श्रेणियां हो गईं जिनका उल्लेख उपरोक्त पंक्तियों में किया गया है। जब इनके बीच मतभेद पर्याप्त मात्रा में बढ़ा तो शासन को हस्तक्षेप करना पड़ा और कारखानों के प्रति क़ानून बनाने पड़े। उनमें काम करने वाले बालकों और स्त्रियों की दशा बड़ी ही शोचनीय थी। उनके कारण कुछ समय के लिये पुरुष बेकार हो गये। इन सब को बहुत ही छोटे और साधनहीन मकानों में रहना पड़ता था जहां स्वास्थ्य तथा सुख की कोई व्यवस्था न थी। उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी में मैनचेस्टर नगर के मज़दूरों का कम से कम दसवां हिस्सा पृथ्वी के नीचे छोटी कोठरियों में रहता था। भोजन की सामग्री इतनी महंगी थी कि निर्धन मनुष्यों को पेट भर अन्न की उपलब्धि नहीं होती थी। श्रमिकों के जीवन में उस समय अन्य चिन्तायें भी थीं जो शनैः शनैः निवारण कर दी गई हैं।

नवीन व्यवस्था से लाभ तथा हानि

इस चित्र का एक दूसरा पक्ष भी है। यदि कारखानों का जीवन मज़दूरों के लिये दोषपूर्ण था तो बहुत से लोग ऐसे भी थे जो उनके कारण सुख तथा विलास का जीवन व्यतीत करते थे। संसार की वर्तमान सभ्यता एवं संस्कृति का विकास अधिकांश में पूंजीवाद के कारण ही सम्भव हो सका है। धन में वृद्धि हो जाने के कारण हमारे जीवन के सुख तथा सुविधा में भी वृद्धि हो गई है। मज़दूरों की संख्या में अधिक वृद्धि होने के कारण धनिकों तथा ज़मींदारों आदि पर दबाव पड़ा। इस प्रकार धीरे धीरे लोकतंत्र का उदय हुआ। पूंजीपतियों के कारण शिक्षा के क्षेत्र में भी समुचित उन्नति हुई है। यह उन्हीं के धन का चमत्कार है कि स्कूल, कालेज, वाचनालय, समाचारपत्र तथा रेडियो आदि की उन्नति तीव्र गति से सम्भव हो सकी है।

कृषि

इस युग में जिसका हाल हम लिख रहे हैं, इंग्लैंड और अन्य देशों में जो कृषि की उन्नति हुई उसे भी हम औद्योगिक क्रान्ति में सम्मिलित कर सकते हैं।

कृषि की शोचनीय दशा

सत्रहवीं शताब्दी तक कृषि मनुष्यों का प्रधान उद्यम था, किन्तु उस समय तक उसकी समुचित उन्नति नहीं हो सकी थी। इसका प्रमुख कारण यह था कि मनुष्य प्राय: अपनी आवश्यकतानुसार स्वयं अन्न उत्पादित कर लेते थे तथा उस से अधिक की आवश्यकता का अनुभव वे कभी नहीं करते थे। परन्तु जब तिजारती शहरों का विकास हुआ तथा उनकी जनसंख्या में अधिक वृद्धि हुई तो कृषि की उपज की मांग भी बढ़ गई।

अठारहवीं शताब्दी में कृषि की इस बुरी दशा में सुधार किया गया। इस विषय में कई महान् परिवर्तन हुये। उदाहरणार्थ मशीनों का प्रयोग, नई फ़सलों का प्रचलन, ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने का प्रयत्न, उत्तम प्रकार की खादों का प्रयोग तथा पशुओं की दशा में सुधार इत्यादि। इसके अतिरिक्त बहुत सी भूमि जो सामान्य जनता के प्रयोग के लिये निश्चित थी कृषि के काम में लाई गई तथा उसके चारों ओर घेरे निर्माण किये गये।

सुधारों का स्वरूप

इन सिद्धान्तों के अनुसार अगणित नवीन प्रयोग किये गये। टल (Tull) नामक अंगरेज ने यह प्रयोग किया कि यदि बीज के पसन्द करने तथा फ़सल पैदा करने में सावधानी से काम लिया जाय तो उपज का औसत बढ़ सकता है। टाउनशेंड (Townshend) ने जो जार्ज प्रथम का मन्त्री था अपनी कृषि पर प्रयोग करके फ़सल को बदलते रहने का रहस्य ज्ञात किया और मनुष्यों को क्रम से गेहूं, चुकन्दर, जौ तथा घास पैदा करने की सम्मति दी। उसने खादों की सहायता से गेहूं की उपज में इतनी अधिक वृद्धि की कि उसका औसत ६ बुशल से २४ बुशल प्रति एकड़ हो गया। एक अन्य अंगरेज़ ने जिसका नाम बेकवेल (Bakewell) था वैज्ञानिक सिद्धान्त पर पशुओं की दशा में सुधार करने का आग्रह किया। उसके पशु ऐसे स्वस्थ तथा सुन्दर थे कि दूर दूर से मनुष्य उनके देखने को आते थे। उसके अधिक परिश्रम के कारण मनुष्य के भोजन के लिये निश्चित पशुओं का वज़न ३७५ पौंड से ८०० पौंड हो गया और भेड़ों का वज़न २८ पौंड से ८० पौंड तक पहुँच गया। सन् १७९३ ई० में इंग्लैंड के शासन ने कृषि

नवीन प्रयोग

में उन्नति करने के विचार से एक कृषि बोर्ड (Board of Agriculture) स्थापित किया। नये प्रयोगों के प्रसार का गौरव आर्थर यंग (१७४१-१८२०) नाम के अंगरेज़ को प्राप्त है। उसका उल्लेख फ्रांस की राज्यक्रांति के सम्बन्ध में भी हो चुका है।

कृषि के यन्त्र

नवीन प्रयोगों के साथ नवीन प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग भी आरम्भ हुआ। इस विषय में भी टल ने सब का पथप्रदर्शन किया। उसने एक छिद्र करने की मशीन तथा एक अन्य मशीन पृथ्वी को गहरा खोदने के लिये आविष्कार की। तदुपरान्त अन्य मशीनों का भी आविष्कार हुआ। सन् १८०० ई० तक सामान्यतः कृषक हल तथा गाड़ियों का प्रयोग करने लगे। अनाज को काटने तथा भूसा पृथक करने के लिये नवीन मशीनें निर्माण की गईं तथा प्राचीन प्रकार की मशीनों में सुधार किया गया। कुछ अन्य मशीनें भी ऐसी हैं जिनके द्वारा कृषि के पुराने ढंग में क्रांति उत्पन्न हुई है। उदाहरणार्थ सूखी घास को एकत्रित करने की मशीन, अनाज पृथक करने की मशीन, खाद वितरण करने की मशीन, कई फलों से सुसज्जित हल तथा दुग्धशाला में प्रयोग किये जाने वाले यंत्र आदि।

घेरों की प्रथा

कृषि सम्बन्धी क्रांति की एक सामान्य विशेषता यह भी है कि छोटे खेतों को सम्मिलित करके उनके चारों ओर घेरे बनाये गये। इंगलैंड में बहुत सी भूमि ऐसी थी जिसके प्रयोग का अधिकार जनता को था और बहुत सी भूमि बंजर पड़ी हुई थी जिस पर किसी प्रकार की कृषि नहीं हो सकती थी। प्रत्येक मैनर में जनता के उपयोग के हेतु पृथक पार्क, पशु-चारण स्थान तथा लकड़ी पैदा करने के लिये भूमि निश्चित थी। कृषि के विकास के लिये यह बात परम आवश्यक थी कि इन सब को सम्मिलित करके बड़े खेत बनाये जायें। अस्तु पार्लमेंट ने कई क़ानून ऐसे बनाये जिनके द्वारा जनता के प्रयोग के हेतु निश्चित भूमि खेतों में मिला ली गई और खेतों के चारों ओर घेरे अथवा बाड़े निर्माण किए गये। यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य होता है कि सन् १७०० ई० और सन् १८२९ ई० के मध्य इस प्रकार के चार हज़ार क़ानून थे। निस्सन्देह घेरों के बन जाने से कृषि में यथेष्ट उन्नति हुई किन्तु उनके कारण जनता को बड़ा कष्ट हुआ। उनको अब पशु पालने तथा लकड़ी प्राप्त करने की कोई सुविधा नहीं रही। इस विषय में एक लेखक ने अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है कि क़ानून के अनुसार उस पुरुष अथवा स्त्री को जो कारावास का दण्ड दिया जाता है जो

जनता की भूमि से हँस चुरा लेता है किन्तु वह बड़ा शैतान स्वतंत्र रह जाता है जो हँस से जनता की भूमि का अपहरण कर लेता है।*

नवीन सामाजिक वर्गों का विकास

कृषि सम्बन्धी क्रान्ति के कारण इंग्लैंड में कतिपय नवीन सामाजिक वर्गों का विकास हुआ। उदाहरणार्थ नवीन प्रकार के जमींदार जिन्होंने व्यवसाय में धन संचित कर के जमींदारियाँ मोल ले ली थीं, खेतों में काम करने वाले वे मजदूर जो घेरों के निर्माण से अपने खेत खो बैठे थे तथा वे अनाश्रित किसान जो धनिकों की भूमि लगान पर लेकर स्वयं जोतने लगे थे। इन परिवर्तनों के कारण स्वाधीन कृषक जो अपनी भूमि स्वयं जोतते थे लोप हो गये और समाज का संगठन कृषि के स्थान पर व्यवसाय के आधार पर किया गया।

औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम

वर्तमान काल की लगभग प्रत्येक वस्तु का आदि स्रोत को फ्रांस की राज्य-क्रान्ति अथवा औद्योगिक क्रान्ति बताया जाता है। प्रथम ने राजनैतिक जगत में सीमित रह कर आश्चर्यजनक परिवर्तन किये थे। द्वितीय ने कृषि तथा कलाकौशल के क्षेत्र में ऐसे आश्चर्यजनक परिवर्तन किये कि बाद में आने वाले मनुष्यों का जीवन किसी न किसी प्रकार उनसे अवश्य ही सम्बन्धित हो गया। कलाकौशल का पुरातन ढंग जिसमें लोग घर में रह कर स्वाधीनता के साथ काम करते थे परिवर्तित हो गया। चारों ओर नवीन प्रकार की मशीनें और कारखानें दृष्टिगोचर होने लगे और आस पास के लोग वहाँ जाकर मजदूरों की भाँति कार्य करने लगे। मशीनों के कारण सब प्रकार की वस्तुयें शीघ्रता से निर्माण होने लगीं तथा उनका भाव भी समुचित रूप से गिर गया। औद्योगिक क्रान्ति के कारण भिन्न प्रकार के आविष्कार हुये तथा बहुमुखी उन्नति के कारण सभ्यता तथा संस्कृति का विकास हुआ। यदि हम यह कहें कि वर्तमान काल की सुख तथा विलास की सभी आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति इसी के कारण हुई तो अनुचित न होगा। घरेलू उद्योग-धंधों का पतन हुआ अथवा वे बिल्कुल नष्ट हो गये तथा समस्त देशों में न्यूनाधिक आकर्षणहीन मशीनों के बने हुये सामान का प्रचार

*"The law locks up the man or woman
Who steals the goose from off the common;
But leaves the greater villain loose
Who steals the common from the goose."

हो गया। हस्त कुशल जुलाहों पर तो विपत्ति का पहाड़ ही टूट पड़ा था। यह औद्योगिक क्रान्ति का अधिक दोषपूर्ण परिणाम था। ग्राम साधारणतया उजड़ गये अथवा आकर्षणहीन हो गये तथा नगरों की जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई। बहुत से नवीन नगर स्थापित किये गये और कुछ ग्राम भी उन्नति करके नगरों के रूप में परिवर्तित हो गये।

ग्रामों को छोड़कर नगरों में बसने से मनुष्यों का लाभ तो अवश्य हुआ परन्तु उनके जीवन में दोष कुछ ऐसे उत्पन्न होगये जिनका निवारण बहुत समय तक सम्भव न हो सका। नगरों में कार्य करने वाले श्रमिकों को प्राय: छोटी कोठरियों में जीवन व्यतीत करना पड़ता था जहाँ स्वच्छ वायु तथा सुख साधन की कोई व्यवस्था नहीं थी। अत: उनको प्राय: विषम रोगों से ग्रसित होना पड़ता था। ऐसी दशा में पुरुषों, स्त्रियों तथा बालकों के स्वास्थ्य तथा चरित्र का बिगड़ जाना निश्चय था। मद्यपान की कुरीति का जनसाधारण में प्रचार होगया जिसके फल-स्वरूप बहुत समय तक श्रमिकों की आर्थिक दशा में किसी प्रकार का सुधार न हो सका। खानों में कार्य करने वाली स्त्रियों तथा बालकों की दशा अत्यधिक शोचनीय थी। प्राय: ऐसा भी होता कि जब कारखानों में बना हुआ माल नहीं बिक सकता था तो कारखाने बन्द कर दिये जाते थे तथा श्रमिक बेकार हो जाते थे। इसी काल में इंग्लैंड में दूध अधिक मात्रा में प्राप्त न होने के कारण चाय पीने की प्रथा को अधिक प्रोत्साहन मिला।

औद्योगिक क्रांति का एक अवांछनीय पक्ष यह भी था कि उसके कारण श्रमिकों तथा मिल मालिकों के बीच बहुत ही बुरे ढंग का वैमनस्य उत्पन्न हुआ जिसके परिणामस्वरूप अभी तक हड़तालें तथा झगड़े होते रहते हैं। श्रमिकों ने अपनी रक्षार्थ संघ बनाये तथा मिल मालिकों ने भी अपने अधिकारों की सुरक्षा के हेतु पूर्ण प्रयत्न किया। उन्नीसवीं शताब्दी में व्यापार तथा कलाकौशल के क्षेत्र से शासन का हस्तक्षेप हट गया तथा समस्त स्थानों में व्यापारिक स्वतन्त्रता के एक नये सिद्धान्त (Laissez faire) का प्रयोग किया गया। यह दो शब्द फ्रांसीसी भाषा के हैं। इनका अर्थ है "सब चीजों को अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करने दो"। यह सिद्धान्त वाणिज्यवाद (Mercantilism) के सिद्धान्त के पूर्णतया विरुद्ध था। इस नवीन सिद्धान्त से लाभ उठा कर कारखानों के मालिकों ने मजदूरों से इच्छानुसार कार्य लिया और उनको अपनी इच्छानुसार मज़दूरी दी। जब उनका अत्याचार और अधिक बढ़ा तो सरकार को श्रमिकों के पक्ष में अगणित क़ानून निर्मित करने पड़े। तथापि

श्रमिकों की कठिनाइयाँ अभी तक समाप्त नहीं हो सकी हैं। इसके विपरीत जैसे जैसे समय व्यतीत होता जाता है वैसे वैसे शासन तथा समाज दोनों के लिये यह समस्या नित्य प्रति जटिल होती जारही है। उसके निवारणार्थ अर्थशास्त्र के विशेषज्ञों ने मजदूरों की ओर से बहुत से समाधान रक्खे। उनका अन्तिम समाधान बालशेविक वर्ग का सिद्धान्त (Bolshevism) है जो एक महान् दानव की भांति अपने पैर संसार के भिन्न देशों में फैलाये हुये है परन्तु पूर्ण प्रयत्न के बाद भी अभी तक पाश्चात्य राष्ट्रों में उसका समूलोच्छेदन नहीं हो सका है।

चौथा अध्याय

सन् १८४८ ई० की फ्रांसीसी क्रांति

दूसरे अध्याय में हमने कुछ आन्दोलनों का वर्णन किया था जो लोकतन्त्र और राष्ट्रीयता के आधार पर यूरोप के विभिन्न देशों में किये गये थे। इनका आदि स्रोत फ्रांस था। इसके पश्चात् भी इन सिद्धान्तों का ज़ोर बढ़ता रहा यहां तक कि दो धाराओं से अगणित धाराओं ने जन्म लिया और न केवल यूरोप वरन् संसार के अन्य देशों में भी उनके द्वारा अत्यन्त उत्तम फ़सल तैयार की गई। यूरोप के इतिहास में सन् १८३० ई० की भांति सन् १८४८ ई० भी क्रांतियों का वर्ष है। पहले की भांति अबकी बार भी उनका प्रारम्भ फ्रांस में हुआ। इसके पश्चात् आस्ट्रिया, जर्मनी और इटैली आदि में क्रान्तिकारी आन्दोलन हुये। यदि सच पूछिये तो केवल पेरिस नगर में क्रान्तिकारी अग्नि प्रज्वलित करने के लिये इतनी अधिक सामग्री तैयार रहती थी कि किसी क्षण भी वहां एक महान् आन्दोलन प्रारम्भ हो सकता था। सन् १८४८ ई० में ऐसा ही हुआ।

जैसा कि हम बतला चुके हैं, फ्रांस में सन् १८३० ई० की क्रांति से बादशाह के दैवी अधिकारों का सदा के लिये उन्मूलन कर दिया गया था। उनका स्थान जनता के जन्मसिद्ध अधिकारों ने ले लिया था। अभी तक फ्रांस के बादशाह के नाम के आगे 'ईश्वर की कृपा से फ्रांसीसियों का बादशाह' लिखा जाता था। लुई फ़िलिप ने इसको बदल कर इसका रूप 'ईश्वर की कृपा तथा राष्ट्र की इच्छा से फ्रांसीसियों का बादशाह' कर दिया।

'मध्यवर्ग का बादशाह' लुई फ़िलिप (१८३०–१८४८)

इसका क्या महत्व है, यह प्रकट ही है। फ्रांसीसी क्रान्ति के तिरंगे झण्डे ने बूरबन वंश के श्वेत झण्डे का स्थान ले लिया। ये सब प्रदर्शन की बातें थी। इनका कुछ न कुछ महत्व अवश्य है, परन्तु उसका रूप सर्वदा सीमित माना गया है। सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि सन् १८३० ई० की क्रांति से भी सर्वसाधारण को मतदान का अधिकार प्राप्त न हो सका था। यह अधिकार मध्यवर्ग के मनुष्यों को

सबसे बड़ी संख्या में प्राप्त हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि संशोधित अधिकारपत्र से, जिसे लूई फ़िलिप के विधान-मण्डल की अनुमति प्राप्त थी, मतदान की शर्तें कुछ ढीली कर दी गई थीं। इसके अतिरिक्त भी तीन करोड़ की जनसंख्या में से केवल ८० सहस्र फ्रांसीसी इससे लाभ उठा सके थे। मतदान के लिये आयु का प्रतिबन्ध ४० से घटा कर ३० कर दिया गया था, और सम्पत्ति रखने का प्रतिबन्ध केवल दो तिहाई रक्खा गया था। इस से कृषकों को तो बहुत ही न्यून संख्या में लाभ हुआ था परन्तु श्रमजीवी उस से पूर्ववत् वंचित रहे थे। इस से गणतन्त्रवादियों (Republicans) तथा प्राचीन बूरबन वंश के समर्थकों (Legitimists) को भी कोई लाभ न हुआ। उन्हें विवश होकर मध्यम वर्ग का प्रभुत्व स्वीकार करना पड़ा। इसी वर्ग के हाथ में शासन सूत्र था और लूई फ़िलिप भी स्वयं को 'मध्यवर्ग का बादशाह' (Bourgeois King) समझता था। वह बादशाहों की प्रतिष्ठा और सम्मान का इच्छुक न था। बहुधा वह एक या दो व्यक्तियों के साथ अपने हरे रंग के छाते को बगल में दाब कर खरीदारी के लिये बाज़ार जाता था। वह फूंक फूंक कर क़दम रखता था और किसी प्रकार की नई बात के करने से दूर भागता था। वह लोभी था। उसका विचार था कि साम्राज्य एक प्रकार का व्यापारिक साधन है, जिससे अधिक से अधिक लाभ उठाना उसका कर्तव्य था। 'मध्यवर्ग के बादशाह' को मध्यवर्ती मार्ग पर चलना रुचिकर था। वह रूढ़िवाद तथा उदारवाद के बीच में अपना मार्ग निश्चित करना चाहता था। परन्तु जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया वह रूढ़िवाद की ओर झुकता गया। अतएव १८ वर्ष के शासन की लम्बी अवधि में भी वह प्रजा के लाभ के लिये बहुत कम काम कर सका।

'जौलाई में स्थापित शासन' ने एक ऐसी शासन पद्धति का अनुकरण किया जिससे उपरोक्त दोनों दल उस से अप्रसन्न हो गये। ये दोनों उग्रवादियों के दल थे और वे दोनों शासन के विरुद्ध थे। द्वितीय दल के लोग गणना में बहुत कम थे। उनमें अधिकतर अभिजातवर्ग तथा पादरी सम्मिलित थे। वौंदे के प्रान्त में उनके सबसे बलशाली सहायक तथा समर्थक थे। वे दसवें चार्ल्स के पोते हेनरी पंचम को, जो फ्रांस में रह गया था, सिंहासनारूढ़ करना चाहते थे। वे लोग अपना काम शान्ति-पूर्वक सम्पन्न करना चाहते थे। अतएव लूई फ़िलिप को उनकी ओर से भय न था। इसके विरुद्ध गणतन्त्रवाद के समर्थक हिंसक उपायों से अपने उद्देश्य की पूर्ति करना चाहते थे। उनके मस्तिष्क में अभी तक सन् १७९३ ई० की स्मृति थी। अतएव वे शासन को यह धमकी दिया करते थे कि जब तक हम रक्तपूर्ण उपायों से क्रान्ति उत्पन्न न कर देंगे तब तक हमें किसी प्रकार भी शान्ति प्राप्त न हो सकेगी। वे लोग अपना काम अधिकतर गुप्त समितियों तथा सभाओं द्वारा निकालना चाहते

थे। इस प्रकार की गुप्त समितियां तथा सभायें इटैली में भी बड़ी संख्या में उपस्थित थीं। उनका सबसे ज्वलन्त उदाहरण 'कार्बोनारि' का था, जिसका उल्लेख हम दूसरे अध्याय में कर चुके हैं। फ्रांस में गणतन्त्रवादियों की सबसे शक्तिशाली समिति 'मानवी अधिकारों की सभा' (Society of the Rights of Man) थी। सन् १८३० ई० की क्रान्ति में वे विशेष भाग ले चुके थे। अतएव उन्हें पूरी आशा थी कि वे लूई फ़िलिप के विरुद्ध भी सफल होंगे। परन्तु ऐसा न हुआ। कई बार उन्होंने विद्रोह करने का प्रयत्न किया, परन्तु बादशाह ने उनकी एक न चलने दी। इस समय तीसरा राजनैतिक दल जो उल्लेखनीय है समाजवादियों (Socialists) का था। उसकी शक्ति धीरे धीरे बढ़ रही थी। उसका कहना था कि फ्रांस में गण-राज्य, नैपोलियन बोनापार्ट का साम्राज्यवादी शासन तथा बूरबन वंश का शासन, सभी कुछ आये और चले गये, परन्तु श्रमजीवियों की दशा ज्यों की त्यों असुविधाजनक रही। उनका लाभ तभी हो सकता है जब मध्यवर्ग के लोग, जो मजदूरों के कारण व्यापार तथा कलाकौशल के द्वारा अत्यधिक धन राशि पैदा कर रहे हैं, अपने धन व अधिकारों में से एक भाग मजदूरों के लिये छोड़ दें।

इस समय फ्रांस के राजनीतिक व्योम में दो दल विशेष रूप से प्रकाशमान थे। एक का पथ-प्रदर्शक तेयर (Thiers) और द्वितीय का पथ-प्रदर्शक गीज़ो (Guizot) था। प्रथम उदारवादियों का और द्वितीय रूढ़ि-वादियों का नेता था। तेयर बारस्टर रह चुका था। सन् १८२१ ई० में वह मार्सेल्ज़ से पेरिस आया और शीघ्र ही

तेयर और गीज़ो

उदार विचार रखने के कारण उसने ख्याति प्राप्त की। उसने फ्रांस की राज्यक्रान्ति का इतिहास भी लिखा और सन् १८३० ई० में एक लोकप्रिय समाचारपत्र की नींव डालने में सहायता दी, जिसने उस वर्ष की क्रांति के लिये पृष्ठ भूमि तैयार करने में अधिक सहायता दी। तेयर लूई फ़िलिप का शक्तिशाली सहायक था। सन् १८३२ ई० और सन् १८३६ ई० के बीच वह मन्त्रिमंडल के विभिन्न पदों पर सुशोभित हुआ। इस बीच में वह सन् १८३६ ई० में फ़र्वरी से अगस्त तक प्रधान मन्त्री भी रहा। इसके पश्चात् सन् १८४० ई० में वह कुछ महीनों के लिये इस उच्च पद पर पुनः सुशोभित हुआ। सन् १८४८ ई० से सन् १८५२ ई० तक वह संविधान-सभा तथा विधान-मण्डल का सदस्य रहा। परन्तु जब लूई नैपोलियन सम्राट हुआ तो उसने तेयर को देश से निर्वासित कर दिया। सन् १८६३ ई० से वह फ्रांस के राजनैतिक मामलों में फिर दिलचस्पी लेने लगा। दूसरे साम्राज्य के पतन पर वह सन् १८७१ ई० से सन् १८७३ ई० तक तीसरे गण-राज्य का अध्यक्ष रहा। सन् १८७७ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

दलबन्दी के सम्बन्ध में तेयर और गीज़ो के कोई विशेष सिद्धान्त न थे। वे आवश्यकतानुसार राजनैतिक दलों से मेल करने को तैयार रहते थे। तेयर की हार्दिक इच्छा थी कि फ्रांस में भी अँगरेज़ी ढंग पर सीमित राजतन्त्र स्थापित हो जाय। इसके विरुद्ध गीज़ो का मत था कि फ्रांस के शासकों को वास्तविक अर्थ में बादशाह बन कर रहना चाहिये। यहाँ हमें इंग्लैंड के बादशाह जार्ज तृतीय (१७६०–१८२०) के पथप्रदर्शक बूट का स्मरण हो आता है जो बाल्यकाल में उसको सदैव यही उपदेश देता था कि "ऐ जार्ज, बादशाह बन कर दिखला देना।" उसकी भाँति गीज़ो भी राजसिंहासन को "एक खाली आराम कुर्सी" के रूप में न देखता था वरन् वह बादशाह को विशेष अधिकारों से सम्पन्न देखना चाहता था। वह फ्रांस के संविधान में अधिक परिवर्तन किये जाने के भी विरुद्ध था। वह किसी शर्त पर भी फ्रांस के उग्रवादी दलों से समझौता न करना चाहता था। उसकी नीति के दो मुख्य सिद्धान्त थे (१) बादशाह की शक्ति में वृद्धि करना। (२) यूरोप की शक्तियों से, जो क्रान्तिकारी फ्रांस की ओर आश्चर्य और चिन्ता की दृष्टि से देख रही थीं, मित्रता रखना। वह इंग्लैंड से किसी दशा में भी बिगाड़ न करना चाहता था। वरन् वह पूर्व की प्रतिक्रियावादी शक्तियों के मुकाबले में पश्चिम के दोनों लोकतन्त्रीय देशों के बीच प्रगाढ़ मित्रता स्थापित रखना चाहता था। तेयर इस नीति से सन्तुष्ट न था। उसका सिद्धान्त था कि फ्रांस को विदेशों से व्यवहार करते समय प्रगतिशील वाह्य-नीति से काम लेना चाहिये जिससे वह ख्याति तथा प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके। सन् १८४० ई० में गीज़ो प्रधान मन्त्री बना और सन् १८४८ ई० तक लुई फ़िलिप के अधीन काम करता रहा। तेयर की भाँति गीज़ो भी विद्या का प्रेमी था और लेखक भी रह चुका था। जेनेवा में शिक्षा ग्रहण करके उसने पेरिस में क़ानून का अध्ययन किया था। सन् १८१२ ई० में वह पेरिस के विश्वविद्यालय में इतिहास का शिक्षक नियुक्त हुआ। सन् १८१४ ई० में वह गृह-सचिव और सन् १८३० ई० में मन्त्री नियुक्त हुआ। इस स्थिति में उसने शिक्षा के विकास के लिये बहुत प्रयत्न किया तथा समस्त देश में विद्यालय स्थापित किये। सन् १८४० ई० में गीज़ो राजदूत की स्थिति में इंग्लैंड भेजा गया किन्तु वह शीघ्र ही वहाँ से लौट आया। इसके बाद वह वाह्य मन्त्री और तत्पश्चात् पुनः प्रधानमन्त्री के पद पर सुशोभित हुआ। सन् १८४८ ई० में लुई फ़िलिप के साथ उसे भी इंग्लैंड में शरण लेना पड़ा। वहाँ से लौट कर उसने अपना शेष जीवन लेखक की स्थिति में व्यतीत किया। सन् १८७४ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

तेयर और गीज़ो के जीवन के सम्बन्ध में जो संक्षिप्त घटनायें यहाँ दी गई हैं वे रोचक अवश्य प्रतीत होंगी, परन्तु उनका महत्त्व कम नहीं है। उनसे इस बात का

पता चलता है कि इन महान् व्यक्तियों ने किस प्रकार उत्तरोत्तर उन्नति की थी तथा किस प्रकार उस समय के इतिहास पर उनका गहरा प्रभाव था। इस सबके होते हुये भी हमें यह विस्मृत न करना चाहिये कि लूई फ़िलिप गृहनीति तथा विदेशी नीति की कुंजी अपने हाथ में रखना चाहता था। फ्रांसीसी राष्ट्र को संतुष्ट रखने की चिंता न करके वह अपने ही मार्ग पर अग्रसर होना चाहता था। फ्रांसीसी राष्ट्र नेपोलियन बोनापार्ट के समय की उस ख्याति तथा प्रतिष्ठा को न भूला था जो उसने विदेशों में प्राप्त की थी। वह चाहता कि फ्रांस का शासन उन दबे हुये राष्ट्रों की सहायता करके, जो अपने शासकों के विरुद्ध विद्रोह के लिये तत्पर थे, उन्हें पुनः प्राप्त करे। प्रसभा (कन्वेन्शन) के समय की भांति सन् १८३० ई० में भी फ्रांस के निवासी यूरोप के बादशाहों को ललकारना चाहते थे तथा उनकी प्रजा को उनके विरुद्ध सहायता पहुँचाना चाहते थे। इसमें सन्देह नहीं कि यदि उनको इसकी अनुमति दे दी जाती तो आवश्यक था कि यूरोप की शक्तियां पुनः फ्रांस के विरुद्ध संगठन करके उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का प्रयत्न करतीं। लूई फ़िलिप इस नीति का पूर्णतया विरोधी था। वह प्रत्येक दशा में युद्ध से दूर रहना चाहता था। जैसा कि वह स्वयं कहता था, वह इस बात के लिये तैयार न था कि "शेर के मुंह से फन्दा हटा लिया जाय।" अतएव उसने बेल्जियम और पोलैंड के स्वाधीनता युद्धों के समय वहां के देशभक्तों की सहायता न की। उसने इटैली और जर्मनी के आन्तरिक झगड़ों में पड़ना भी उचित न समझा। जब स्वाधीन बेल्जियम का राज-सिंहासन उसके पुत्र को दिये जाने का प्रयत्न किया गया तब भी उसने स्पष्ट रूप से अपनी अस्वीकृति प्रकट की। उसकी इस शान्तिप्रिय नीति से विशेष लाभ यह हुआ कि महाद्वीप के शासकों ने उसके शासन को स्वीकार कर लिया और यूरोप में युद्ध का तूफ़ान भी न उठा। परन्तु फ्रांस के निवासी इस नीति की श्रेष्ठता को न समझ सके।

फ्रांस की विदेशी नीति

सन् १८४० ई० में आर्लिन्ज़ वंश के शासन को विदेशों में प्रतिष्ठा तथा कीर्ति उपलब्ध करने का पुनः अनुपम सुयोग मिला, किन्तु लूई फ़िलिप ने इससे भी लाभ न उठाया। मिस्र के पाशा मुहम्मद अली ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी। उसकी सफलताओं को देख कर फ्रांस के निवासियों का जोश अति अधिक हो गया था। उनका विचार था कि मुहम्मदअली पर नेपोलियन की छाया पड़ गई है। वे चाहते थे कि फ्रांस तुर्की के विरुद्ध उसकी सहायता करे परन्तु लूई फ़िलिप ने ऐसा न किया। जनता को प्रसन्न करने के लिये उसने केवल इतना किया कि तेयर को शासन सूत्र दे दिया क्योंकि तेयर मुहम्मदअली की सहायता करने का वचन दे

चुका था। वह इस बात से भली भांति परिचित था कि यूरोप की शक्तियां इसी नीति के विरुद्ध हैं कि मिस्र का पाशा अपने स्वामी के विरुद्ध अन्यायपूर्ण रीति से अपनी शक्ति में वृद्धि करे। अतएव जैसे ही जनता का जोश ठण्डा हुआ उसने कुछ महीनों के पश्चात् तेयर को पदच्युत करके, उसके प्रतिद्वन्दी गीज़ो को प्रधान मन्त्री बना दिया। गीज़ो एक साधारण अवकाश को छोड़ कर सन् १८४८ ई० तक इस पद पर सुशोभित रहा। बादशाह तेयर की युद्ध सम्बन्धी तैयारियों को देख कर भयभीत हो गया था और एक क्षण की प्रतिष्ठा और गौरव के हित में यूरोप की शक्तियों को अप्रसन्न न करना चाहता था। फ्रांसीसी राष्ट्र इस अस्पष्ट राजनीति से प्रसन्न न हुआ। शासन के हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहने से उसकी प्रतिष्ठा व गौरव प्राप्त करने की अभिलाषा पूर्ण न हुई। यह आने वाली क्रान्ति का एक बहुत बड़ा कारण प्रमाणित हुआ।

लूई फ़िलिप की गृहनीति भी सर्वसाधारण को सन्तुष्ट न कर सकी। फ्रांस का विख्यात लेखक तथा राजनीतिज्ञ शातोब्रीओं (Chateaubriand) और तेयर दोनों इस सिद्धान्त के समर्थक थे कि यदि शासन को अपनी दमन चक्र-कारी गृहनीति को सफल बनाना था तो उसे इसके लिये युद्ध सम्बन्धी कीर्ति को प्राप्त करना आवश्यक था। परन्तु लूई फ़िलिप तथा उसके मंत्री गीज़ो का विचार दूसरा था। उनका कथन था कि राष्ट्र को दूसरी दिशाओं में संतुष्ट किये बिना भी वे अपनी गृहनीति में सफल हो सकते हैं। गीज़ो ने अपनी नीति की व्याख्या इस प्रकार की थी,—"घर पर क्रांतिकारी आन्दोलन का विरोध और बाहर मध्यम नीति का इस ढंग से प्रयोग कि वर्तमान प्रतिज्ञापत्र अक्षुण्ण रह सकें तथा दूसरे देशों के झगड़ों में हस्तक्षेप भी न हो।" यह विचार करना कि दमनचक्र की नीति से क्रांतिकारी आन्दोलन बन्द रहेंगे सर्वथा एक भ्रम था। जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं, शासन की विदेशी नीति प्रजा के लिये असन्तोष का कारण थी। उसकी गृहनीति उसके लिये और भी अधिक अप्रसन्नता का कारण प्रमाणित हुई। जनसाधारण के सन्तुष्ट न होने का एक विशेष कारण यह भी था कि उसे मतदान का अधिकार उपलब्ध न हो सका था। जैसा कि हम उल्लिखित कर चुके हैं, आर्लियंज़ वंश का शासन मध्यवर्ग का शासन था, न कि जनसाधारण का। उसी की इच्छा से विधान-मण्डल का निर्माण होता था और उसी की इच्छा के अनुसार शासन अपनी नीति निर्धारित करता था। सरकारी पदों पर भी उसी का अधिकार था। ऐसी दशा में राष्ट्रीय विधान-मण्डल एक खोखले अंडे के समान था, जो व्यर्थ के साम्प्रदायिक विद्वेष के द्वारा अपनी निर्बलता और असफलता का प्रमाण दे रहा था।

गृहनीति

सबसे प्रथम गणतन्त्रवादी दल के लोग शासन के दमनचक्र का शिकार बने।

जैसा कि हम वर्णन कर चुके हैं, ये लोग लूई फिलिप के विरुद्ध हो गये थे और उसे राजसिंहासन से वंचित करने के प्रयत्नों में व्यस्त थे। उन्होंने अगणित गुप्त समितियां स्थापित कीं और कुछ समाचारपत्र भी प्रकाशित किये, जिनका मुख्य काम शासन के कार्यों में दोष निकालना और बादशाह पर व्यंगभरे बाणों की वर्षा करना था। यह देख कर शासन ने क्रांतिकारी दल का उन्मूलन करने का निर्णय किया। उसने एक कानून निर्मित किया जिसके द्वारा वे समस्त सभायें, जिन्होंने अपने नियमों के लिये सरकारी अफसरों की स्वीकृति न ली थी, अवैधानिक घोषित कर दी गईं तथा अवैधानिक सभाओं के नेताओं और सदस्यों के लिये कठोर दण्ड निश्चित किया गया। प्रेस के विरुद्ध भी दमनचक्र चलाया गया और सब प्रकार के चित्रों के प्रकाशित किये जाने के पूर्व सरकारी स्वीकृति आवश्यक कर दी गई। व्यक्तिगत सम्पत्ति और वैधानिक शासन पर आक्षेप करना तथा लोगों को विद्रोह के लिये तत्पर करना, ये सब अपराध निश्चित किये गये। गणतंत्रवादी दल के सबसे ज़ोरदार समाचारपत्र 'दि ट्रायबून' के विरुद्ध १११ बार अभियोग चलाया गया। उसके सम्पादक को कम से कम २० बार कारावास का दंड दिया गया तथा उस पर कुल मिलाकर १ लाख ५७ हज़ार फ्रैंक जुर्माना किया गया। इस दमनचक्र का परिणाम यह हुआ कि राजनैतिक दल की स्थिति से गणतंत्रवादी दल का महत्व कुछ समय के लिए बिल्कुल कम हो गया।

यह सब उस समय हो रहा था जब सामाजिक और आर्थिक समस्यायें महत्वपूर्ण हो रही थीं। वास्तव में प्रजातंत्र शासन वही है जो राजनैतिक और आर्थिक सुधारों पर समान रूप से ज़ोर दे। यह सिद्धान्त फ्रांस की जनता पर धीरे धीरे प्रकट हो रहा था। जब 'जोलाई की बादशाहत' अपनी सामाजिक और आर्थिक सुधारों के द्वारा भी जन-साधारण को सन्तुष्ट न कर सकी तो उसका पतन आवश्यक हो गया। इस समय मज़दूरों की ओर से संसद और सार्वजनिक सभाओं द्वारा आवाज़ उठाने का श्रेय अन्य लोगों के साथ गणतंत्रवादियों को भी प्राप्त है। जब वे राजनैतिक आन्दोलन की ओर से पूर्णतः निराश हो गये तो उन्होंने इस ओर अपने समय और शक्ति को व्यय करने का निर्णय किया। उन पर यह बात भी प्रकट हो चुकी थी कि हिंसक उपायों को काम में लाने से सर्वसाधारण की सहानुभूति सर्वदा प्राप्त नहीं की जा सकी। अतएव उन्होंने सामाजिक और आर्थिक सुधारों की ओर दत्तचित्त होकर सर्वसाधारण को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। फ्रांस में सन् १७८९ ई० की राज्यक्रांति के समय और सम्भवतः इससे भी पूर्व, व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा धन के अन्यायपूर्ण विभाजन के विरुद्ध स्वर ऊँचा किया गया था। आतंकपूर्ण शासन (Reign of Terror) के समय में एक व्यक्ति ने, जिसका नाम बाबफ़ (Babeuf) था,

इस बात पर विशेष ज़ोर दिया कि राजनैतिक क्रांति द्वारा समाज की पूर्ण उद्देश्य पूर्ति नहीं होती, क्योंकि इस से जनसाधारण की दशा में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। उसमें सुधार करने के लिये व्यक्तिगत सम्पत्ति को समाप्त कर देना आवश्यक है। बावफ़ का शीश उतार लिया गया, परन्तु जो ज्योति उसने प्रज्वलित की थी वह बुझ न सकी। सन् १८३० ई० के जौलाई मास की क्रांति के पश्चात् उसमें फिर प्रकाश हुआ और व्यक्तिगत सम्पत्ति के विरुद्ध आन्दोलन किया गया। बावफ़ के समर्थकों के अतिरिक्त कुछ अन्य सामाजिक दल भी इस प्रकार के विचार प्रकट कर रहे थे। फ्रांस के एक प्रसिद्ध लेखक व राजनीतिज्ञ लुई ब्लॉ (Louis Blanc) ने विभिन्न सामाजिक दलों की मांगों को व्यवस्थित करके एक विशेष कार्यक्रम बनाया और सन् १८३९ ई० में उस पर एक पुस्तक (The Organisation of Labour) प्रकाशित की। इसके पूर्व सन् १८३४ ई० में लीओं (Lyons) के मज़दूर अपनी संस्थाओं की रक्षा के लिये शस्त्र उठा चुके थे। कुछ साल के बाद, सन् १८४२ ई० में, एक व्यक्ति ने यह लिखा, "फ्रांस में केवल राजनैतिक आन्दोलनों का समय व्यतीत हो चुका है। आगामी क्रांति आवश्यक रूप से सामाजिक होगी।"

जब जनता की ओर से इस प्रकार के राजनैतिक और सामाजिक विचारों तथा आन्दोलनों का प्रकाशन किया जा रहा था, उस समय लुई फ़िलिप तथा उसका मन्त्री गीज़ो दृढ़ता से बीच के मार्ग पर डटे हुये थे। वह एक ऐसा मध्य मार्ग था जो प्रतिक्रियावादियों तथा क्रांतिकारियों दोनों से दूर था। सब से बड़ा दोष यह था कि शासन ने अपने लिये कोई विशेष कार्यक्रम निश्चित न किया था। अतएव जो तीर विरोधियों की ओर से चलाये जा रहे थे, वे ठीक निशाने पर बैठ रहे थे। गीज़ो का कथन था कि यदि सनसनी और कुव्यवस्था फैलाने वालों को प्रसन्न करने के लिए कोई कार्य किया जायेगा तो यह शासन की सब से बड़ी निर्बलता होगी। यदि वह अपनी ओर से किसी प्रकार के सुधारों के लिए तत्पर भी हो जाता तो मध्यवर्ग के पूंजीपतियों के कारण उसके हाथ बंधे हुये थे। ऐसी दशा में फ्रांसीसी राष्ट्र ने यह निष्कर्ष निकाला कि जौलाई के राजतंत्र को समाप्त कर देने में ही सब का हित है। विदेशी मामलों में हस्तक्षेप करने से शासन ने बड़ी दृढ़ता के साथ स्वयं को पृथक रक्खा था। गृहनीति में उसने दमनचक्र का उपयोग किया था। श्रमजीवियों की दशा में सुधार करने के लिए भी उसने कोई सुधार नहीं किया था। विधान-मंडल में उसका प्रभाव अवश्य था, परन्तु इससे सर्वसाधारण को कोई विशेष लाभ न हुआ था। ऐसी परिस्थिति में आर्लियेन्स वंश के शासन की नाव डूबने से कैसे बच सकती थी?

लूई फ़िलिप में एक विशेषता यह थी कि वह इंग्लैंड के बादशाह की भाँति केवल नाम के लिये शासक बनकर न रहना चाहता था। वह वास्तविक रूप में शासक बनकर रहना चाहता है। प्रारम्भ ही से उसने इस बात का प्रयत्न किया था कि रूढ़िवादी दल के नेता जो उसका पक्ष करते थे उस पर प्रभाव स्थापित न कर सकें। कई बार बादशाह और उसके मन्त्रियों के बीच विदारण की नौबत आ चुकी थी और सन् १८३७ ई० में उसने गीज़ो को हटाकर विधान-मंडल के विरोध के अतिरिक्त भी मोले (Mole) को, जो अधिक अनुकूल था, दो वर्षों तक प्रधान मन्त्री के पद पर सुशोभित रक्खा था। जनता निरन्तर वैदेशिक नीति के भी पूर्णतया विरुद्ध रही। परन्तु लूई फ़िलिप को इसकी चिन्ता न थी। वह इस बात का संकल्प कर चुका था, कि "युद्ध करने के स्थान में वह बारह सभाओं को भंग कर देगा।" जब तेयर, जो नैपोलियन बोनापार्ट की वैदेशिक नीति को पसन्द करता था, लूई फ़िलिप की ओर से बिल्कुल निराश हो गया तो उसने गणतंत्रवादी दल से मिलकर निर्वाचन प्रणाली में सुधार किये जाने के लिये आन्दोलन प्रारम्भ किया। सर्वसाधारण जनता में जागृति और जोश उत्पन्न करने के उद्देश्य से समस्त देश में अगणित भोज दिये गये तथा एक दिन उसकी अप्रसन्नता तथा अविश्वास प्रकट करने के लिये निश्चित किया गया। प्रधान मन्त्री गीज़ो ने इसके प्रतिकूल विचार प्रकट किये। अन्तिम अवसर पर प्रतिपक्षी नेताओं ने यह सोचकर कि कहीं कोई बड़ा बवंडर न उठ खड़ा हो, उस दिन के कार्यक्रम को स्थगित करने का प्रयत्न किया, परन्तु निश्चित दिन अर्थात् २२ फ़र्वरी सन् १८४८ ई० को पेरिस की निम्न श्रेणी की जनता अपने घरों से निकल पड़ी और दंगे व फ़िसाद करने को तैयार हुई। राष्ट्रीय रक्षा दल ने जो शान्ति स्थापित रखने के लिए भेजा गया था, उसके साथ सहानुभूति प्रकट की। यह देखकर लूई फ़िलिप अवाक् रह गया। राष्ट्रीय रक्षा दल को वह अपनी सुरक्षा का सब से बड़ा साधन समझता था और उसी ने उसे धोखा दिया था! बादशाह की विवशता से गणतंत्रवादी नेताओं ने तुरन्त लाभ उठाया। जो प्रदर्शन एक बदनाम मन्त्री के विरुद्ध किया गया था उसको उन्होंने राजतंत्र के विरुद्ध क्रांति में परिवर्तित कर दिया। मजबूर होकर लूई फ़िलिप ने गीज़ो को पदच्युत करके तेयर को प्रधान मन्त्री नियुक्त करने की घोषणा की, किन्तु अब क्या हो सकता? वह इस समय की बिगड़ी हुई परिस्थिति को सुधारने में असमर्थ था। अतएव वह शासन से पृथक होकर दसवें चार्ल्स की तरह इंग्लैंड चला गया। उसके स्थान में पहले लामार्तीन (Lamartine) की अध्यक्षता में, जो

बादशाह वास्तविक रूप में शासक बनकर रहेगा

सन् १८३२ ई० के बाद कुछ समय तक विदेशी मन्त्री रह चुका था, पेरिस में अस्थायी शासन स्थापित किया गया। इसके बाद फ्रांस में दूसरे गण-राज्य की स्थापना की गई।

फ्रांस के इतिहास में सन् १८४८ ई० की क्रांति का अधिक महत्व है। इस सम्बन्ध में यदि हम उसकी तुलना उन क्रांतियों से करें जो सोलहवें लुई और दसवें चार्ल्स के विरुद्ध की गई थीं तो अधिक उपयुक्त होगा। प्रथम क्रांति निरंकुश प्रणाली के राजतंत्र के विरुद्ध की गई थी। दूसरी क्रांति अभिजातवर्ग के विशेषाधिकारों के विरुद्ध की गई थी तथा तृतीय क्रांति मध्य वर्ग के शासन के विरुद्ध। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सन् १७८९ में कानून की दृष्टि में समता प्राप्त की गई थी, सन् १८३० में सामाजिक समता प्राप्त की गई थी और सन् १८४८ ई० में राजनैतिक समता। अन्तिम क्रांति से फ्रांस में पुरुषों के वयस्क मताधिकार की प्रथा प्रारम्भ हुई। अतएव शासन पर जो मध्यवर्ग का प्रभुत्व था वह समाप्त हो गया। उसके स्थान पर सर्वसाधारण जनता की राजनैतिक शक्ति में वृद्धि हुई। यह लुई फिलिप की भूल थी कि उसने मतदान की प्रणाली में सुधार न किया था। वह सर्वसाधारण के स्थान में मध्यवर्ग के लोगों पर भरोसा करता था, किन्तु इसके प्रतिकूल भी उसका शासन भवन खड़ा न रह सका। निस्सन्देह यदि वह वैदेशिक मामलों में चमत्कारपूर्ण राजनीति से काम लेता तो उसका पतन कुछ समय के लिये रुक जाता, किन्तु यह उसकी विदेशी नीति का सब से महान् सिद्धान्त था कि यूरोप की शान्ति में किसी प्रकार भी हस्तक्षेप न किया जाय। उसको बनाये रखने में उसने सफलता उपलब्ध की और फ्रांस की प्रतिष्ठा और कीर्ति में किसी प्रकार की कमी भी न हुई, परन्तु जनता फिर भी प्रसन्न न हुई। वह उसे इसलिए सहन न कर सकी कि उसने उसकी अभिलाषायें पूर्ण न की थीं। 'सम्मानपूर्वक शान्ति' के मूल्य को जानने के लिए फ्रांस के निवासियों के लिये तीसरी राज्यक्रांति आवश्यक थी।

सन् १८४८ ई० की क्रांति का महत्व

सन् १८४८ ई० की राज्यक्रांति का एक विशेष महत्व यह भी है कि उसके द्वारा यह सिद्धान्त सदा के लिए स्थापित हो गया कि प्रत्येक व्यक्ति को योग्यतानुसार काम देना शासन का मुख्य कर्तव्य है। इस प्रकार फ्रांस के गण-राज्य को समाजवाद के सम्बन्ध में एक ऐसा प्रयोग प्रारम्भ करना पड़ा जो प्राथमिक अवस्था में अवश्य था, परन्तु उसका महत्व कम न था। जैसा कि लुई ब्लॉं ने अपनी पुस्तक में वर्णन किया था, प्रत्येक शासन का कर्तव्य है कि जनता को दो प्रकार

की दासता से मुक्ति दिलाये,—अशिक्षा और निर्धनता। अतएव नवीन गणतंत्र शासन ने लूकसेंबूर (Luxemburg) नगर में लूई ब्लां की अध्यक्षता में एक 'श्रमिक संसद' का अधिवेशन किया, जिसका काम श्रमजीवियों से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों पर विचार करना था। उदाहरणार्थ, आदर्श भवन, राष्ट्रीय बीमा प्रणाली, कृषि पर काम करने वाले मजदूरों के लिये बस्तियां तथा प्रति दिवस दस घंटे काम की योजना इत्यादि। अभी उक्त संसद अपना निर्णय दे भी न पाया था कि शासन ने अपनी ओर से राष्ट्रीय कारखानों के सम्बन्ध में एक नवीन प्रयोग प्रारम्भ करने का निर्णय किया, किन्तु वह सफल न हो सका। यह प्रयोग राष्ट्रीय कारखानों (National Workshops) के विषय में था। इनमें काम करने के लिए फ्रांस के विभिन्न भागों से कम से कम १ लाख मज़दूर आये, परन्तु शासन उन्हें काम न दे सका। काम के स्थान में उसने उन्हें साधारण ढंग से दान के रूप में आर्थिक सहायता देना प्रारम्भ किया। इस विषय में लूई ब्लां ने लिखा है,—"राष्ट्रीय कारखाने इसके अतिरिक्त कुछ भी न थे कि वे ऐसे मंगतों के अव्यवस्थित केन्द्र हों जिन्हें केवल भोजन देना आवश्यक था, क्योंकि किसी को यह ज्ञात न था कि उनको क्या काम करना है।" शीघ्र ही इनके द्वारा शान्ति भंग होने की आशंका प्रतीत होने लगी। अतएव वे बन्द कर दिये गये। निराशा की स्थिति में मजदूरों ने तलवार के बल पर विद्रोह किया (जून सन् १८४८) तथा पेरिस में भी एक भयंकर बवंडर उठा। चार दिन के पश्चात् शासन ने विद्रोहियों पर अधिकार पाया। इस प्रकार सामाजिक लोकतंत्र के स्वप्न ठण्डे हो गये। दिसम्बर सन् १८४८ ई० में नैपोलियन बोनापार्ट का भतीजा लूई नैपोलियन बहुत बड़े बहुमत से नवीन गण-राज्य का अध्यक्ष बनाया गया।

राजकुमार लूई नैपोलियन

उन्नीसवीं शताब्दी के राजनीतिज्ञों में लूई नैपोलियन का व्यक्तित्व सबसे आनन्दमय और विलक्षण था। वह लूई बोनापार्ट का पुत्र था। उसका जन्म सन् १८०८ ई० में पेरिस नगर में हुआ था। यह वह समय था जब कि उसका चाचा अपनी शक्ति के शिरोबिन्दु पर था। सन् १८१५ ई० में जब बूरबन वंश फ्रांस में लौट आया तो बोनापार्ट वंश के लोग फ्रांस से निर्वासित कर दिये गये। उसकी माता, जो सम्राज्ञी जोजेफ़ाइन के प्रथम पति से थी, उसे अपने साथ स्विट्ज़रलैंड ले गई और वहीं बड़े होकर उसने एक स्विज़ सेनाध्यक्ष से युद्ध सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण की। परन्तु उसकी साधारण शिक्षा और पोषण का श्रेय उसकी माता को प्राप्त था। प्रारम्भ ही से उसे यह शिक्षा दी गई थी कि वह न केवल नैपोलियन बोनापार्ट वरन् सन् १७८९ ई० की राज्यक्रांति का

उत्तराधिकारी भी है तथा 'स्वतन्त्रता, समानता और बान्धुत्व' के सिद्धान्तों का प्रकाशन उसका विशेष कर्तव्य है। सन् १८३० ई० में यदि लूई फिलिप का मध्य वर्ग का शासन शीघ्र ही स्थापित न हो जाता तो अवश्य ही लूई नैपोलियन फ्रांस का सिंहासन प्राप्त करने का प्रयत्न करता। इस ओर से निराश होकर वह इटैली में 'कार्बोनारि' संस्था का सदस्य बन गया तथा पोप के राज्य में सन् १८३१ ई० के राष्ट्रीय विद्रोह में भाग लिया। वह बन्दी बना लिया गया, किन्तु उसकी माता के आंसुओं को वह देखकर स्वतंत्र कर दिया गया। इसके पश्चात् उसने फ्रांस और
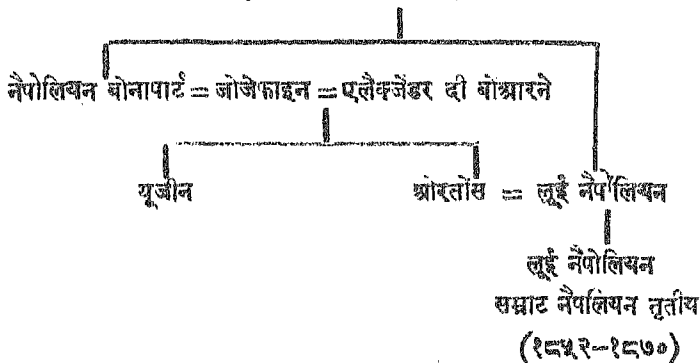
पोलैंड के देशभक्तों से मिलकर षड्यंत्र रचने का प्रयत्न किया, किन्तु दोनों देशों में उसे असफलता प्राप्त हुई। विवश होकर उसे खड्ग रखकर लेखनी उठानी पड़ी। उसने कई लेख लिखे और अपने चाचा तथा अपने राजनैतिक सिद्धान्तों को सविस्तार समझाने का प्रयत्न किया। इससे नैपोलियन के आख्यान (Legend of Napoleon) के प्रकाशित होने में बड़ी सहायता मिली। दो बार अर्थात् सन् १८३६ ई० और सन् १८४० में लूई नैपोलियन ने लूई फिलिप को सिंहासन से वंचित करने का प्रयत्न किया किन्तु भाग्य ने उसका साथ न दिया। सन् १८४८ ई० की क्रांति के सम्बन्ध में उसे विशेष सफलता प्राप्त हुई। इसमें उसने व्यक्तिगत रूप से भाग न लिया था और वह इंग्लैंड में रहकर उसका अभिनय दूर ही से देखता रहा था। किन्तु उसके नाम में ऐसा जादू था कि जून सन् १८४८ ई० में वह राष्ट्रीय संविधान सभा का सदस्य निर्वाचित कर लिया गया और छः मास के पश्चात्, जैसा कि हमने बतलाया है, वह दूसरे गण-राज्य का अध्यक्ष चुन लिया गया।

पांचवां अध्याय

फ्रांस का द्वितीय साम्राज्य*

(१८५२-१८७०)

क्रांतियों की एक विशेषता यह होती है कि उनके सम्बन्ध में कोई नहीं बतला सकता कि उनका परिणाम क्या होगा। सन् १७८६ ई० की भांति सन् १८४८ ई० में भी जो क्रांति के कर्णधार थे उनका एक विशेष आदर्श था, परन्तु उसका फल दूसरा ही हुआ। दोनों बार इस बात का प्रयत्न किया गया था कि सामान्य जनता का राजनैतिक शासन स्थापित किया जाय, किन्तु दोनों ही बार कुछ अवकाश के पश्चात् एकतन्त्र शासन स्थापित हो गया। दिसम्बर सन् १८४८ ई० में लूई नेपोलियन ५० लाख मतों से भी अधिक से गण-राज्य का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया, किन्तु तीन वर्ष पश्चात् उसने आकस्मिक बल प्रयोग (Coup d' Etat) द्वारा उसको ठोकर मार दी, और दूसरे वर्ष अर्थात् सन् १८५२ ई० में लगभग ८० लाख वोटों से वह फ्रांस का सम्राट बनाया गया। इससे सिद्ध होता है कि नेपोलियन प्रथम की भांति उसका भतीजा भी महत्वाकांक्षी तथा पराक्रमी था। दोनों ही की प्रतिष्ठा तथा उनके नाम के जादू ने फ्रांसीसियों को ऐसा मोहित कर दिया था कि उन्होंने उस ऊँचे आदर्श को पूर्णतया विस्मृत कर दिया जिसके लिये उक्त क्रांतियाँ रची गई थीं। लूई नैपोलियन की सफलता को देखकर महा-द्वीप के शासकों तथा अभिजातवर्ग को बड़ा आश्चर्य हुआ। उनका विचार था कि सन् १८४८ ई० की क्रांति के पश्चात् ही जो निर्वाचन जनता के मतदान के

---

*अर्वाचीन युग में लूई नैपोलियन फ्रांस का दूसरा सम्राट (Emperor) था। अतएव उसका शासन द्वितीय साम्राज्य के नाम से प्रसिद्ध है।

आधार पर किये गये थे, उनमें रूढ़िवादियों को सबसे अधिक सफलता मिलेगी, परन्तु ऐसा न हुआ। सफलता का मुकुट सबसे अधिक उदारवादियों के सिर पर रहा। इनमें एक लूई नैपोलियन भी था। उसने भी अपने चाचा की भाँति फ्रांस में स्थायी शासन स्थापित करने और विदेशों में कीर्ति और प्रतिष्ठा उपार्जित करने का प्रयत्न किया। उसके कार्य-क्रम तथा उसकी सफलताओं अथवा असफलताओं को ठीक प्रकार से समझने के लिये हमें एक दृष्टि 'नैपोलियन' शब्द के आकर्षण पर डालनी चाहिये, क्योंकि इसका उनसे विशेष सम्बन्ध है।

'नैपोलियन' शब्द का आकर्षण

फ्राँसीसियों के लिये 'नैपोलियन' शब्द में विशेष आकर्षण था। जब तक नैपोलियन बोनापार्ट जीवित था उसका अनुपम व्यक्तित्व फ्राँसीसियों को प्रकट रूप से आकर्षित करता रहा। उसके मरने के पश्चात् भी उसका आकर्षण कम न हुआ। इससे लूई नैपोलियन को राज-सिंहासन के प्राप्त करने में अधिक सहायता मिली। अपने चाचा की भांति वह भी दीर्घ काल तक फ्रांसीसियों के लिये आकर्षण का विषय रहा। फ्रांसीसी नैपोलियन बोनापार्ट के व्यक्तित्व से इतने अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने उसके कार्यों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने का प्रयत्न कभी नहीं किया। इसके प्रतिकूल अत्यन्त सहानुभूति के कारण उनकी दृष्टि पर जो पर्दा पड़ गया था उसके कारण वे उसकी त्रुटियों और विफलताओं को भी दूसरा रूप देते रहे। उन्होंने उस आकस्मिक बल प्रयोग (Coup d' etat) को बिल्कुल विस्मृत कर दिया था जिसके कारण उसका चरमोत्कर्ष हुआ था। उन्होंने इस बात पर भी ध्यान न दिया कि स्वतन्त्रता के सिद्धान्त, जिसका वह दम भरता था, और उसके एकशासकत्व में क्या अन्तर था। उनकी अमिट धारणा थी कि वास्तव में नैपोलियन बोनापार्ट न केवल फ्रांस में वरन् समस्त यूरोप में एक प्रकार का स्वर्ण-युग स्थापित करने का इच्छुक था किन्तु भाग्य ने उसका साथ न दिया। इस कारण से वह अपनी इच्छाओं को व्यवहारिक रूप न दे सका, और उसे खून की नदियाँ बहानी पड़ीं। इस प्रकार की विचार धारा का, जो फ्रांसीसियों के मस्तिष्क में प्रवाहित हो रही थी, वास्तविक रहस्य यह था कि उनके हृदयों में अपने सबसे महान् योद्धा तथा विजेता के लिये यथेष्ट सम्मान तथा सहानुभूति थी। लूई नैपोलियन इस विचार धारा में सबसे अधिक विश्वास करता था। जैसा कि हमने बतलाया है, उसने अपने लेखों द्वारा उसे सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया तथा सुयोग मिलने पर उससे सबसे अधिक लाभ भी उठाया।

लूई नैपोलियन की शासन प्रणाली को समझने के लिये आवश्यक है कि

हम दूसरे साम्राज्य के संविधान पर दृष्टि डालें। इसका निर्माण इस प्रकार किया गया था कि सम्राट के हाथ में समस्त आवश्यक अधिकार आ गये और उसकी प्रजा बहुत बड़ी सीमा तक उनसे वंचित रही। सम्राट को कार्यपालिका के समस्त आवश्यक अधिकार प्राप्त थे। जल व स्थल सेनायें, स्थानीय शासन और न्यायपालिका पर भी उसने पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था। शान्ति और युद्ध के प्रश्न पर निर्णय देना उसी का काम था। उसे विधान निर्माण का पूर्ण अधिकार भी मिला हुआ था। मंत्री उसकी आज्ञाओं के पालक थे। वे किसी प्रकार के केबिनेट (Cabinet) के सदस्य न थे, परन्तु पृथक रूप में सम्राट के प्रति उत्तरदायित्व रखते थे। प्रान्तों में स्थायित्व शासन के समस्त चिह्न समाप्त कर दिये गये थे और सम्पूर्ण शक्ति प्रीफेक्टों को, जो पूर्ण रूप से केन्द्रीय शासन के अधीन थे, दे दी गई थी। नगर-समितियों के अधिकारियों का निर्वाचन न होकर, सम्राट की ओर से उनकी नियुक्ति की जाती थी। प्रेस की स्वधीनता समाप्त कर दी गई थी। शासन के कार्यों में हस्तक्षेप करना अथवा उसकी आलोचना करना बहुत बड़ा अपराध माना जाता था। अस्तु हम कह सकते हैं कि जहाँ तक कार्यपालिका का सम्बन्ध है, फ्रांस में लूई नैपोलियन के शासनकाल में पूर्ण रूप से केन्द्रीय शासन स्थापित था और सम्राट का उस पर पूर्ण प्रभुत्व था।

दूसरे साम्राज्य का संविधान

यही दशा विधान-मण्डल की भी थी। उसमें तीन सभायें सम्मिलित थीं, विधान-सभा, कौंसिल तथा सिनेट। (१) विधान सभा के सदस्यों का निर्वाचन जनता की ओर से होता था। कहने को प्रत्येक वयस्क पुरुष को मतदान का अधिकार था, परन्तु निर्वाचन करने वालों पर शासन की ओर से अधिक दबाव डाला जाता था, जिससे वे उसके द्वारा नियत व्यक्तियों को ही निर्वाचित करें। उपरोक्त सभा के अधिकार भी सीमित थे। उसे न किसी प्रकार के विधान को पेश करने का अधिकार प्राप्त था और न उसके सदस्य सरकारी प्रस्तावों में परिवर्तन ही कर सकते थे। विधान-सभा वर्ष में केवल तीन मास तक अधिवेशन कर सकती थी। सम्राट की ओर से उसके अध्यक्ष की नियुक्ति की जाती थी। (२) कौंसिल के अधिकार किसी सीमा तक अधिक थे। वह शासन के लिये विधानों के हस्तलेख तैयार करती थी, किन्तु शासन की ओर से उसके अध्यक्ष की भी नियुक्ति की जाती थी। (३) सिनेट का कार्य क़ानूनी प्रस्तावों को प्रेषित करना था। इसके अतिरिक्त वह संविधान की विभिन्न धाराओं पर प्रकाश डालता था तथा इसकी सावधानी रखता था कि उसका ठीक प्रकार से पालन किया जाता है अथवा नहीं। उसमें बैठने का अधिकार अधिकतर सरकारी पदाधिकारियों को प्राप्त था। इनकी नियुक्ति शासन की ओर से की जाती थी।

ऊपर के वृत्तान्त से हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि नेपोलियन तृतीय फ्रांस का निरंकुश सम्राट था। कहने को वह बहुत बड़े बहुमत से जनता की ओर से निर्वाचित किया गया था परन्तु वास्तव में उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा का आधार सेना थी। जिस समय वह दूसरे गण-राज्य का अध्यक्ष था उसने एक बार अपने शासन के मूल सिद्धान्तों को इस प्रकार दरशाया था—फ्रांस के भीतर शान्ति की व्यवस्था तथा सार्वजनिक हित की प्राप्ति, उसके बाहर राष्ट्रीय प्रतिष्ठा तथा मान का स्थापित रखना। इस सम्बन्ध में एक लेखक ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये थे:—"फ्रांस में एक विशाल गण-राज्य स्थापित है जिसको अनुशासन की आवश्यकता है; और नेपोलियन के वंश के अतिरिक्त कोई व्यक्ति सफलता से इस कर्तव्य की पूर्ति नहीं कर सकता।" इस कथन के अनुसार लुई नेपोलियन ने प्रारम्भ में जनता के साथ कड़ा व्यवहार किया और उसे राजनैतिक क्षेत्र में सिर न उठाने दिया। समस्त देश में सम्राट का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित रहा। उसने इस बात का वचन अवश्य दिया कि वह धीरे धीरे अपने अधिकारों को कम करके जनता को शासन में बराबर भाग लेने का सुयोग प्रदान करेगा। उसने वचन दिया कि शासन के जिस भवन को वह निर्माण करेगा, उसमें सर्वोच्च स्थान पर स्वतन्त्रता की देवी प्रतिष्ठित रहेगी। दूसरा साम्राज्य अठारह वर्ष (१८५२—१८७०) तक स्थापित रहा। इस काल में नेपोलियन तृतीय ने कई प्रकार से अपनी योग्यता तथा उपयोगिता का प्रमाण दिया। उसने अत्यन्त बुद्धिमत्ता से जनसाधारण पर अपना प्रभाव अक्षुण्ण रक्खा और विभिन्न सिद्धान्तों के व्यक्तियों को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। किन्तु आरम्भ में उसने निरंकुशता को पृथक न किया। उसने एक गुप्त पुलिस का सृजन किया। उसने कठोरता से प्रेस को अपने अधिकार में रक्खा। उसका प्रभुत्व न्यायपालिका, विधान-मण्डल तथा स्थानिक शासन अर्थात् शासन के प्रत्येक विभाग पर स्थापित था। जो उसके सबसे बड़े शत्रु थे उनको उसने कारावास का दण्ड दिया अथवा उन्हें निर्वासित कर दिया। अतएव हम कह सकते हैं कि प्रारम्भ में लुई नेपोलियन का शासन अत्यन्त कठोर था। इसके साथ-साथ उसने इस बात का प्रयत्न भी किया कि उदार तथा रूढ़िवादी दलों के उग्र समर्थक उसके शासन से संतुष्ट रहें। प्रथम को प्रसन्न करने के लिये उसने जनसाधारण के सार्वजनिक मताधिकार को अक्षुण्ण रक्खा और प्रथम राज्यक्रान्ति की प्रशंसा के पुल बाँधे। द्वितीय को प्रसन्न करने के लिये उसने बूरबन वंश के बादशाहों की भाँति एक शानदार दरबार स्थापित किया और राजसी ठाठ बाट को अत्यधिक महत्व दिया। नित्य प्रति की भेंटों के अवसर पर वह नेपोलियन बोनापार्ट से भी अधिक प्रेम और

शिष्टाचार से मिलता और वार्तालाप करता था। जब सन् १८५३ ई० में उसका विवाह स्पेन की एक राजकुमारी से हो गया तो रूढ़िवादी और भी अधिक प्रसन्न हुये तथा उसके दरबार की शान पहले से भी अधिक बढ़ गई।

सन् १८६० ई० के पश्चात् लुई नेपोलियन की शासन पद्धति में प्रशंसनीय परिवर्तन हुआ। उसने धीरे-धीरे निरंकुशता के स्थान पर उदारवाद को अपनी शासन पद्धति का प्रधान स्तम्भ बनाया और अपने शासन के अन्त तक उसके अनुसार कार्य करता रहा। ऐसा राजनैतिक क्षेत्र में हुआ। इसके प्रतिकूल आर्थिक तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में वह प्रारम्भ ही से इस नीति का पालन कर रहा था। अस्तु उसने सिनेट और विधान-सभा को इसकी आज्ञा दे दी कि वे वर्ष में एक बार शासन की नीति पर, जो सम्राट के भाषण द्वारा उनके सम्मुख प्रस्तुत की जायेगी, वादविवाद कर सकते हैं तथा उसकी आलोचना भी कर सकते हैं। यह भी निश्चित कर दिया गया कि विधान-सभा में जो वादविवाद होगा उसकी नियमानुसार रिपोर्ट तैयार की जायेगी। सन् १८६१ ई० में नेपोलियन ने उपरोक्त सभा को आय-व्यय लेखा (बजट) की मदों पर पृथक रूप से वोट देने की स्वीकृति दी। सन् १८६७ ई० में उसने उसे यह अधिकार भी प्रदान किया कि उसके सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न कर सकते हैं। इसके पश्चात् सम्राट ने प्रेस के प्रतिबन्ध ढीले कर दिये एवं जनता को सभा करने का अधिकार प्रदान किया। इन सुधारों द्वारा राजनैतिक क्षेत्र में लुई नेपोलियन के अधिकार पहले की अपेक्षा कम हो गये तथा उसकी शासन पद्धति में भी परिवर्तन हो गया। उसने जो अधिकार जनता को प्रदान किये थे उनका एक महान कारण यह था कि शासन के विरुद्ध राजनैतिक दलों का विरोध अधिक बढ़ गया था और वे सब एक मत होकर उससे सुधारों की मांग कर रहे थे।

नेपोलियन तृतीय ने अपनी आर्थिक और सामाजिक नीति में भी परिवर्तन किया। इससे जनता का अधिक हित हुआ। इन क्षेत्रों में भी उसने उदार नीति से काम लिया और अपनी प्रजा को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने का प्रयत्न किया।

आर्थिक और सामाजिक नीति

इस सम्बन्ध में यदि हम उसे अपने युग का, उदारवाद (Liberalism) का मुख्य आधार कहें तो अधिक उचित होगा। यदि अधिक नहीं तो वह लुई फिलिप तथा गीज़ो के बराबर स्थान पाने का अधिकारी अवश्य है। आर्थिक उदार-वाद का सिद्धान्त फ्रांस के विश्वविद्यालयों में सिखलाया जाता था और मध्यम श्रेणी के व्यवसायियों के लिये विधान बनाते समय उसका प्रयोग किया जाता था। लुई फिलिप के शासन ने इस दिशा में अनेक सुधार किये। उसने व्यक्तिगत उद्योगों पर अपना प्रभुत्व कमकर दिया। उसने मनुष्यों को इस बात के लिये प्रोत्साहित किया कि वे मशीनों का प्रयोग करें और औद्योगिक-मण्डल (Industrial Cor-

porations) स्थापित करके अपना काम करें। उसने प्रवेश्य-कर (Tariffs) भी हल्के कर दिये तथा ग्रेट ब्रिटेन से एक व्यापारिक संधि की। ऋण देने के लिये शासन की ओर से दो विशेष संस्थायें स्थापित की गईं। उनमें से एक संस्था साधारण व्यवसायों के लिये सम्पत्ति गिरवी रखकर ऋण देती थी तथा दूसरी संस्था बड़े उद्योग धन्धों के लिये। बैंक आफ़ फ्रांस की शाखायें भी देश के विभिन्न भागों में स्थापित की गयीं। इन सुधारों से व्यापार तथा कलाकौशल की उन्नति में प्रशंसनीय सहायता मिली। इसे हम सम्राट लुई नैपोलियन के जीवन का महान् आदर्श कह सकते हैं। इनकी उन्नति तथा निम्न श्रेणी के लोगों को कार्य में लगाने के विचार से उसने कुछ जन हितकारी काम भी किये, जैसे बन्दरगाहों का सुधार किया गया, दलदलों को साफ़ किया गया तथा नहरें व पक्की सड़कें निर्मित की गईं। एक महान् सुधार यह भी था कि शासन ने देश में रेल की सड़कों का जाल बिछाने का प्रयत्न किया तथा डाक व तार विभाग में सुधार किया। पेरिस में भव्य भवनों तथा छायादार मार्गों के निर्माण द्वारा राजधानी को सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया गया। वास्तव में पेरिस की वर्तमान सुन्दरता और आकर्षण की नींव नेपोलियन तृतीय के शासनकाल ही में रक्खी गयी थी। इन सुधारों से जिनका उल्लेख यहाँ किया गया है सबसे अधिक लाभ मध्यवर्ग के लोगों को हुआ। अतएव वे दीर्घ काल तक शासन के शुभचिन्तक तथा सहायक रहे।

नेपोलियन तृतीय मध्यवर्ग के हित में इतना अधिक लवलीन न था कि वह श्रमिकों तथा कृषकों के हित का विस्मरण कर देता। इसके प्रतिकूल उसने दोनों के हित के लिये भी कुछ उपयोगी कार्य किये। उसने प्रथम को विश्वास दिलाया कि समाज में उनका स्थान किसी भी दृष्टि से कम नहीं है। वह उनसे तथा दस्तकारों से प्रेम से भेंट करता था और उनके नाम पर मद्यपान करता था। वह उनकी समितियों को आर्थिक सहायता भी प्रदान करता था और गौरव से स्वयं को 'श्रमजीवियों का सम्राट' कह कर प्रकट करता था। उसने श्रमिकों तथा शिल्पजीवियों के लाभ के लिये कुछ क़ानून भी बनाये थे, किन्तु इस दिशा में वह इतना आगे न बढ़ा कि मध्य वर्ग के लोग उस से रुष्ट हो जाते। उदाहरणार्थ एक क़ानून इस उद्देश्य से बनाया गया कि इंग्लैंड की भाँति फ्रांस के [illegible] भी क्रय विक्रय का काम एक साथ करने के विचार से सहकार [illegible] रे क़ानून से मज़दूर-संघ वांछनीय निश्चित किये गये तथा [illegible] हड़ताल करने का अधिकार दिया गया। तीसरे क़ानून से उन्हें बीमा के सम्बन्ध में उचित सुविधायें प्रदान की गईं। इसी प्रकार सम्राट ने कृषकों को भी कई तरह से संतुष्ट किया। वह बहुधा उन्हें इसका स्मरण कराता था कि वह उनके नित्यप्रति के कामों एवं उनके

खेतों व बागों आदि में पर्याप्त अभिरुचि रखता है तथा यातायात के साधनों तथा बाज़ारों में वृद्धि कर के उन्हें लाभ पहुंचाता है। कृषकों को प्रसन्न करने के लिये उसने कैथोलिक धर्म के अनुयायियों को भी कई प्रकार की सुविधायें दीं तथा सम्राज्ञी से मिल कर दान तथा दान पावना को विशेष महत्व दिया। उसने पोप की सहायता के लिये एक सेना रोम में नियुक्त की तथा विश्वविद्यालयों एवं विद्यालयों पर पादरियों का प्रभुत्व बढ़ाया।

विदेशी नीति के सिद्धान्त

लूई नेपोलियन ने जिस सुन्दरता से विभिन्न दलों तथा श्रेणियों के मनुष्यों को प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया था वह वास्तव में प्रशंसा के योग्य है। ऐसा प्रतीत होता था कि वह साम्प्रदायिक वैमनस्य को दूर करने में अवश्य सफल होगा। जहाँ तक उसका व्यक्तिगत सम्बन्ध था, वह युद्ध से भी दूर रहना चाहता था। वह स्वयं शान्ति का प्रेमी था। परन्तु वह विदेशों में अपने तथा फ्रांस के लिये सम्मान प्राप्त करना चाहता था। सम्राट होने से पूर्व उसने अपने भाषण में इन शब्दों का प्रयोग किया था—"हाँ, एक आशंका है और मैं उसे समाप्त कर देना चाहता हूं। अवि-श्वास के स्वभाव के कारण कुछ लोग यह कहते हैं कि साम्राजिकता का अर्थ है युद्ध। मैं कहता हूं कि साम्राजिकता का अर्थ है शान्ति। फ्रांस शान्ति की उत्कंठा रखता है और यदि फ्रांस संतुष्ट है तो संसार में भी शान्ति है। यह ठीक ही है कि हमें उत्तराधिकार में गौरव और मान प्राप्त हुये हैं, न कि युद्ध।" इस भविष्य वाणी को चरितार्थ करने में नैपोलियन कृतकार्य न हुआ। कारण यह था कि जिस वातावरण में उसका उत्कर्ष हुआ था और अपने गौरवान्वित पद को अक्षुण्ण रखने के लिये जिस नीति का अनुसरण उसे करना पड़ा था उसका अर्थ था युद्ध। उसके व्यक्तित्व में राष्ट्रीयता के उद्गार कूट कूट कर भर दिये गये थे। वह विदेशी मामलों में राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और गौरव को अधिक महत्व देना चाहता था एवं स्वदेश में साम्प्रदायिक वैमनस्य को शान्त रखना चाहता था। यह उसकी नीति का निचोड़ है।

बहुत सी बातें ऐसी थीं जो नैपोलियन तृतीय को प्रभावशाली वाह्यनीति का पालन करने को बाध्य कर रही थीं। उसका पालन पोषण ऐसे समय में हुआ था जब यूरोप का वायुमण्डल नैपोलियन की कीर्ति से आच्छादित था। वह कई बार अन्य राष्ट्रों की राष्ट्रीय भावनाओं के साथ सहानुभूति प्रकट कर चुका था। इटैली, जर्मनी और पोलैंड के निवासी जो राष्ट्रीय संगठन पर ज़ोर दे रहे थे, उसकी ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहे थे। फ्रांस की साधारण जनता को भी उससे बहुत कुछ आशा थी। नैपोलियन तृतीय के नाम और उसके राष्ट्रीयता के उद्गारों के

कारण ही फ्रांसीसी राष्ट्र ने मध्य वर्ग की बादशाहत को हटा कर पहले उसे द्वितीय गण-राज्य का अध्यक्ष बनाया और इसके पश्चात् उसे सम्राट के उच्च पद पर आसीन किया। अब वही राष्ट्र इस बात का अभिलाषी था कि नैपोलियन विदेशों में प्रभावशाली नीति प्रणाली से काम ले, जिस से फ्रांस के आन्तरिक झगड़ों और वैमनस्य पर पर्दा पड़ा रहे। उसके पास यूरोप के पीड़ित राष्ट्रों की ओर से सहायता के लिये प्रार्थनायें आ रही थीं। वे चाहते थे कि जिस प्रकार मैटर्निक सदैव यूरोप के निरंकुश शासनों को सैनिक सहायता देने के लिये तत्पर रहता था, उसी प्रकार फ्रांस का सम्राट सेना भेज कर उनकी सहायता करे, जिस से वे स्वाधीनता तथा संगठन प्राप्त करने में सफल मनोरथ हो सकें। इस प्रकार वह फ्रांस तथा अपने लिये सम्मान व ख्याति प्राप्त कर सकता था एवं विगत हानियों की क्षति पूर्ति भी कर सकता था। इसके अतिरिक्त वह इस नीतिपटुता से फ्रांस में अपने वंश की नींव को भी सुदृढ़ बना सकता था। परन्तु उसके आचरण में कुछ ऐसे दोष थे जिनके कारण वह उक्त राष्ट्रों को संतुष्ट न कर सका। उसकी सब से बड़ी त्रुटि यह थी कि वह सुन्दर योजनायें तो बना लेता था, किन्तु उनको व्यवहारिक रूप देने के लिये न तो उसमें आवश्यक योग्यता ही थी और न उसके योग्य उसके पास साधन ही थे।

लूई नैपोलियन औपनिवेशिक साम्राज्य के महत्व को भली भांति समझता था। अतः सिंहासन पर बैठते ही उसने इस ओर विशेष ध्यान दिया।

औपनिवेशिक साम्राज्य सप्तवर्षीय युद्ध (१७५६–१७६३) के पश्चात् पेरिस की सन्धि से फ्रांस अपने समुद्र पार साम्राज्य से बहुत बड़ी सीमा तक वंचित कर दिया गया था। नैपोलियन बोनापार्ट ने उसे पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया, परन्तु वह सफल मनोरथ न हुआ। उसके भतीजे के शासनकाल में इस दिशा में विशेष सफलता प्राप्त की गई। नैपोलियन तृतीय ने औपनिवेशिक साम्राज्य को पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से सुदृढ़ नीति का अनुसरण किया। उसने फ्रांस के अवशेष उपनिवेशों के शासनों को शक्तिशाली बनाया तथा नवीन देशों को अपनी अधीनता में लाने का प्रयत्न किया। ऐल्जीरिया के देश पर फ्रांस के शासन ने लूई फिलिप के शासनकाल में अधिकार कर लिया था (१८३६-१८४७)। उसके उत्तराधिकारी नैपोलियन तृतीय ने वहां शान्ति स्थापित की तथा उसके शासन की समुचित व्यवस्था की। राज्यपाल मार्शल माकमाओ (MacMohan) के शासन में उसने अधिक से अधिक उन्नति की। अतएव वह फ्रांस के समुद्र पार साम्राज्य का सब से विशाल तथा उन्नतिशील भाग बन गया (१८४६-१८७०)। इसी बीच में

फ्रांस का शासन प्रशान्त महासागर के कुछ द्वीपों पर अधिकार करने की पूरी कोशिश कर चुका था और उनमें से न्यू कालेडूनिया (New Caledonia) नामक द्वीप पर उसने अधिकार भी कर लिया था। सन् १८५६ ई० में उसने ग्रेट ब्रिटेन से मिलकर चीन के विरुद्ध अपनी अप्रसन्नता प्रकट की तथा टीयेंटसीं (Tientsin) की सन्धि से उसे इसके लिये बाध्य किया कि वह कुछ बन्दरगाह पश्चिमी देशों के व्यापार के लिये निश्चित करे और देश के आन्तरिक भागों में धर्म प्रचार करने वाले पादरियों की सुरक्षा का उत्तरदायी बने (१८६०)। चीनी साम्राज्य के दक्षिण में लूई नेपोलियन ने हिन्दूचीन में फ्रांसीसी साम्राज्य की नींव रक्खी। सन् १८६३ ई० में उसने व्यापारिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण से मैक्सिको के आन्तरिक झगड़ों में हस्तक्षेप किया, परन्तु इसका परिणाम अच्छा न हुआ। इसके अतिरिक्त भी हम नेपोलियन तृतीय की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। उसके प्रयत्नों से फ्रांसीसियों ने व्यापारियों तथा उपनिवेश बसाने वालों की स्थिति में महत्व प्राप्त किया था। फ्रांस का समुद्र पार का जो साम्राज्य नष्ट हो गया था उसे फिर से स्थापित करने में सफलता प्राप्त की गई। यह उस युग के राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के लिए गौरवपूर्ण विषय था।

अंगरेज़ और रूसियों से सम्बन्ध

यूरोप में नेपोलियन तृतीय ने अपने शासन का श्रीगणेश शान्तिप्रिय घोषणाओं से किया था। इससे महाशक्तियों ने यही निष्कर्ष निकाला था कि यदि वे उसे फ्रांस के सिंहासन पर सुशोभित छोड़ देंगे तो उन्हें किसी प्रकार की हानि की आशंका नहीं रहेगी। सम्राट ने अपनी व्यापारिक तथा विदेशी नीतियों को ग्रेट ब्रिटेन के इतने अनुकूल बना दिया था कि जो शक्ति नेपोलियन प्रथम की सबसे बड़ी शत्रु थी वह कुछ वर्षों के लिए उसके भतीजे का मित्र बन गई। एक शक्ति ऐसी भी थी जो प्रारम्भ ही से उसके विरुद्ध थी। यह रूस की महाशक्ति थी। वहां इस समय ज़ार निकोलस प्रथम (१८२५-१८५५) शासन कर रहा था। ज़ार राजनैतिक क्रांतियों तथा लोकतंत्र का विरोधी था। इसलिए वह फ्रांस के नवीन सम्राट पर विश्वास न करता था तथा उसने बड़े संकोच के पश्चात् उसके अधिकार तथा शासन को स्वीकार किया था। उधर नेपोलियन तृतीय स्वयं भी ज़ार के विरुद्ध था। उसकी प्रजा भी रूस के पक्ष में न थी। फ्रांस के व्यापारी कहते थे कि रूस आर्थिक दृष्टिकोण से बहुत पीछे है तथा उसके प्रवेश्य-कर उनके प्रतिकूल हैं। कैथालिकों का कथन था कि वहां धार्मिक कठोरता से काम लिया जाता है। उदार विचार के मनुष्यों को यह शिकायत थी कि रूस की शासन

प्रणाली निरंकुश है तथा वहां का शासक पोलैंड के निवासियों के साथ बहुत ही बुरा व्यवहार करता है।

नैपोलियन तृतीय ने क्रीमिया के युद्ध (Crimean War) में सहयोग देकर अधिक ख्याति प्राप्त की। इस युद्ध के प्रारम्भ होने का प्रधान कारण तुर्की साम्राज्य के यूनानी तथा रोमन चर्चों का वैमनस्य था। इसमें फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन के शासकों ने तुर्की से मिलकर रूस के विरुद्ध था। नैपोलियन तृतीय का कथन था कि मैं रोमन चर्च का संरक्षक हूं। अतएव ईसाइयों के पवित्र स्थान जो उक्त साम्राज्य में स्थित हैं, मेरे अधीन रहने चाहिये। इसके विरुद्ध रूस का ज़ार कहता था कि मैं ग्रीक चर्च का अधीश्वर हूं। अतएव उपरोक्त स्थानों पर मेरा अधिकार होना चाहिये। इस प्रकार के वादविवादों से जो सन् १८५० से सन् १८५३ ई० तक होते रहे क्रीमिया के युद्ध का श्रीगणेश हुआ, जिसमें पांच लाख से अधिक प्राणों की आहुतियां दी गईं। फ्रांस के सम्राट को इस मामले के धार्मिक पक्ष की बहुत कम चिन्ता थी, किन्तु वह अपनी कैथोलिक प्रजा को किसी दशा में भी अप्रसन्न न करना चाहता था। दूसरी ओर रूस का ज़ार किसी भी प्रकार से पीछे हटने को तैयार न था। तत्कालीन राजनीतिज्ञों के संदेहों और उनके भ्रमों ने इस मामले को अधिक पेचीदा बना दिया। ग्रेट ब्रिटेन इस झगड़े में इसलिए पड़ा कि वह तुर्की साम्राज्य का विनाश न देख सकता था। उसको यह बात भी सहन न थी कि रूस का साम्राज्य भूमध्य सागर तक फैल जाये। ऐसी दशा में निकोलस को शान्त हो जाना चाहिये था, परन्तु उसने ऐसा न किया। इसके प्रतिकूल उसने डैन्यूब नदी के तट पर बसे हुये तुर्की साम्राज्य के दो देशों पर अधिकार करके युद्ध को अनिवार्य बना दिया। यह देखकर ग्रेट ब्रिटेन में जो राजनैतिक दल युद्ध के पक्ष में था उसने ऐबर्डीन के मन्त्रिमण्डल को युद्ध करने को विवश किया। आधुनिक काल के विद्वज्जनों का मत है कि रूस और फ्रांस के बीच जो वैमनस्य था, वह युद्ध के बिना भी समाप्त किया जा सकता था। परन्तु उस समय इसका अधिक प्रयत्न न किया गया। युद्ध के जो परिणाम हुये वे उस रक्तपात को देखते हुये जो किया गया था संतोषजनक न थे। पेरिस की सन्धि (सन् १८५६ ई०) से यूरोप के सब देशों को काले सागर से व्यापार करने की आज्ञा मिल गई। डैन्यूब नदी भी सब के लिये समान रूप से खोल दी गई। जिन दो देशों पर ज़ार ने अधिकार कर लिया था वे तुर्की के प्रभुत्व से उन्मुक्त कर दिये गये। तुर्की को यूरोपियन राष्ट्र मण्डल में सम्मिलित कर लिया गया तथा उसकी ओर से यह वचन दिया गया कि

क्रीमिया के युद्ध में सहयोग (१८५४-१८५६)

उसकी स्वतंत्रता अक्षुण्ण रक्खी जायेगी। इसके बदले में सुल्तान ने यह वचन दिया कि वह अपनी ईसाई प्रजा के साथ अच्छा व्यवहार करेगा तथा उसे इस्लामी प्रजा के समान अधिकार प्रदान करेगा।

पेरिस की संधि दीर्घकाल तक स्थापित न रह सकी। सुल्तान ने जो प्रतिज्ञायें की थीं उनका उसने पालन न किया। तुर्की साम्राज्य को कई बार संकुचित करने का प्रयत्न भी किया गया। काले सागर की स्वाधीनता भी सन् १८७० ई० से अधिक स्थापित न रह सकी। सबसे अवांछनीय विषय यह है कि क्रीमिया के युद्ध के पश्चात् यूरोप में केवल चालीस वर्ष तक शान्ति स्थापित रह सकी। इसके बाद युद्धों का ऐसा क्रम आरम्भ हुआ कि आधुनिक काल में संसार एक बहुत बड़ा रणक्षेत्र बना हुआ है, जिसमें परस्पर एक दूसरे का विनाश करना, राष्ट्रों का कर्तव्य बन गया है। इन दोषों के होते हुये भी फ्रांस तथा उसके सम्राट की प्रतिष्ठा दुगुनी हो गई थी। उक्त संधि फ्रांस की राजधानी में की गई थी। इस सम्बन्ध में यूरोपियन देशों का जो सम्मेलन आमन्त्रित किया गया था उसका अध्यक्ष बनने का श्रेय भी नैपोलियन तृतीय को प्राप्त हुआ था। ऐसा प्रतीत होता था कि यूरोपियन राष्ट्रों के भाग्यों का निर्णय उसी के हाथ में है तथा उसी के कारण तुर्की का साम्राज्य स्थापित रह सका है। उसने सन् १८१५ और सन् १८४० ई०* की कालिमा को धोकर कीर्ति तथा महानता उपलब्ध की थी। उसकी उन्नति का नक्षत्र उत्कर्ष के उच्चतर गगन मण्डल में चमकने लगा था। इसके पश्चात् उसका पतन आरम्भ हुआ। सन् १८७० ई० के संकट के पश्चात् उसका पूर्ण पतन हो गया।

इटैली के एकीकरण का प्रश्न

लूई नैपोलियन ने पेरिस की सन्धि के समय जो प्रतिष्ठा प्राप्त की थी उससे उसके शासन को नवजीवन प्राप्त हुआ। वह अपनी असाधारण सफलता को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के अनुसार जिसका वह संरक्षक था, अन्य देशों के पीड़ित राष्ट्रों को सहायता देने के लिये उद्यत हुआ। अपने चाचा की भांति उसने भी एक विशेष कार्यक्रम बनाया था। अब उसके अनुसार कार्य करने का समय आगया था। किन्तु चाचा और भतीजे दोनों के जीवनों से यह बात प्रमाणित होती है कि जब कोई देश साम्राज्य लिप्सा से अंधा हो जाता है तो अन्त में उसे हानि और पराजय का हलाहल पीना पड़ता है। यूरोप के शासक और राजनीतिज्ञ उसकी ओर से भयभीत हो गये थे तथा उसकी प्रगतिशील नीतिप्रणाली को रोकने की चिन्ता करने लगे थे।

*सातवाँ अध्याय देखिये।

सब से प्रथम नैपोलियन तृतीय ने रूमानिया राज्य की स्थापना में सहायता दी। यह राज्य तुर्की साम्राज्य के उन दो देशों को सम्मिलित करके बनाया गया था जिनको पेरिस की सन्धि से स्वायत्त्व शासन के अधिकार दिये गये थे। नैपोलियन ने इससे भी अधिक साहस का कार्य इटैली की स्वाधीनता और उसके एकीकरण के सम्बन्ध में किया। इसका विस्तृत वर्णन आठवें अध्याय में करेंगे। यहाँ केवल इतना लिखना यथेष्ट होगा, कि जिस समय पेरिस का महासम्मेलन अपना अधिवेशन कर रहा था उस समय सार्डिनिया के बादशाह विक्टर इमैनुअल की ओर से उसके सुविख्यात मन्त्री तथा राजनीतिज्ञ कैवूर ने फ्रांस के सम्राट से भेंट की थी। इसके दो वर्ष पश्चात् अर्थात् जौलाई सन् १८५८ ई० में दोनों में शर्तें तय हुईं और उनके अनुसार फ्रांस का सम्राट आस्ट्रिया के विरुद्ध सार्डिनिया को सहायता देने के लिये उद्यत हो गया। यह देख कर आस्ट्रिया के शासन ने अप्रैल सन् १८५९ में सार्डिनिया के पास युद्ध करने का प्रस्ताव भेजा और यह इच्छा प्रकट की कि वह युद्ध की तैयारियाँ बन्द कर दे। जब उसने इसकी ओर ध्यान न दिया तो विरोधी पक्षों में युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसमें आस्ट्रिया पराजित हुआ। उसकी सेनाओं ने लोम्बार्डी के युद्धक्षेत्र को छोड़कर वेनीशिया के दुर्गों में शरण ली। जब इटैली के वीरों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि नैपोलियन मध्य तथा दक्षिणी राज्यों को भी स्वाधीनता प्राप्त करने में सहायता दे तो उसने कई कारणों से अपना क़दम रोक लिया। वह इस बात को सहन न कर सकता था कि पोप और फ्रांस के कैथोलिक उसके विरुद्ध हो जायें। स्वयं कायर होने के कारण वह युद्धक्षेत्र में अधिक रक्तपात देखने से भी घबराता था। प्रशा की सेनायें भी राइन नदी के तट पर तैयार हो रही थीं। अतएव नैपोलियन तृतीय ने आस्ट्रिया से पृथक सन्धि कर ली और उसने अपनी सेनायें युद्धक्षेत्र से वापस बुला लीं। वह अपनी निर्बल नीति से किसी को भी प्रसन्न न कर सका। इस स्थान से उसके पतन के लक्षण प्रकट होने लगे। फ्रांस के भीतर राजनैतिक दलों का वैमनस्य ज़ोर पकड़े हुये थे, और बाहर उसके मित्र, और विशेषकर ग्रेट ब्रिटेन उस से अप्रसन्न होगये थे। इसका एक विशेष कारण यह भी था कि उसने सेवाय और नीस पर अधिकार कर लिया था (सन् १८६० ई०)। आस्ट्रिया उसके पूर्णतया विरुद्ध हो गया था। प्रशा का सम्राट भयभीत हुआ तथा इटैली के उदारवादी भी संतुष्ट न हुये। यह सब परिणाम, नैपोलियन तृतीय के इटैली के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के थे।

लुई नैपोलियन के हृदय में पोलैंड निवासियों के लिये भी काफ़ी सहानुभूति थी। इसके प्रतिकूल वह उनको सैनिक सहायता न दे सका। पेरिस की सन्धि

(१८१५ ई०) से पौलैंड के अधिकतर भाग पर रूस का प्रभुत्व स्थापित कर दिया गया था। जब उसके निवासियों ने रूमानिया और इटैली के राष्ट्रीय आन्दोलनों को सफल होते देखा तो उन्होंने भी सन् १८६३ ई० में रूस के शासन के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। फ्रांस पोलैंड का प्राचीन मित्र था। पोलैंड के निवासी नैपोलियन बोनापार्ट की ओर से युद्ध में चमत्कार दिखला चुके थे। फ्रांस के उदार विचार के मनुष्य और पादरी भी यही चाहते थे कि नैपोलियन तृतीय पोलैंड निवासियों की सहायता करे। परन्तु यूरोप की राजनैतिक परिस्थिति इसके विरुद्ध थी। युद्ध की दशा में आवश्यक था कि यूरोप की अन्य बड़ी शक्तियाँ नैपोलियन तृतीय के विरुद्ध हो जातीं। अतएव उसने केवल इतना किया कि उसने पोलों की ओर से प्रतिरोध प्रकट किया। ग्रेट ब्रिटेन ने भी इसी नीति का अनुसरण किया। फल यह हुआ कि रूस की सेनाओं ने पोलैंड के विद्रोह को सरलता से दबा दिया। नैपोलियन तृतीय के आचरण को देखकर फ्रांस के उदारवादियों तथा पादरियों ने शोक प्रकट किया तथा अपने सम्राट की तीव्र आलोचना की। द्वितीय साम्राज्य की कीर्ति तथा प्रतिष्ठा क्षीण हो रही थी। मैक्सिको के मामले के पश्चात् उसका बिल्कुल अन्त हो गया।

पोलैंड को सैनिक सहायता देने का प्रयत्न, १८६३ ई०

जब नैपोलियन तृतीय ने देखा कि उसकी योजनाओं को यूरोप के महाद्वीप में अधिक सफलता नहीं मिल रही है तो उसने दूर के देशों में उन्हें सफल बनाने का प्रयत्न किया। सन् १८६१ ई० में मैक्सिको के शासन ने आर्थिक कठिनाइयों के कारण दो वर्षों के लिये विदेशी राष्ट्रों का ऋण चुकाना स्थगित कर दिया था। यह नीति ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और स्पेन के निवासियों के लिये घातक थी। उनके शासकों ने उनके हितों की रक्षार्थ अपनी सेनायें मैक्सिको भेज दीं। उनके सम्मुख उक्त देश के शासन को पराजय स्वीकार करनी पड़ी। अब नैपोलियन तृतीय ने अपना विचार प्रकट किया कि उसका उद्देश्य मैक्सिको के गण-राज्य को समाप्त कर के वहाँ आस्ट्रिया के सम्राट के भाई मैक्सिमिलियन को सिंहासनारूढ़ करना है (सन् १८६४ ई०)। यह ज्ञात कर के सबको आश्चर्य हुआ। किन्तु नैपोलियन तृतीय जैसे व्यक्ति के लिये कोई बात असंभव न थी। कुछ समय तक फ्रांस की सेनायें विशेष रूप से विजयी हुईं। इसके दूसरे वर्ष संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने अपने गृहयुद्ध (१८६१–१८६५) से अवकाश पाकर ज़ोरदार प्रतिरोध उपस्थित किया, क्योंकि फ्रांस की नीति प्रत्यक्ष रूप से मुनरो के सिद्धान्त के प्रतिकूल थी। विवश होकर नैपोलियन तृतीय ने सन् १८६७ ई० में

मैक्सिको में हस्तक्षेप

फ्रांस की सेनाओं को वापस बुला लिया। जब मैक्सिमिलियन लौटने को राज़ी न हुआ तो उसको बन्दी बना लिया गया तथा बन्दूक से उड़ा दिया गया।

मैक्सिको के युद्ध का फ्रांस के निवासियों पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। नैपोलियन तृतीय ने न कवल ऐसे युद्ध में जिसका परिणाम पूर्व ही से विदित था, सैनिकों तथा धन की बरबादी की थी वरन् संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के सम्मुख उसका बड़ा अनादर तथा अपमान भी हुआ था। एक विदेशी राजकुमार को दूरस्थ देश में ले जाकर उसके भाग्य पर छोड़ देने से भी उसकी बड़ी अपकीर्ति हुई थी।

अब सम्राट लुई नैपोलियन की स्थिति डाँवाडोल थी। विधान-मण्डल में इस नीति पर काफ़ी ज़ोर दिया जाने लगा कि दूसरे साम्राज्य को हटाकर फिर से गण-राज्य की स्थापना की जाय। सन् १८६६ के निर्वाचनों में गणतन्त्रवादी दल के सदस्य बहुत बड़ी संख्या में निर्वाचित हुये। यह देखकर सम्राट को अपने घर को संभालना पड़ा। उसने कई आवश्यकीय सुधार किये तथा एक नवीन संविधान भी निर्मित किया। इस प्रकार की बातों से

द्वितीय साम्राज्य का अन्त, १८७० ई०

जनता प्रसन्न अवश्य हुई, परन्तु शासन की दशा में कोई विशेष परिवर्तन न हुआ। उसकी तथा अपने वंश की नींव को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से सम्राट ने प्रशा के विरुद्ध युद्ध किया (१८७०-१८७१)। इसका सविस्तार वर्णन नवें अध्याय में करेंगे। यहाँ केवल इतना कहना यथेष्ट होगा कि सदाँ (Sedan) के युद्ध में फ्रांस की सेनाओं ने शस्त्र डाल दिये (१ सितम्बर सन् १८७० ई०)। इसके बाद राजधानी पेरिस पर भी शत्रु का अधिकार होगया। उसके निकट वर्सेल्ज़ के प्राचीन राजप्रासाद में प्रशा के बादशाह का राज्याभिषेक जर्मन सम्राट (Emperor of Germany) की हैसियत से किया गया। फ्रांस का दूसरा साम्राज्य भी इस भारी ठेस से न बच सका। उसके स्थान में तीसरे गण-राज्य (Third Republic) की स्थापना की गई, जो दीर्घ काल तक स्थापित रहा।

फ्रांस के इतिहास में नैपोलियन तृतीय का एक विशेष स्थान है। उसने अपने चाचा नैपोलियन बोनापार्ट की परम्पराओं को फ्रांस में दुबारा स्थापित किया था। किन्तु उसके पतन के पश्चात् उनका भी अन्त हो गया। नैपोलियन तृतीय अपने काल का एक अद्भुत शासक था। उसको ठीक प्रकार से समझना दुष्कर है। उसने नैपोलियन बोनापार्ट के पथ पर अग्रसर होने का प्रयत्न किया था। इस महत्वपूर्ण कार्य में उसे सन् १८६० ई० तक प्रकट सफलता प्राप्त

इतिहास में नैपोलियन तृतीय का स्थान

हो चुकी थी। इस तारीख तक उसने अपने आन्तरिक सुधारों के कारण स्वदेश में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना लिया था तथा वैदेशिक नीति में सफलता प्राप्त करके श्रेष्ठ कीर्ति प्राप्त करली थी। इसके पश्चात् जीवित रहना ही उसके लिये विपत्ति तथा अपकीर्ति का कारण प्रमाणित हुआ। स्वदेश में उसने अपनी प्रजा के सुख तथा संतोष का प्रयत्न किया। उसने उसके रहने के लिये सुन्दर भवनों की व्यवस्था की, विद्या व कलाकौशल तथा कृषि आदि की उन्नति की, नये बन्दरगाह निर्मित किये, नहरें एवं पक्की सड़कें व रेल मार्ग बनवाये। उसने प्रदर्शिनियाँ भी लगाईं तथा इसी प्रकार के अन्य हितकारी कार्य भी किये। किन्तु इन सब सुधारों के होते हुये भी वह देश के किसी राजनैतिक दल को अपना न बना सका। उसकी वाह्यनीति भी प्रारम्भ में सफल होने के पश्चात् असफल प्रमाणित हुई। फ्रांस में उसकी प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखने के लिये आवश्यक था कि सन् १८६० ई० के पश्चात् भी सफलता उसका साथ देती, परन्तु ऐसा न हुआ। न वह किसी अन्य राष्ट्र को युद्ध के समय अपनी ओर आकर्षित कर सका और न किसी शत्रु का सामना ही प्रयत्न तथा व्यवस्था के साथ कर सका। "उसका मस्तिष्क योजनाओं से उसी प्रकार भरा रहता था जिस प्रकार खरगोशों की मांद खरगोशों से भरी रहती है।" परन्तु वह उनको कार्यान्वित करने की योग्यता न रखता था। उपरोक्त वर्ष के पश्चात् जो महत्वपूर्ण समस्यायें विदेशों के सम्बन्ध में उपस्थित हुईं उन सब में उसने हस्तक्षेप करने का प्रयत्न किया, किन्तु अपकीर्ति तथा लज्जा के अतिरिक्त कुछ भी उपलब्ध न हुआ। डेन्मार्क, पोलैंड तथा आस्ट्रिया के सम्बन्ध में जो समस्यायें उपस्थित हुईं उनका भी यही फल हुआ। नेपोलियन ने मेक्सिको के दूर देश में भी राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया था, किन्तु उसमें भी उसे सफलता न मिल सकी थी। इसके कारण शाही खजाने पर बुरा प्रभाव पड़ा तथा सम्राट की बड़ी अपकीर्ति हुई। इन सब बातों का ऐसा बुरा प्रभाव हुआ कि सन् १८७० ई० के गम्भीर धक्के से दूसरा साम्राज्य न बच सका। नेपोलियन तृतीय के पतन के विषय में इतना हम अवश्य कहेंगे कि वह एक प्रकार की सुन्दरता लिये हुये था। यह वह मत है जो लेखकों ने भारतवर्ष के एक विख्यात शासक के सम्बन्ध में भी प्रकट किया था।

छठा अध्याय

मध्य यूरोप में सन् १८४८ ई० की क्रांतियां

फ्रांस की फर्वरी मास की क्रांति को इतिहास में विशेष महत्व प्राप्त है। उसका समाचार ज्ञात करके यूरोप के प्रतिक्रियावादी बादशाहों और मन्त्रियों को बड़ा आश्चर्य हुआ था। जिन सिद्धान्तों की रोकथाम के लिये उन्होंने नेपोलियन बोनापार्ट के समय में इतना अधिक रक्त बहाया था, वही सिद्धान्त अब विचित्र कौतुक दिखला रहे थे। सन् १८१५ ई० के पश्चात् पहले लोकतंत्र तथा राष्ट्रीयता के आधार पर साधारण आन्दोलन हुये। इसके पश्चात् सन् १८३० ई० की क्रांतियां हुईं। इनका हाल मालूम करके उपरोक्त प्रणाली के मन्त्रियों को बड़ी चिन्ता हुई। जब उन्होंने फ्रांस की सन् १८४८ ई० की क्रांति का समाचार सुना तो उनकी चिन्ता दुगुनी हो गई। उसका समाचार ज्ञात करके मैटर्निक जैसा पुरानी शासन प्रणाली तथा पुरानी समाज का समर्थक भी घबरा गया और कहने लगा कि "आज यूरोप को पुनः सन् १७९३ ई० की परिस्थिति का सामना करना है।" जब से फ्रांस की राष्ट्रीय प्रसभा (National Convention) ने यूरोप के बादशाहों को ललकारा था और पीड़ित तथा पद दलित राष्ट्रों को 'अत्याचारियों' के पंजे से छुटकारा दिलाने का वचन दिया था उस समय से क्रांतिकारी आन्दोलनों का महत्व बढ़ गया था। यदि उस समय उनका मुख्य उद्देश्य 'मानव के अधिकारों' को प्राप्त करना था तो सन् १८४८ ई० में उनका ध्येय उपरोक्त अधिकारों के अतिरिक्त राष्ट्र तथा श्रमजीवियों के अधिकारों को प्राप्त करना भी था। कारण कि उस समय से जो पचपन वर्ष व्यतीत हुये थे उनमें पर्याप्त राष्ट्रीय जागृति हो चुकी थी और औद्योगिक क्रांति के कारण मज़दूरों का महत्व भी बढ़ गया था।

सन् १८४८ ई० से बहुत पूर्व पश्चिम तथा मध्य यूरोप में राजनैतिक क्रांतियों की गूंज सुनाई पड़ी थी। इनका उल्लेख किसी सीमा तक द्वितीय अध्याय में किया जा चुका है। सन् १८३० के जोलाई मास में फ्रांस में क्रांति हुई थी, जिसके कारण वहां के राजतंत्र का सिद्धान्त बदल गया था और 'बादशाह के दैवी अधिकारों' का स्थान 'राष्ट्र के दैवी अधिकारों' ने ले लिया था। सन् १८३० ई० की क्रांति के कारण बेल्जियम, हालैंड के एकीकरण तथा प्रभुत्व से स्वतंत्र कर दिया गया था। इसके पश्चात् १८३०-३१ में इटैली, जर्मनी तथा पोलैंड में भी क्रांतिकारी आन्दोलन हुये। परन्तु ये आन्दोलन निर्बल थे, तथा पूर्वीय यूरोप में तो वे नहीं के समान थे। रूस के ज़ार निकोलस प्रथम (१८२५-१८५५) का शासन ज़ार पीटर महान् के शासन की भांति निरंकुश था और तुर्की का सुल्तान अब्दुल मजीद (१८३९-१८६१) प्रत्येक प्रकार से अठारहवीं शताब्दी के सुल्तानों के समान था। उक्त आन्दोलनों के शक्तिहीन होने का प्रधान कारण आस्ट्रिया के मन्त्री मैटर्निक का विरोध था। जहां तक सम्भव होता वहां तक मैटर्निक उदार विचारों के व्यक्तियों का सिर कुचलता तथा जहां उसकी शक्ति काम न करती वहां वह अपने मित्र प्रशा तथा रूस के शासकों से सहायता लेता था। इसके होते हुये भी मध्य यूरोप के देशों में उदार विचार के लोगों की संख्या तथा शक्ति में वृद्धि होती गई। विशेषकर जब वहां औद्योगिक क्रांति का ज़ोर बढ़ा तब उनमें प्रकट रूप से वृद्धि हुई। औद्योगिक क्रांति से मध्यम श्रेणी के लोग अधिक धन सम्पन्न हो गये तथा उनका साहस भी बढ़ गया। नगरों का विकास हुआ तथा उनका महत्व भी बढ़ा। इस प्रकार ऐसे नगर निवासी बड़ी संख्या में तैयार हो गये जो शासन पर अधिकार प्राप्त करने के अभिलाषी थे। इन कारणों से लोक-तंत्र तथा राष्ट्रीयता की शिथिल धाराओं में शक्ति आगयी। बोहीमिया, रोम, टस्कनी प्रशा, सिसली, लोम्बार्डी तथा हंग्री आदि में राजनैतिक आन्दोलन हुए। इसके पश्चात् सन् १८४८ ई० में कई देशों में क्रांतियां हुई। मध्य यूरोप के उदार (Liberal) आन्दोलनों तथा क्रांतियों का यह उद्देश्य न था कि सब जगह फ्रांस की भांति राजतंत्र को हटाकर गण-राज्य स्थापित कर दिया जाय वरन् उनके उद्देश्य दूसरे ही प्रकार के थे। उदाहरणार्थ, संविधानीय शासन (Constitutional government) की स्थापना, कर देने वाले प्रत्येक व्यस्क व्यक्ति को मत देने के अधिकार की प्राप्ति तथा मन्त्रियों का बादशाह के स्थान में विधान-मण्डल के प्रति उत्तर-दायित्व, राजनैतिक सभाओं के करने की स्वतन्त्रता, पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता, प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान सामाजिक अधिकार, एकाधिकारों (Monopolies)

प्रारम्भ के क्रांतिकारी आन्दोलन

तथा दास-कृषकों की प्रथा (Serfdom) की समाप्ति, प्रेस की स्वतन्त्रता इत्यादि। आधुनिक काल के राजनैतिक और सामाजिक अधिकारों की तुलना में इन अधिकारों का कोई महत्व नहीं है। परन्तु उस काल और उन देशों के दृष्टिकोण से जिनका उल्लेख हम कर रहे हैं, इनका महत्व अत्यधिक था।

सन् १८४८ ई० के आंदोलनों की रूपरेखा

सन् १८४८ ई० में मध्य यूरोप के कई देशों में शक्तिशाली क्रांतिकारी आन्दोलन हुये। उनका प्रारम्भ, जैसा कि वर्णन कर चुके हैं, फ्रांस से हुआ था। इस वर्ष वहाँ लुई फ़िलिप का पतन हुआ था तथा उसके शासन के स्थान पर द्वितीय गण-राज्य (Second Republic) की स्थापना की गई थी। इसके पश्चात् इसी वर्ष मार्च में अस्ट्रिया की राजधानी वियेना में क्रांति हुई, जिसके फलस्वरूप स्वतंत्रता तथा संविधानीय शासन के सब से बड़े शत्रु मैटर्निक को भेष बदल कर वहाँ से अदृश्य हो जाना पड़ा। मैटर्निक के पतन से क्रांतिकारी आन्दोलनों के मार्ग से एक शक्तिशाली कंटक दूर हो गया। अतएव हंग्री, बोहीमिया, जर्मनी तथा इटैली आदि में क्रांतियां हुईं। सन् १८४८ ई० के पूर्वार्द्ध में उनकी उन्नति होती रही। इसके पश्चात् उसके उत्तरार्द्ध में घड़ी की सुई उल्टी घुमा दी गई तथा मध्य यूरोप के सब देशों में क्रांतिकारी आन्दोलनों को समाप्त कर दिया गया। इसके होते हुये भी उदार नीति की जो ज़ोरदार हवा चली थी उसे कोई भी शान्त न कर सकता था। इसी बीच में उक्त वर्ष में इंग्लैंड में चार्टिस्ट्स (Chartists) का दूसरा आन्दोलन हो चुका था। बेल्जियम में एक उदार दल के मन्त्रिमन्डल ने मतदान के प्रतिबन्ध किसी सीमा तक ढीले कर दिये थे। स्विटज़रलैंड में सन् १८१४ ई० के संविधान को हटा कर एक नवीन संविधान कार्यान्वित किया गया था। सन् १८४८ के सब से प्रबल आन्दोलन फ्रांस के अतिरिक्त, अस्ट्रिया, हंग्री, जर्मनी तथा इटैली में हुये थे। इन पर हम क्रमशः प्रकाश डालेंगे। सर्वप्रथम हम अस्ट्रिया के आन्दोलन पर दृष्टिपात करेंगे, क्योंकि उसका मन्त्री मैटर्निक उन्नति तथा उदार आन्दोलनों के मार्ग में गत चालीस वर्षों से एक महान अविरोध बना हुआ था।

अस्ट्रिया

उन्नीसवीं शताब्दी में अस्ट्रिया तथा हंग्री के इतिहास अत्यन्त रहस्यमय हैं। इतना रहस्यमय यूरोप के किसी अन्य देश का इतिहास नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि अस्ट्रिया अथवा हंग्री में कोई पृथक जाति निवास न करती थी वरन् दोनों देशों में अगणित जातियों (Races) का निवास था तथा वहां के

शासकों के सम्मुख अनेक जातीय समस्यायें (Racial problems) थीं। आस्ट्रिया के इतिहास की एक अन्य विशेषता भी है। अन्य देशों के साम्राज्य तलवार के बल से अथवा उपनिवेश बनाकर स्थापित किये गये थे। किंतु आस्ट्रिया के विस्तृत साम्राज्य की स्थापना में सब से अधिक सहायता राजवंशीय विवाहों से प्राप्त हुई थी। हैप्सबर्ग बादशाहों ने प्रारम्भ ही से स्वार्थपूर्ण नीति से काम लिया था। उन्हें दीर्घकाल तक होली रोमन सम्राट होने का गौरव प्राप्त रहा था। इससे लाभ उठा कर उन्होंने अपने खानदानी साम्राज्य में अनन्त रूप से वृद्धि कर ली थी। उन्नीसवीं शताब्दी में हैप्सबर्ग वंश के शासकों के सम्मुख दो मुख्य समस्यायें थीं। प्रथम यह कि जर्मनी के आन्तरिक मामलों में उनका हस्तक्षेप किस प्रकार स्थापित रहे। इस सम्बन्ध में पांच सौ वर्षों से उनका बोलबाला रहा था, परन्तु अब उन्हें प्रशा की बढ़ती हुई युद्ध शक्ति के कारण इस अधिकार से वंचित होने की आशंका थी। द्वितीय समस्या यह थी कि उन अधिकृत जातियों पर, जो उनके साम्राज्य में निवास करती थीं, किस प्रकार नियंत्रण रक्खा जाय। एक बार फ्रांसिस द्वितीय ने यह स्वीकार किया था कि "मेरा साम्राज्य एक घुन लगे हुये भवन के समान है, जिसका एक भाग यदि पृथक कर दिया जाय तो कोई नहीं बतला सकेगा कि भवन का कितना भाग गिर जायेगा।"

हैप्सबर्ग वंश का शासन

इस समय आस्ट्रिया के शासन पर मैटर्निख का प्रभाव था। इसका उल्लेख इसके पूर्व भी होता रहा है। विशेषकर जिस योग्यता से उसने नेपोलियन बोनापार्ट के पतन की तैयारी की थी, तथा इसके पश्चात् जिस सफलता के साथ उसने लोकतन्त्र तथा राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों की उन्नति करने से रोकने का प्रयत्न किया था, उसको हम कभी भी विस्मृत नहीं कर सकते। वह अपने समय के व्यक्तियों तथा राजनीतिज्ञों में अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान रखता है। काउंट क्लीमेंस मैटर्निख (Count Clemens Metternich) का जन्म १५ मई सन् १७७३ ई० को प्रशा के प्रसिद्ध नगर कोब्लेन्ज़ में हुआ था। उसका वंश जिसका निवास-स्थान जर्मन राइनलैंड में था अत्यन्त प्राचीन तथा उच्च था। उसका पिता होली रोमन साम्राज्य के विदेशी विभाग में एक पद पर आसीन था। सोलह वर्ष की आयु में जब मैटर्निख स्ट्रैसबर्ग के विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहा था, उस समय उसे सर्वसाधारण के हिंसात्मक व्यवहार का प्रथम बार अनुभव हुआ था। जब चौदह साल बाद नेपोलियन बोनापार्ट ने उसकी कौटुम्बिक जागीर जब्त करली तो फ्रांस की क्रांति के लिये उसका विरोध और भी अधिक बढ़ गया। सन् १७९५ ई० में उसने आस्ट्रिया के विख्यात

काउंट मैटर्निख

राजनीतिज्ञ कौनिट्ज़ की सम्बन्धी स्त्रिया से विवाह किया। इस प्रकार उसके लिये उन्नति का मार्ग सरल हो गया। उसने ड्रेस्डन, बर्लिन, सेंट पीटर्सबर्ग और पेरिस में अपने बादशाह का प्रतिनिधित्व किया। अपने असाधारण व्यक्तित्व और विनोद प्रियता के कारण उसने नेपोलियन बोनापार्ट के दरबार में विशेष सम्मान प्राप्त किया। इसके साथ साथ उसका अनुभव भी विशेष रूप से बढ़ गया। सन् १८०९ ई० में वह आस्ट्रिया का वाह्यमन्त्री तथा सन् १८२१ ई० में चान्सलर नियुक्त किया गया। इसके अतिरिक्त वह सन् १८०९ ई० से सन् १८४८ ई० तक वहाँ का मुख्य मन्त्री भी रहा। सन् १८५९ में ई० राजधानी वीयेना में उसकी मृत्यु हुई।

उसकी शासन नीति

मैटर्निक बहुधा इस बात पर शोक प्रकट किया करता था कि वह या तो उपयुक्त समय के पूर्व पैदा हुआ है अथवा उसके बाद। "यदि मैं इससे पूर्व उत्पन्न होता तो मैं उस युग को देख कर संतोष प्राप्त करता। बाद में आने से मैं उसके सुधार में सहायक होता। आज मुझे अपना जीवन (शासन के) गिरते हुये भवन में आधार स्तम्भ निर्मित करने में व्यतीत करना पड़ रहा है।" इस कथन से प्रकट होता है कि मैटर्निक प्रतिबन्धों की नीति से काम लेता था। उसका एक सिद्धान्त यह भी था कि "शासन करो परन्तु बदलो कुछ भी नहीं।" इस सम्बन्ध में मैटर्निक ने एक बार एक अंगरेज़ राजनीतिज्ञ के सम्मुख अपने विचारों का प्रकाशन इस प्रकार किया था, "हम प्रतिबन्धों की नीति से काम लेते हैं जिससे हम छिन्नच्छेदन की नीति पर काम करने के लिये वाध्य न हो जावें। ·········· हमें इसका पूर्ण विश्वास है कि यदि शासन किसी के प्रति पक्षपात करता है तो उसका बुरा प्रभाव उसके मूल सिद्धान्त पर पड़ता है।" ऐसी दशा में मैटर्निक जीवन पर्यन्त आस्ट्रिया में लोकतन्त्र और राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों की उन्नति में बाधक रहा और विदेशों में भी उनका प्रतिशोध बड़ी कर्मण्यता से करता रहा। 'क्रान्ति' का शब्द ही उसके चित्त में खटकता था। वह समस्त जीवन आस्ट्रिया की पूर्ण शक्ति 'जेकोबिन सिद्धान्त' अथवा क्रान्तिकारी कुव्यवस्था को रोकने में व्यय करता रहा। वह इस बात से पूर्ण रूप से परिचित था कि यह कदापि सम्भव नहीं हो सकता कि वह घर में दमनकारी नीति से काम ले और जर्मनी अथवा किसी अन्य देश में उदार आन्दोलन के करने वालों को प्रोत्साहन दे। रूस के ज़ार सिकन्दर ने इस नीति के अनुसार आचरण करने का प्रयत्न किया था, परन्तु [illegible] क्रान्ति के रूप में प्रकट हुआ था। इन सब बातों पर [illegible] चांसलर ने यही उचित समझा कि यूरोप में उस समय [illegible] शासन पद्धति स्थापित थीं

उनको अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न करे। यही वह नीति है जिसका अनुसरण करने का निर्णय उसने किया था तथा जिसका वह जीवन पर्यन्त अनुसरण करता रहा।

अपने सिद्धान्तों और नीतिप्रणाली के अतिरिक्त भी मैटर्निक क्रांतिकारी हवाओं को अस्ट्रिया में पहुँचने से न रोक सका। ये हवायें फ्रांस से चली थीं और अस्ट्रिया में आकर उसके चांसलर के चारों ओर चक्कर लगा रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे शीघ्र ही उसे अपना शिकार बनाने वाली हैं। उसकी नीति की सबसे बड़ी निर्बलता यह थी कि उसकी सहायता से वह प्रलय को केवल टाल सकता था, उसको पूर्णरूप से रोक नहीं सकता था। उसका शासन बहुत कठोर था। पुलिस, सेना तथा गुप्तचर इन तीनों पर वह विशेष रूप से भरोसा रखता था। यदि हम इन्हें उसकी नीति के सुदृढ़ स्तम्भ कहें तो अधिक उपयुक्त होगा। ऐसी दशा में आवश्यक था कि क्रान्तिकारी शक्तियाँ गुप्त रीति से काम करें। ये शक्तियां प्रारम्भ में निर्बल थीं। इसका कारण यह था कि अस्ट्रिया के निवासी दीर्घकाल से बड़ी सीमा तक मदहोशी तथा निश्चिन्तता का जीवन व्यतीत कर रहे थे। उसके पड़ोसी जर्मनी में स्वाधीनता संग्राम के कारण यथेष्ट जागृति हो चुकी थी, किन्तु अस्ट्रिया में उसका अभाव था। यदि वहाँ जागृति तथा अनिश्चिन्तता के लक्षण किसी न किसी सीमा तक विद्यमान थे तो वे दो दिशाओं में विद्यमान थे। प्रथम, विश्वविद्यालयों तथा शिक्षित वर्ग के लोगों में और दूसरे, कृषकों में। इससे हमें इस बात का स्मरण होता है कि किसी भी क्रान्ति के लिये बौद्धिक जागृति तथा सर्वसाधारण में असंतोष का होना आवश्यक है। इन्हें हम क्रान्तियों का मुख्य आधार कह सकते हैं। अस्ट्रिया में सन् १८४८ ई० की क्रान्ति के पूर्व ये दोनों विशेषतायें उपस्थित थीं। शासन की ओर से इस बात का पूरा प्रबन्ध कर दिया गया था कि विदेशों की प्रतिकूल पुस्तकें और समाचारपत्र आदि प्रजा तक न पहुँचने पायें। फिर भी अस्ट्रिया के निवासी किसी न किसी प्रकार वहाँ के क्रांतिकारी विचारों से प्लावित होते रहे। विशेषकर मध्यम श्रेणी के शिक्षित वर्ग के व्यक्तियों में इस बात की अभिलाषा उत्पन्न हो गयी थी कि शासन में सुधार किया जाय। परन्तु जिन सुविधाओं को वे प्राप्त करना चाहते थे वे सांवैधानिक ढंग की नहीं थीं। उनका रूप प्राथमिक था। उदाहरणार्थ, शासन के दैनिक रूप में परिवर्तन किया जाय। संसद (Diet) के अधिकारों में वृद्धि की जाय, विदेशों के समाचार पत्रों तथा पुस्तकों को अन्दर आने की आज्ञा प्रदान की जाय, प्रेस के प्रतिबन्धों को सरल कर दिया जाय आदि। इसी प्रकार कृषकों की माँगें भी साधारण प्रकार की थीं। शिक्षित वर्ग के लोगों की भांति वे भी शासन का सामना

सन् १८४८ ई० की क्रान्ति के कारण

प्रत्यक्ष रूप से न करना चाहते थे, परन्तु क्रान्ति के विषय में उनका महत्व किसी भी दशा में कम न था। इसका सबसे प्रकट प्रमाण यह है कि जैसे ही उनकी मांगें पूरी कर दी गईं वैसे ही क्रान्ति का भी अंत हो गया। शासन के शत्रुओं ने कृषकों की अचेतना से काफ़ी लाभ उठाया। उसके कारण उन्होंने क्रान्ति को सफलता की सीमा तक पहुंचाने में सफलता पाई।

मैटर्निक का पतन

जैसे ही फ्रांस में लूई फ़िलिप का पतन हुआ वैसे ही अस्ट्रिया में मैटर्निक के शत्रुओं ने उसकी शासन पद्धति को समाप्त करने का प्रयत्न किया। इस महत्वपूर्ण कार्य में वायेना विश्वविद्यालय के शिक्षकों तथा छात्रों ने अन्य लोगों का पथप्रदर्शन किया। १२ मार्च को दो प्रोफ़ेसरों ने एक प्रार्थनापत्र सम्राट की सेवा में प्रेषित किया। दूसरे दिन अर्थात् १३ मार्च सन् १८४८ ई० को कुछ छात्रों ने सभा भवन की ओर, जहाँ डाइट अथवा धारा सभा के अधिवेशन होते थे, प्रस्थान किया और सर्व साधारण के समूह की सहायता से जो एकत्रित हो गया था उस पर आक्रमण कर दिया। शीघ्र ही उसके चारों ओर जनता का समूह बहुत बढ़ गया। सड़कों पर सुरक्षा का प्रबन्ध किया गया। कई स्थानों में क्रान्तिकारियों तथा राजकीय सेनाओं के बीच संघर्ष हुये तथा राजकीय भवन 'मैटर्निक को समाप्त कर दो' की ध्वनि से गूंज उठा। जनता के साहस तथा उत्साह को देखकर वृद्ध मन्त्री मैटर्निक से कुछ करते न बना। वह समझ गया कि अब कल्याण नहीं है। अस्तु वह त्यागपत्र देकर इंग्लैंड चला गया। वहाँ उसके पुराने मित्र ड्यूक आफ़ वेलिंगटन ने उसका स्वागत किया। मैटर्निक की शासन पद्धति तथा उसके सिद्धान्तों को हम निर्दोष प्रमाणित नहीं कर सकते। वह एक उच्च श्रेणी का राजनीतिज्ञ था, परन्तु हम इस बात को विस्मरण नहीं कर सकते कि उसके कारण यूरोपीय देशों की सांविधानिक उन्नति कम से कम पचास अथवा साठ वर्ष तक अवरुद्ध रही थी। यह एक ऐसी बात है जिसके कारण हम अस्ट्रिया के इस प्रौढ़ चांसलर के सम्बन्ध में कोई ठीक मत स्थिर नहीं कर सकते। एक अन्य बात अवश्य ऐसी है जिसके कारण हम उसके नाम तथा उसकी शासन पद्धति को सदैव याद रखेंगे। जब तक वह पदासीन रहा वह शान्ति की स्थापना के लिये प्रयत्नशील रहा तथा उसने ऐसे यूरोप को, जो नैपोलियन के युद्धों से रक्त सिक्त था, रक्त और हत्या से उन्मुक्त रक्खा।

मैटर्निक के पतन के अतिरिक्त सन् १८४८ ई० की क्रांति के अन्य परिणाम भी हुए। अस्ट्रिया के सम्राट फर्डिनेंड प्रथम ने एक घोषणा द्वारा सुधारों का वचन दिया। इनमें सांविधानिक शासन का स्थान सब से ऊँचा था। सम्राट ने उदार विचार के लोगों का मन्त्रिमंडल भी निर्मित किया, प्रेस को स्वतन्त्रता प्रदान की,

राष्ट्रीय रक्षा दल की स्थापना की, और समस्त साम्राज्य की प्रान्तीय धारा सभाओं के आधार पर एक केन्द्रीय धारा सभा (Diet) का निर्माण किया। वायेना के सुप्रबन्ध के लिये १०० नागरिकों की एक परिषद् निर्मित की गई, जो राष्ट्रीय रक्षा दल तथा विश्वविद्यालय के छात्र मण्डल (Academic Legion) की सहायता से सब काम करता था। ये समस्त उदार सुधार वृद्ध चान्सलर मेटर्निक के पतन तथा भाग जाने के कारण सम्भव हो सकते थे।

उदार संविधान

२५ अप्रैल को उदार मन्त्रिमण्डल ने नवीन संविधान स्वीकार किया। इसके द्वारा आस्ट्रियन साम्राज्य के एक और अखण्ड होने की घोषणा की गई। उसमें हंगरी, क्रोशिया तथा ट्रान्सिलवेनिया को छोड़ कर हैप्सबर्ग वंश का संयुक्त साम्राज्य सम्मिलित रहा। प्रत्येक व्यक्ति को जानपद तथा धार्मिक स्वतन्त्रता (Civil and religious liberty) प्रदान की गई। समस्त साम्राज्य के लिये दो सभाओं का विधान-मण्डल (Reichstag) स्वीकार किया गया। मन्त्री सम्राट के स्थान पर विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी बनाये गये। इन खण्डों पर विचार करने से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि आस्ट्रिया का संविधान कई प्रकार से प्रशंसनीय था, परन्तु वायेना की परिषद् तथा अन्य उदार विचार के लोगों ने उसको अस्वीकार किया। १५ मई को राजधानी में पुनः संघर्ष और विद्रोह हुआ। सम्राट को बढ़ते हुये तूफ़ान के सम्मुख पुनः नत मस्तक होना पड़ा तथा संविधान में लोकतन्त्र के आधार पर परिवर्तन करने पड़े। अबकी बार प्रत्येक वयस्क पुरुष को मत दान का अधिकार दिया गया तथा विधान-मण्डल में दो सभाओं के स्थान में केवल एक सभा रक्खी गई। शाही दरबार से ये समस्त सुधार जिनका उल्लेख यहाँ किया गया है बलपूर्वक प्राप्त किये गये थे। सम्राट तथा उसके दरबारियों व कुलीनों को अपने प्राणों का भय था। अतएव वे वायेना त्याग कर इन्सब्रूक (Innsbruck) चले गये। इस प्रकार वहाँ प्रतिक्रियावादियों का सुदृढ़ केन्द्र बन गया।

पारस्परिक वैमनस्य

आस्ट्रिया में सन् १८४८ ई० की क्रान्ति को बुरी तरह से समाप्त कर दिया गया। उक्त वर्ष के प्रथम छः मास में उसकी उन्नति हुई थी, उसके अन्तिम छः मास में उसका अन्त कर दिया गया। यही परिणाम मध्य यूरोप के अन्य क्रान्तिकारी आन्दोलनों का भी हुआ। इसका प्रधान कारण पारस्परिक वैमनस्य था। जैसा कि हम वर्णन कर चुके हैं, आस्ट्रिया हंगरी में अगणित जातियाँ (Races) निवास करती थीं।

जर्मन, ज़ेच, पोल, मौदियोर्ज़ (Magyars), रूमानियन तथा इटैलियन उनके प्रधान उदाहरण हैं। अतएव आवश्यक रूप से वहाँ राजनैतिक समस्यायें जातीय समस्याओं द्वारा बुरी तरह उलझी हुई थीं। अस्ट्रिया की तुलना में हंग्री में यह दोष अधिक विद्यमान था। अस्ट्रिया हंग्री के निवासियों की राजनैतिक माँगें भिन्न प्रकार की थीं। साधारण रूप से उनकी इच्छा थी कि सम्राट के अधिकार कम कर दिये जायँ तथा जनता के अधिकारों में प्रकट रूप से वृद्धि कर दी जाय। किन्तु वे फ्रांसीसियों के विरुद्ध इस बात के इच्छुक न थे कि उनके देश में राजतन्त्र हटा कर गण-राज्य स्थापित कर दिया जाय। उनकी जातीय मांगें दो प्रकार की थीं। कुछ जातियाँ इस बात की इच्छुक थीं कि केन्द्रीय शासन के अधीन रह कर अपना शासन स्वयं करें। इसका सब से प्रकट उदाहरण हंग्री की मौदियोर्ज़ जाति का है। कुछ जातियाँ, जो साम्राज्य की सीमा पर निवास करती थीं, पड़ोस के स्वजातियों से मिल कर अन्य शासनों के अधीन रहने की इच्छा रखती थीं। इसका प्रमुख उदाहरण जर्मन जाति का है, जो अधिकतर वीयेना के पश्चिम में निवास करती थी। सम्राट का लाभ इसमें था कि केन्द्रीय शासन के हाथ में अधिक से अधिक राजनैतिक अधिकार हों तथा किसी भी दशा में उसके विस्तृत साम्राज्य का कोई भाग उससे पृथक् न हो। अतएव वह दोनों बातों को महत्व देता था तथा अपने वंश की प्राचीन सत्ता तथा गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिये महान् से महान् त्याग करने को तत्पर था। यदि हम राजनैतिक तथा जातीय वैमनस्य की इस रूपरेखा पर दृष्टि रक्खें तो हम अस्ट्रिया और हंग्री की क्रांतियों की शोकप्रद समाप्ति को भली भाँति समझ सकते हैं।

अस्ट्रियन क्रांति का प्रवाह शीघ्र ही पारस्परिक विद्वेष के कारण समाप्त हो गया। वहां के जर्मन निवासी चाहते थे कि किसी प्रकार वे तथा कम से कम देश का वह भाग जिसमें वे निवास करते थे जर्मनी में सम्मिलित कर दिये जायँ। वे इस बात के अभिलाषी भी थे कि अस्ट्रिया के प्रतिनिधि जर्मनी की राष्ट्रीय प्रसभा (German Convention) में जिसकी बैठक सम्पूर्ण जर्मन जाति को सम्मिलित करने के उद्देश्य से फ्रैंकफ़ोर्ट नगर में, हो रही थी, सम्मिलित हों।

बोहीमिया

यह बोहीमिया के ज़ेच जाति के लोगों को किसी भी शर्त पर स्वीकार न था। वे जानते थे कि यदि समस्त जर्मन जाति सम्मिलित कर दी जायेगी तो उनके स्वायत्त शासन (Administrative autonomy) प्राप्त करने के स्वप्न ठंडे हो जायगे, क्योंकि उनके देश में जर्मनों की संख्या अधिक थी। अतएव उन्होंने जर्मनी में सम्मिलित होने से साफ़ इन्कार कर दिया। फ्रैंकफ़ोर्ट की सभा के मुकाबिले में बोहीमिया की राजधानी प्रेग

में, जून सन् १८४८ ई० में, समस्त स्लैव जातियों का जिनमें ज़ैच भी सम्मिलित थे, एक महान् सम्मेलन (Pan-Slav Congress) किया गया। कुछ लोग कहने लगे कि इस मामले में अवश्य रूस का हाथ दिखलाई पड़ता है। उधर हंगरी के मॉदियॉर्ज़ इस बात के प्रयत्नशील थे कि वे भी अपने लिये स्वायत्त शासन का अधिकार प्राप्त करें। इन साम्प्रदायिक विद्वेषों को देखकर सम्राट बहुत प्रसन्न हुआ। उसे अपने साम्राज्य की क्रांतियों को समाप्त करने का एक मार्ग ज्ञात हो गया। उसने कूटनीति से काम लिया। उसने जर्मनों को प्रोत्साहन न देकर बोहीमिया की ज़ैच जाति के स्वायत्त शासन प्राप्त करने में उपेक्षा की। परन्तु वीयेना के देशभक्त बोहीमिया के स्वायत्त शासन के पूर्व से विरोधी थे। बोहीमिया के देशभक्तों ने एक बड़ी भूल यह की कि उन्होंने भी अपनी राजधानी में वीयेना का अनुकरण करके समस्त पदों और अधिकारों को अपने हाथ में लेने का प्रयत्न किया। इस सम्बन्ध में वहाँ संघर्ष और विद्रोह हुये। प्रतिक्रियावादियों को सुन्दर अवसर मिला। राजकीय सेना के सेनापति विंडिशग्रेट्स (Windischgratz) ने प्रेग पर बम वर्षा की तथा क्रांतिकारियों पर शीघ्र ही प्रभुत्व प्राप्त कर लिया (जून सन् १८४८ ई०)। अस्ट्रिया हंगरी में प्रतिक्रियावादियों की यह पहली विजय थी। इसके बाद बोहीमिया की क्रांति का बिल्कुल अन्त हो गया। इसका अन्य देशों के राष्ट्रीय आन्दोलनों पर भी बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। इससे इस बात का प्रमाण भी मिला कि शाही सेना के लिए, गलियों में युद्ध करने वाले देशभक्तों पर विजय प्राप्त करना कठिन नहीं है। इस से पेरिस, बर्लिन तथा वीयेना की क्रांतियों का वह चमत्कार नष्ट हो गया जिसने यूरोप के बादशाहों और मन्त्रियों को भयभीत कर दिया था।

अस्ट्रिया की क्रांति का बुरा परिणाम

इसके पश्चात् अस्ट्रिया की क्रांति भी अधिक समय तक न चल सकी। वीयेना के देशभक्तों को अपने विधान-मण्डल से अधिक आशा थी। परन्तु जब उन्होंने यह देखा कि स्लैव सदस्य जो बहुमत में थे सम्राट के पक्षपातियों से मिल गये हैं तो उन्हें बड़ा दुख हुआ। उन्हें यह ज्ञात करके भी दुःख हुआ कि अस्ट्रिया का युद्ध मन्त्री लाटूर (Latour) हंगरी की क्रांति को समाप्त करने के लिये राजधानी से सेना भेजने को तत्पर है। उन्होंने उसके मार्ग में प्रत्येक प्रकार से कठिनाई उपस्थित करने का प्रयत्न किया। अन्त में उन्होंने विद्रोह कर दिया और लाटूर को मौत के घाट उतार दिया। यह देखकर सम्राट बहुत भयभीत हुआ। उसने अस्ट्रिया की क्रांति को सैनिक शक्ति द्वारा समाप्त करने का निश्चय किया। विंडिशग्रेट्स ने, जो बोहीमिया की क्रांति को समाप्त करने के
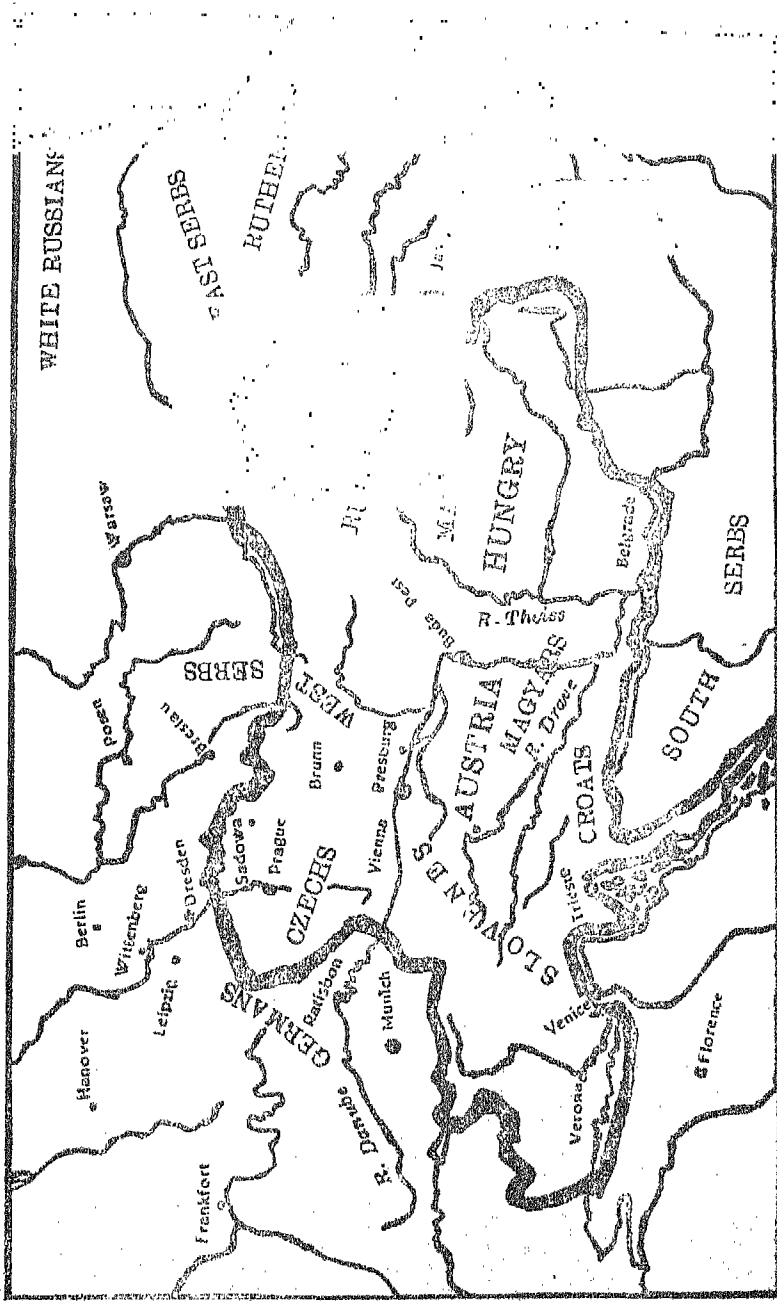
आस्ट्रिया और हंग्री की जातियां

कारण पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था, सम्राट के संकल्प को कार्य रूप में परिणित किया। उसने अपनी सेना की सहायता से वीयेना के चारों ओर घेरा डाल दिया तथा लोकतंत्रवादियों के भरसक प्रयत्न करने के अतिरिक्त भी ३१ अक्टूबर सन १८४८ ई० को नगर पर अधिकार कर लिया। उनको हंग्री से कुमक प्राप्त करने की पूरी आशा थी, परन्तु कुमक उस समय आई जब वह व्यर्थ हो गई थी। उनको हटाकर आस्ट्रिया के प्रतिक्रियावादियों ने मन्त्रिमण्डल स्थापित किया तथा सेनानायक श्वार्ट-सेनबर्ग (Schwartzenberg) के रूप में दूसरे मैटर्निक को उसका अध्यक्ष बनाया। श्वार्टसेनबर्ग ने फर्डिनेन्ड प्रथम (१८३५-१८४८) को, जो निर्बल सिद्ध हुआ था, शासन से पृथक होने पर विवश किया तथा उसके स्थान में उसके नवयुवक भतीजे फ्रांसिस जोज़ेफ (१८४८-१९१६) को सिंहासनारूढ़ किया। जो उदार प्रणाली का संविधान विधान-मण्डल (Reichstag) की ओर से निर्मित किया गया था उसे स्थगित कर दिया गया। उसके स्थान पर ४ मार्च सन् १८४९ ई० को सम्राट ने एक नवीन संविधान स्वीकृत किया, जिसके द्वारा हैप्सबर्ग वंश के साम्राज्य के एक और अखण्ड होने की घोषणा की गई। इसके कुछ मास पश्चात् जब हंग्री की क्रांति समाप्त कर दी गई तथा प्रशा के लोकतंत्रवादियों को भी असफलता प्राप्त हुई तो आस्ट्रिया में राजतंत्र की स्थिति प्रकट रूप से दृढ़ हो गई। अतएव ३१ दिसम्बर सन् १८५१ ई० को सम्राट ने सन् १८४९ ई० के संविधान को भी रद्द कर दिया तथा वह पुराने ढंग पर, निरंकुश शासन प्रणाली के अनुसार शासन करने लगा। इसके पश्चात् आस्ट्रिया के शासन ने संविधान के प्रश्न को तो भुला दिया, किन्तु वहां आर्थिक तथा व्यवस्था सम्बन्धी सुधारों का क्रम बराबर चलता रहा। सन् १८४८ ई० की क्रांति का एक सुन्दर परिणाम यह भी हुआ कि आस्ट्रिया में दास-कृषकों की प्रथा (Serfdom) का बिल्कुल अन्त कर दिया गया। इसके पश्चात् वहां किसी शासक ने भी इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि इस उत्तम सुधार की समाप्ति करके बेगार की प्रथा आदि को पुनर्जीवित करे।

हंग्री

आस्ट्रिया की भांति हंग्री में भी संविधानीय समस्या राष्ट्रीय समस्या से बुरी तरह उलझी हुई थी। प्रथम का उद्देश्य यह था कि प्रत्येक मनुष्य को स्वतंत्रता प्राप्त हो। द्वितीय का उद्देश्य विभिन्न जातियों (Races) को स्वतन्त्रता दिलाना था। वहां दोनों प्रकार के आन्दोलन साथ साथ चल रहे थे। यही स्थिति जर्मनी और इटैली में भी उपस्थित हुई। इसका वर्णन हम अगले पृष्ठों में

करेंगे। आस्ट्रिया में राष्ट्रीय आधार पर कोई बड़ा आन्दोलन नहीं हुआ था। इसका कारण यह था कि उसके अधिकतर निवासी जर्मन जाति के थे और उनको शासन से राष्ट्रीय आधार पर किसी प्रकार की शिकायत न थी, यद्यपि वे इस बात के अभिलाषी अवश्य थे कि आस्ट्रिया हंग्री के समस्त जर्मन जाति के लोग जर्मनी के अधीन हो जांय। हंग्री की संसद (Diet) में केवल कुलीनों का प्रतिनिधित्व था और वे करों से पूर्णतः मुक्त थे। यह संविधानीय उन्नति के मार्ग में एक बहुत बड़ी रुकावट थी। उनसे यह आशा करना, कि वे अपने जागीरदारी के अधिकारों को सहसा त्याग देंगे, बड़ी भूल थी। यह तभी सम्भव हो सकता था जब वे भी उत्साह व बलिदानों के प्रवाह में उनका त्याग करने को उसी प्रकार तैयार हो जाते जिस प्रकार फ्रांस के कुलीनों ने ४ अगस्त सन् १७८९ ई० की रात्रि को अपने विशेष अधिकारों व जागीरों को त्यागने की घोषणा की थी। अतएव आवश्यक रूप से हंग्री के मौदियोर्ज़ (Magyars) ने राष्ट्रीय प्रश्न के साथ साथ संविधानीय प्रश्न को हाथ में लिया। दूसरे शब्दों में उन्होंने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के साथ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया, परन्तु वे अन्य जातियों के लोगों को राजनैतिक अधिकारों से वंचित रखना चाहते थे। फल यह हुआ कि उनके राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ साथ संविधानीय आन्दोलन का भी अत्यन्त बुरा परिणाम हुआ। इस प्रकार आस्ट्रिया की भांति हंग्री में भी सन् १८४८ ई० की क्रांति सफल नहीं हुई।

मौदियोर्ज़ के राष्ट्रीय उद्गार

हंग्री के निवासी कई शताब्दियों तक स्वायत्त शासन और संविधानीय अधिकारों का आनन्द ले चुके थे। जोजेफ़ द्वितीय (१७८०-९२) ने इन दोनों को समाप्त करने का प्रयत्न किया था, परन्तु उसके उत्तराधिकारी लियोपोल्ड (१७९०-१७९२) को सन् १७९१ ई० में इन अधिकारों को लौटा देना पड़ा था। इसके पश्चात् यूरोप में क्रांति सम्बन्धी तथा नैपोलियन के युद्ध हुये, जिसके कारण इंग्लैंड की भांति हंग्री में भी संविधानीय उन्नति को एक साथ रोक देना पड़ा था। वहां पूर्ववर्ती अवस्था पुनः आ गई और तेरह वर्ष (१८१२-१८२५) तक हंग्री की संसद अथवा डाइट का एक भी अधिवेशन नहीं हुआ। किन्तु ज़िलों (Counties) की परिषद बराबर काम करती रहीं तथा उन्होंने स्वतन्त्रता व स्वायत्त शासन के अधिकारों को अक्षुण्ण रक्खा। इनके ज़ोर देने पर सन् १८२५ ई० में शासन ने बाध्य होकर हंग्री की संसद को आमंत्रित किया। इस अधिवेशन में यह आवाज़ उठाई गई कि मौदियोर भाषा को हंग्री की सरकारी भाषा घोषित किया जाय। यह एक ऐसा प्रश्न था जिसका कई वर्ष

तक हंग्री की राजनीति पर प्रभाव रहा तथा जिसके कारण उसकी भूमि रक्तरंजित हुई। मौदियोर भाषा की तीव्रगति से उन्नति हुई तथा उसके साहित्य में वह समय आया जिसे हम उसका स्वर्ण-काल कह सकते हैं। सन् १८४० ई० में उसे सरकारी भाषा निश्चित किया गया तथा वह सब प्रकार के पादरियों के लिये आवश्यक कर दी गई। चार साल के बाद वह आवश्यक रूप से नित्य प्रति के काम काज तथा संसद के वादविवाद की भाषा नियत कर दी गई। उसका चलन स्कूलों में भी बढ़ गया तथा कुछ छात्रों के लिये वह अनिवार्य कर दी गई।

बीस वर्ष तक मौदियोर्ज़ (Magyars) के राष्ट्रीय उद्‌गारों तथा उनकी भाषा की बराबर उन्नति होती रही। किन्तु उनकी संविधानीय शासन की मांग उस समय तक पूरी न हो सकी थी। सन् १८४४ ई० तथा सन् १८४७ ई० की संसदों में उसके लिये भी आवाज़ उठाई गई। इसके पश्चात् जब हंग्री में पेरिस और वीयेना की क्रांतियों के समाचार पहुँचे तो मौदियोर्ज़ के राजनैतिक अन्दोलन में भी काफ़ी ज़ोर आ गया। इस क्रम में हम कौशूत (Kossuth) को विस्मृत नहीं कर सकते। कौशूत इस काल में हंग्री के राष्ट्रीय व राजनैतिक आन्दोलनों का सबसे बड़ा नेता था। वह एक योग्य वक्ता तथा सम्पादक भी था। पहले वह सन् १८३२ ई० से सन् १८३६ ई० तक संसद का सदस्य रहा। इसके पश्चात् आस्ट्रिया के शासन ने उसे बन्दीगृह में डाल दिया। सन् १८४७ ई० में वह द्वितीय बार संसद का सदस्य निर्वाचित किया गया। सन् १८४८ ई० में वह हंग्री के शासन का अर्थ सचिव नियुक्त हुआ। इसके साथ साथ वह प्रत्येक रूप से शासन का अध्यक्ष भी रहा। सन् १८४९ ई० में संसद ने हंग्री की स्वाधीनता की घोषणा की और कौशूत को राजपाल के पद पर आसीन किया। परन्तु इसके बाद ही त्यागपत्र देकर उसे अपना शेष जीवन संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, लन्दन और तूरिन में व्यतीत करना पड़ा। अन्तिम नगर में उसका देहावसान हुआ (सन् १८९४ ई०)।

कौशूत

कौशूत संसद में उग्रवादियों का नेता था। वहां उसके दल का बड़ा ज़ोर था। वहाँ सन् १८४८ ई० में केवल मार्च के महीने में उसके नेतृत्व में इतने अधिक और कायापलट सुधार स्वीकृत किये गये कि उनका वर्णन पढ़कर बड़ा ही आश्चर्य होता है। उनके कारण हंग्री की सामाजिक तथा राजनैतिक दशा पूर्णतया परिवर्तित हो गई। शासन सूत्र एक उत्तरदायी मंत्रिमण्डल के अधीन किया गया, जिसने क्रांतिकारी सुधार करके सबों को आश्चर्य में डाल

मार्च के कानून सन् १८४८

दिया। दास-कृषकों की प्रथा (Serfdom), कृषकों के कर और जागीरदारों के न्यायालय आदि स्थगित कर दिये गये; कुलीनों पर कर लगाये गये; मत दान का अधिकार केवल कुलीनों तक सीमित न रहा वरन् हंग्री के प्रत्येक निवासी को जो तीस पौंड की सम्पत्ति रखता था, उक्त अधिकार प्रदान किया गया। संसद की अवधि ३ वर्ष निश्चित की गई तथा उसके लिये प्रत्येक वर्ष अधिवेशन करना आवश्यक कर दिया गया। उसके निर्वाचन सीधे-सीधे किये जाने लगे। इन सुधारों के अतिरिक्त कुछ अन्य आवश्यक सुधार भी किये गये। उदाहरणार्थ, प्रेस की स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय रक्षा दल तथा राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना इत्यादि। इन सुधारों का स्वरूप राजनैतिक अथवा सामाजिक था। इनके अतिरिक्त कुछ सुधार राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के अनुसार भी किये गये, जैसे संसद ने उन शासन विभागों को समाप्त कर दिया जिनके द्वारा केन्द्रीय शासन हंग्री पर प्रभुत्व रखता था। उनके स्थान पर एक मंत्रिमण्डल स्थापित किया गया जिसके सब सदस्य हंगरी के निवासी थे। इसके हाथ में गृह शासन के अतिरिक्त वैदेशिक मामले, युद्ध, अर्थ तथा सेना आदि का प्रबन्ध भी था। ट्रांसिलवेनिया का देश हंग्री में सम्मिलित कर लिया गया तथा वहां मौदियोर्ज़ की सेना नियुक्त कर दी गई। वायेना का शासन यह सब तमाशा दूर ही से देखता रहा। उसने हंग्री की समस्त मांगों को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार उक्त देश आस्ट्रिया की अधीनता से मुक्त हो गया, किन्तु दोनों देश हैप्सबर्ग वंश की अधीनता स्वीकार करते रहे।

मौदियोर भाषा और संस्कृति का बलपूर्वक प्रचार

यदि मौदियोर्ज़ दूरदर्शिता से काम लेते तो हंग्री की क्रान्ति का अन्त दूसरे ही प्रकार का होता। परन्तु दुर्भाग्य से जिन राष्ट्रीय अधिकारों को वे स्वयं प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे उनसे उन्होंने अन्य जातियों (Races) को वंचित रखने का प्रयत्न किया। हंग्री की सात जातियों में से वे केवल एक थे तथा उनकी जनसंख्या भी समस्त देश की जनसंख्या की आधी थी। उन्होंने बलपूर्वक अपनी भाषा को अन्य भाषाओं के स्थान में प्रचलित करने और समस्त जातीय विभिन्नता को दूर करके केवल अपनी जाति को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया। इस नीति के कारण उन्नीसवीं शताब्दी में पूर्वीय यूरोप में बड़ा असंतोष रहा। अन्य जातियों में भी जागृति थी। वे मौदियोर्ज़ के अत्याचार को कैसे सहन कर सकती थीं। उत्तर के स्लैव कहने लगे, "मौदियोर्ज़ की अधीनता स्वीकार करने से तो यही अच्छा है कि हम रूसी कशा की अधीनता स्वीकार करलें। द्वितीय केवल हमारे शरीरों को दास बना सकता था किन्तु प्रथम से हमारे अध्यात्मिक नाश और मृत्यु की आशंका है।" उनके प्रसिद्ध कवि कोल्लार

(Kollar) ने लिखा था,— "बिखरे हुये स्लेव जाति के लोगों, हमको सम्मिलित होकर एक हो जाना है और केवल टुकड़ों के रूप में नहीं रहना है।" वास्तव में स्लेव इस बात के इच्छुक थे कि वे अपनी भाषा, अपने साहित्य तथा अपनी संस्कृति की पृथक रूप से उन्नति करते रहें। परन्तु मौदियार जाति के लोगों को यह बात स्वीकार न थी। वे जातीय जोश में अंधे हो रहे थे। अन्य जातियों के साथ सहनशीलता और न्याय से काम लेने के स्थान में उन्होंने अपने आन्दोलन को रक्त से दूषित किया। दूसरी दिशाओं में भी मौदियार्जों की नीति के विरुद्ध विरोध बढ़ रहा था। दक्षिण के स्लेव अर्थात् क्रोट (Croats) और सर्ब (Serbs) ने भी उनका सामना पूरे प्रयत्न से किया। उत्तरपूर्व की ओर रूमानियन और सेक्सन जाति के लोग उनके शत्रु थे। वे इसके पूर्ण विरोधी थे कि उनका देश ट्रान्सिलवेनिया हंग्री में सम्मिलित किया जाय। इस प्रकार हंग्री की स्थिति बहुत ही बुरी थी और मौदियार जाति का भाग्य बिगड़ता हुआ दिखलाई देता था। कौशूत प्रथम कोटि का देशभक्त तो अवश्य था, परन्तु राजनीतिज्ञ की दृष्टि से उसका स्थान ऊँचा नहीं था। अन्य जातियों की मांगों को पूरा करने अथवा कम से कम उनको समझने का प्रयत्न करने के स्थान में उसने सर्व जाति के प्रतिनिधियों से स्पष्ट कह दिया, "इसके पूर्व कि स्लेव जाति की भाषा को मौदियार जाति की भाषा के समान प्रतिष्ठित किये जाने का प्रश्न पैदा हो हमको आवश्यक रूप से खड्ग से काम लेना होगा।"

क्रोट जाति का प्रसिद्ध नेता एक कुलीन का पुत्र जेलाचिच (Jellachich) था, जो क्रोशिया का वाइसराय नियुक्त कर दिया गया था। उसे क्रोशिया के राष्ट्रीय आन्दोलन से पूर्ण सहानुभूति थी। उसके नेतृत्व में स्लेव जाति के लोगों ने अपने लिये हैप्सबर्ग वंश के अधीन पृथक राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया।

गृहयुद्ध

इस प्रकार हंग्री का देश दो विभिन्न दलों में विभक्त हो गया। इस प्रकार मौदियार जाति की क्रान्ति का निर्णय भी शीघ्र ही हो गया। क्रोशिया की संसद ने हंग्री से सम्बन्ध विच्छेद करने का निर्णय कर लिया। पूर्व की दिशा में सर्ब जाति ने एक अस्थायी शासन स्थापित कर लिया और वह क्रोट जाति से मिलकर युद्ध करने को तैयार हुई। उत्तरी हंग्री में भी विद्रोह की ज्वाला भड़की, किन्तु कौशूत की कठोरता के कारण वह अधिक ज़ोर न पकड़ सकी। इस तरह कुछ समय तक हंग्री में गृह-युद्ध चलता रहा एवं मौदियार शासन को उसके कारण बड़ी कठिनाई रही।

मौदियार जाति को आस्ट्रिया के विरुद्ध भी युद्ध करना पड़ा। आस्ट्रिया ने दक्षिण की स्लेव जाति की ओर से शस्त्र उठाये। ५ जनवरी सन् १८४९ ई० को

उसके सेनापति विण्डिशग्रेट्स ने, जो अपनी वीरता का प्रमाण प्रेग और वीयेना में दे चुका था, हंग्री की राजधानी बूडापेस्ट

क्रान्ति का अन्त (Budapest) पर अधिकार कर लिया। इसके कुछ सप्ताहों के पश्चात् मौदियोर्ज़ की पूर्ण पराजय हुई। तत्पश्चात् न मालूम किस प्रकार उन में नवीन स्फूर्ति तथा नवशक्ति का संचार हुआ। अतएव उन्होंने ऐसी वीरता तथा दृढ़ता से युद्ध किया कि सब लोग आश्चर्य में पड़ गये। यहाँ तक कि उनके सेनापति गर्गी (Gorgei) ने अस्ट्रिया की सेना को हंग्री के बाहर निकाल दिया। पूर्व और दक्षिण में भी रणभेरी ने उन्हीं की विजय सुनाई थी। पूर्व में अस्ट्रिया के सैनिक तथा रूसी जो उनकी सहायता को आये थे, ट्रांसिल्वेनिया से निकाल दिये गये थे। दक्षिण में सर्ब जाति पर अधिकार प्राप्त कर लिया गया था। यह एक ऐसा अवसर था कि यदि कौशूत बुद्धिमानी तथा दूरदर्शिता से काम लेता तो सन् १८४८ ई० की क्रांति का दुर्भाग्यपूर्ण अन्त न होता। परन्तु उसने १४ अप्रैल सन् १८४९ ई० को हर्ष से मदांध होकर अमेरिका तथा फ्रांस के ढंग पर स्वाधीनता की घोषणा की। इसके द्वारा उसने हैप्सबर्ग शासन के अन्त तथा गण-राज्य की स्थापना का समाचार सब स्थानों में पहुँचाया। यह देख कर पूर्व में ज़ार निकोलस प्रथम ने, पश्चिम में अस्ट्रिया की सेना ने और दक्षिण की दिशा में क्रोट जाति ने हंग्री पर शक्तिशाली आक्रमण किये। जब कौशूत से कुछ करते न बना तो वह शासन के उत्तरदायित्व से उन्मुक्त होकर तुर्की की ओर चला गया। इसके दो दिन बाद हंग्री की सेना ने रूसी सेना के सम्मुख हथियार डाल दिये। इस प्रकार उसकी क्रान्ति का अन्त हुआ।

अस्ट्रिया के शासन ने हंग्री के निवासियों से अत्यन्त निर्दयता से बदला लिया। उनमें से अगणित कारावास में डाल दिये गये अथवा वध कर दिये गये। हंग्री के राजनैतिक आन्दोलन का पूर्ण अन्त हो गया और बोहीमिया की भांति उसे भी अस्ट्रिया का प्रान्त बना लिया गया। उसके स्वायत्त शासन तथा संविधान का भी अन्त कर दिया गया। स्थानीय स्वायत्त शासन भी समाप्त कर दिये गये तथा सरकारी पदों पर जर्मन तथा क्रोट नियुक्त कर दिये गये। मौदियोर भाषा के स्थान में जर्मन भाषा का प्रचार किया गया। इस प्रकार हंग्री की राजनैतिक क्रान्ति पूर्ण रूप से समाप्त कर दी गई, परन्तु उसके द्वारा जो सामाजिक सुधार किये गये थे वे ज्यों के त्यों अक्षुण्ण रक्खे गये। यह सब से अधिक लाभप्रद तथा संतोष का विषय था।

जर्मनी

फ्रांस, इटैली तथा अस्ट्रिया आदि की भांति सन् १८४८ ई० का तूफ़ान जर्मनी में भी उठा। परन्तु वहां भी उसका वही परिणाम हुआ जो उपरोक्त देशों में हुआ था। प्रशा, बवेरिया, सैक्सनी, हनोवर, बादन तथा श्लाज़विग-होल्स्टीन (Schleswig-Holstein) के निवासियों ने अपने शासनों के विरुद्ध विद्रोह किये।

क्रांति का आरम्भ

राइन नदी से डैन्यूब नदी तक सम्पूर्ण देश में सर्वसाधारण का उत्साह व साहस प्रकट रूप से बढ़ गया तथा शासकों के सिंहासन हिल गये। शासक अपने प्राणों की खैर मनाने लगे एवं इंग्लैंड के बादशाह चार्ल्ज़ प्रथम तथा फ्रांस के बादशाह सोलहवें लूई की हत्याओं के दृश्य उनकी आंखों के सम्मुख नाचने लगे। कई शासकों ने बिना संकोच के अपनी प्रजा को संविधानीय सुधार स्वीकृत कर दिये। बवेरिया के बादशाह ने सिंहासन त्याग दिया। सैक्सनी और हनोवर के बादशाहों ने सुधार स्वीकृत कर दिये। प्रशा के बादशाह फ्रैड्रिक विलियम चतुर्थ से जनता के प्रतिनिधि कई बार भेंट करने आये। बर्लिन में १८ मार्च को राजप्रासाद के सामने जन समूह तथा पुलिस के बीच संघर्ष हुआ और नगर की गलियों में भी कई स्थानों में झगड़े हुये। जिन भागों में मज़दूर वर्ग के लोग निवास करते थे वहां पेरिस के ढंग पर रक्षा के लिये मोर्चे बना लिये गये। फ्रैड्रिक विलियम ने रक्तपात बचाने के लिये राष्ट्रीय सभा को आमन्त्रित करने का वचन दिया। इसके अतिरिक्त वह होली रोमन साम्राज्य के चिह्न धारण करके जर्मनी के मार्गों में जलूस के साथ घूमा। तत्पश्चात् उसने यह घोषणा प्रकाशित की कि उसने जर्मनी के राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व स्वीकार कर लिया है। रूस का ज़ार उक्त अभिनय का समाचार पाकर चकित था, परन्तु फ्रैड्रिक विलियम ने उसकी चिन्ता न की। उसने उसे 'जर्मनी की गौरवपूर्ण क्रांति' की प्रशंसा करते हुये केवल एक पत्र लिखा। इसके अतिरिक्त उसने किसी प्रकार से ज़ार की ओर ध्यान नहीं दिया।

जर्मनी की राष्ट्रीय सभा की बैठक १३ मई सन् १८४८ ई० को फ्रैंकफोर्ट नगर में प्रारम्भ हुई। यह मध्य यूरोप के जर्मन जाति के लोगों की प्रथम राष्ट्रीय संसद थी। इसमें जर्मन संघ के समस्त राज्यों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुये। ये प्रतिनिधि वहां के वयस्क पुरुषों की ओर से निर्वाचित होकर आये थे। उसमें अस्ट्रिया के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुये थे। सभा का मुख्य कार्य जर्मनी के लिये संविधान का निर्माण करना था। इसमें

फ्रैंकफोर्ट की संसद, (१८४८-१८४९)

वह सफलता प्राप्त न कर सकी। उसके सभासदों को इतनी अधिक उलझी हुई समस्याओं की ओर ध्यान देना पड़ा कि वास्तविक उद्देश्य, जिसके लिये वे आये थे, उनकी दृष्टि से दूर हो गया। सदस्यों में विधान विशारदों तथा प्रोफ़ेसरों की संख्या अधिक थी। उन्होंने बहुमूल्य समय अपने अपने प्रस्तावों को प्रेषित करने तथा 'मानव के मूल अधिकारों' और जर्मनी की सीमाओं को निश्चित करने में व्यय कर दिया। लगभग एक वर्ष के पश्चात् सभासद किसी निर्णय पर पहुंचे, किन्तु उस समय तक राष्ट्रीय उत्साह ठंडा पड़ गया था और सब स्थानों में प्रतिक्रियावादियों की विजय प्रारम्भ हो गई थी। अस्ट्रिया के शासन ने वीयैना की क्रांति को समाप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली थी। उसके प्रभाव से फ्रेड्रिक विलियम के विचार भी परिवर्तित हो चुके थे। अतएव जब राष्ट्र-सभा ने उससे नव जर्मन साम्राज्य का बादशाह होने को कहा तो उसने स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया। इसके अतिरिक्त उसने नवीन संविधान को भी अस्वीकार कर दिया (अप्रैल सन् १८४९)। इस प्रकार राष्ट्रीयता के समर्थकों की अन्तिम आशा भी समाप्त हो गई। जर्मनी के एकीकरण का प्रश्न कुछ समय के लिये पीछे हट गया। इसके पश्चात् जब जर्मनी में उसके बिखरे हुये भागों को सम्मिलित करके संयुक्त साम्राज्य की स्थापना की गई तो ऐसा प्रशा की युद्ध शक्ति के द्वारा सम्भव हो सका, न कि केवल जर्मनों के राष्ट्रीय उत्साह के कारण।

फ्रेड्रिक विलियम चतुर्थ के निर्णय ने राष्ट्रसभा के एक वर्ष के काम को व्यर्थ कर दिया था। किन्तु उसने जर्मनी के एकीकरण के प्रश्न को पूर्णतः विस्मृत न किया था। अबकी बार उसने अपनी ओर से एक योजना प्रस्तुत की। उसने हनोवर, सैक्सनी, वूर्टम्बर्ग और बवेरिया को इस बात के लिये राज़ी कर लिया कि प्रशा और जर्मनी के छोटे राज्यों को सम्मिलित करके एक संघ (Union) बनायें। जर्मन राज्यों की संसद की बैठक भी ऐरफ़ुर्ट (Erfurt) नगर में की गई। परन्तु अस्ट्रिया के विरोध के कारण यह योजना इससे आगे न बढ़ सकी। अस्ट्रिया के साथ रूस की शक्तियां भी काम कर रहीं थीं। फल यह हुआ कि यूनियन के सब देश पृथक हो गये और प्रशा को भी शांत हो जाना पड़ा। अस्ट्रिया ने इस बात को महत्व दिया कि जर्मनी का प्राचीन डाइट जो हटा दिया गया था पुनः आमंत्रित किया जाय। इस सम्बन्ध में दोनों देशों में पर्याप्त विरोध रहा। अन्त में सन् १८५० ई० में, प्रशा के बादशाह को विवश होकर ओल्मूट्स (Olmutz) की सभा में अस्ट्रिया की सैनिक शक्ति के आगे नतमस्तक होना पड़ा। उसने उसकी सब शर्तें स्वीकार कर लीं। यह न

प्राचीन डाइट का लौटना

केवल प्रशा वरन् राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के लिये घोर लज्जा तथा अपमान का विषय था। जर्मनी में प्राचीन संघानीय संविधान (Federal Constitution), जो सन् १८१५ ई० में स्थापित किया गया था, पुन: चालू हो गया। अत: वहां का पहले का डाइट पुन: जीवित हो गया। इसके अतिरिक्त मैटर्निक की शासन प्रणाली के अन्य लक्षण भी फिर से स्थापित कर दिये गये। परन्तु जर्मनी पर आस्ट्रिया का प्रभुत्व अधिक काल तक स्थापित न रहा। कुछ ही वर्षों में क्रीमिया का युद्ध (१८५३-१८५६) आरम्भ हुआ। इसमें आस्ट्रिया ने किसी पक्ष में भी भाग नहीं लिया। अतएव उसकी प्रतिष्ठा तथा ख्याति बहुत कम हो गई। वह रूस और पाश्चात्य शक्तियों की दृष्टि में हीन हो गया। इससे जर्मनी तथा इटैली दोनों को उसके प्रभुत्व से मुक्त होने में सहायता मिली।

इटैली

इटैली में सन् १८४८ ई० की क्रान्ति की दिशा में प्रथम क़दम पोप पायस नवम् (Pope Pious IX) ने उठाया था, परन्तु इस से बहुत पूर्व वहां राष्ट्रीयता और एकीकरण के भाव जागृत हो चुके थे। विशेषकर वहाँ के लेखकों का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित हो चुका था। इन लेखकों में एक बालबो (Balbo) नाम का इतिहासकार था जिसने इतिहास द्वारा यह बतलाया था कि किस प्रकार इटैली की भूमि पर किसी समय असभ्य जातियों का अधिकार हो गया था, परन्तु वहाँ के निवासियों ने उनसे मुक्ति पाने की इच्छा और आशा को नहीं त्यागा था। जोबर्ट (Gioberti) ने अपनी विख्यात पुस्तक में इस बात को महत्व दिया था कि यह पोप का कर्तव्य है कि इटैली के समस्त राज्यों का पथप्रदर्शन करे। मात्सीनी (Mazzini) ने लोगों को लोकतन्त्र तथा राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाया था। उसके विचार इतने अधिक स्वतन्त्र थे कि सब लोग कहते थे कि वह शासन और समाज का तख्ता पलट कर ही दम लेगा। सारांश यह है कि इटैली में यथेष्ट जागृति थी। वहाँ के निवासी सन् १८३० की क्रान्ति में भी भाग ले चुके थे, किन्तु उसका कोई खास नतीजा नहीं हुआ था।

पोप पायस नवम् अपने पद पर सन् १८४६ ई० में सुशोभित हुआ था। वह एक साधारण ढंग का सद्भावनापूर्ण व्यक्ति था। वह इटैली से प्रेम करता था तथा आस्ट्रिया के साम्राज्य को घृणा की दृष्टि से देखता था। वह कहा करता था कि "मैं इटैली के पक्ष में हूं और इटैली ही मेरा देश है।" जोबर्ट से उसने यह सबक़ सीखा था कि उसे इटैली का नेतृत्व करना है। अपने पद पर आसीन होते ही उसने अपने राज्य में उदार पद्धति के सुधारों का एक ऐसा

पोप के सुधार

क्रम प्रारम्भ किया कि सब लोग आश्चर्य में पड़ गये तथा उसकी प्रशंसा के पुल बांधने लगे। "अत्यन्त सद्भावनापूर्ण विचार से उसने मोमबत्ती जलाने को एक सलाई प्रज्वलित की थी, परन्तु वह यह जानकर भयभीत हुआ कि वह एक बारूद-खाने में है।" सबसे प्रथम पोप ने देश से निर्वासित लोगों तथा राजनैतिक बंदियों के लिये क्षमा की घोषणा की। फिर उसने प्रेस के विरुद्ध जो प्रतिबन्ध लगाये गये थे उनको ढीला कर दिया। उसने एक कौंसिल आफ़ स्टेट (राज्य-परिषद) तथा एक मन्त्रि-परिषद भी नियुक्त कीं तथा यहूदियों को स्वतन्त्रता प्रदान की। इन सुधारों के कारण इटैली के निवासियों की आकांक्षायें बहुत बढ़ गयों और वहाँ कई राज्यों अर्थात् सिसली, नेपिल्ज़, मीलन, वेनिस तथा सेवाय में क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रारम्भ हुये। पोप व्यक्तिगत रूप से रूढ़िवादी था। मैटर्निक का कहना था कि "मैं सब कुछ पहले से समझ सकता था, परन्तु यह बात मेरे मस्तिष्क में नहीं आ सकती थी कि पोप भी उदार नीति का समर्थक हो सकता है।" जो मार्ग पोप पायस नवम् ने ग्रहण किया था उस पर वह कुछ काल तक चलता रहा। अन्य राज्यों में जो क्रान्तियाँ हो रहीं थीं उनसे वह भयभीत अवश्य हुआ, किन्तु उसने सुधारों का क्रम सन्चालित रक्खा। मार्च सन् १८४८ ई० में उसने अपने राज्य के लिये एक संविधान भी स्वीकार किया। किन्तु इन सुधारों से इटैली के उग्रवादी संतुष्ट नहीं हुये। इसके पश्चात् जब उत्तरी इटैली में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ हुआ तो पोप ने उसमें भाग लेना स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया। यह देखकर क्रान्तिकारियों में जो आतंकवादी थे उन्होंने उसके मुख्य मन्त्री रौस्सी (Rossi) को विधान-मण्डल को जाते समय वध कर दिया। अब तो रोम में बड़ी अशांति तथा बेकली फैली। पोप पायस की समझ में यह बात आ गई कि क्रान्ति के प्रबल प्रवाह में आगे बढ़ना संकट से खाली नहीं है। यह सोचकर कि कहीं उसे अधिक सुधारों को स्वीकार करने के लिये विवश न किया जाय, वह रोम छोड़ कर नेपिल्ज़ के राज्य में चला गया। इटैली के स्वाधीनता संग्राम पर उसके प्रभाव का अंत हो गया।

नेपिल्ज़ की क्राँति

पोप के संविधान स्वीकार करने के पूर्व नेपिल्ज़ के राज्य में क्रान्ति हो चुकी थी। नेपिल्ज़ और सिसली का बादशाह फ़र्डिनैंड बूरबन वंश से था। वह राजनैतिक आन्दोलनों और क्रान्तियों का पूर्ण विरोधी था। तथापि समय की गति के अनुसार उसे अपनी प्रजा के लिये संविधान स्वीकार करना पड़ा तथा अन्य सुधार भी करने पड़े। इसका मुख्य कारण यह था कि वह क्रांतिकारियों के कृत्यों को देखकर भयभीत हो गया था। फ़र्डिनैंड के व्यवहार को देखकर न केवल इटैली वरन् समस्त

यूरोप के निवासियों को उसी प्रकार आश्चर्य हुआ जिस प्रकार पोप पायस के व्यवहार को देखकर हुआ था। १२ जनवरी सन् १८४८ ई० को सिसली के प्रसिद्ध नगर पालरमो (Palermo) में एक भयंकर क्रांतिकारी आन्दोलन प्रारंभ हुआ, जिसमें कुलीन वर्ग के लोग भी सम्मिलित थे। यह आन्दोलन १५ दिन तक चलता रहा। राजकीय सेना, जो विद्रोह के दमन में तत्पर थी, क्रांतिकारियों का सामना न करके नगर त्याग कर चली गई। शासन की ओर ५०० सैनिक धराशायी अथवा घायल हुये। इन घटनाओं को देखकर फार्डिनेंड बहुत भयभीत हुआ। उसने तुरन्त राजनैतिक बंदियों को मुक्त कर दिया और इसके पश्चात् एक संविधान के लिये भी स्वीकृति दे दी। इसका प्रभाव इटैली के अन्य राज्यों पर भी पड़ा। अतएव वहाँ भी क्रांतिकारी आन्दोलन हुये। टस्कनी के ग्रांड ड्यूक ने उपरोक्त वर्ष के फ़र्वरी मास में नेपिल्स के ढंग पर संविधान स्वीकार किया। पोप पर भी इसका अधिक प्रभाव पड़ा। उसने इसी के पश्चात् अपने राज्य के लिये संविधान स्वीकार किया था।

परन्तु इटैली के भाग्य का निर्णय युद्ध के बिना होना असम्भव था। यह बात भी प्रकट थी कि उसके राज्यों को आस्ट्रिया का सामना अवश्य करना पड़ेगा।

सार्डिनिया का संविधान

उसके उत्तरी भाग में आस्ट्रिया का शासन था। आस्ट्रिया का मन्त्री मैटर्निक अभी तक अपने पद पर सुशोभित था। वह लोकतन्त्र तथा राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों का सब से बड़ा विरोधी था। अतएव वह इटैली के क्रान्तिकारी आन्दोलनों को सहन नहीं कर सकता था। इटैली के राज्यों में केवल सार्डिनिया ही एक ऐसा राज्य था जो सफलता के साथ आस्ट्रिया का सामना कर सकता था। उसके राज्य में पीडमोंट और सेवाय भी सम्मिलित थे। इसका उल्लेख हम पहले भी कर चुके हैं। उक्त राज्य में इस समय चार्ल्स एल्बर्ट का शासन था। वह सेवाय के वंश से था। जिस प्रकार जर्मनी के इतिहास में प्रशा और होयेनज़ोलर्न वंश का महत्व अति अधिक है उसी प्रकार इटैली के इतिहास में सार्डिनिया का राज्य तथा सेवाय वंश महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। दोनों ही देशों के लोग अपने देश के सब से बड़े राज्य और उसके शासक को अपना पथप्रदर्शक मानते थे। चार्ल्स एल्बर्ट आस्ट्रिया के वंश का कट्टर शत्रु था। वह वीर तथा उच्च कोटि का प्रबन्धकर्ता तो अवश्य था, किन्तु उसमें दृढ़ संकल्प की कमी थी। यह बात उसकी समझ में कठिनता से आई कि इटैली की राष्ट्रीय सफलता के लिये उसके निवासियों की राजनैतिक स्वतन्त्रता अत्यन्त आवश्यक है। उसकी राजधानी तूरिन में काउन्ट कैवूर तथा अन्य सम्पादक राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिये शोर मचा रहे थे। अतएव फ़र्वरी सन् १८४८ ई० में उसने एक घोषणा प्रकाशित की और इसके कुछ समय

पश्चात् अपनी प्रजा के लिये संविधान भी स्वीकार किया। इसके फलस्वरूप उसके राज्य में इंग्लैंड के समतुल्य सीमित संसदीय प्रणाली का राजतंत्र स्थापित हो गया। जब इटैली के राज्यों का एकीकरण हुआ तो यही शासन पद्धति सम्पूर्ण देश के लिये भी उपयुक्त समझी गई। उस समय से मुसोलिनी के आने तक वह उक्त देश का संविधान रहा।

इस समय तक न केवल इटैली वरन् फ्रांस और अस्ट्रिया आदि में भी क्रांतियों की ज्वाला धधक उठी थी। फर्वरी के मास में फ्रांस में लुई फिलिप का पतन हो चुका था। इसके पश्चात् मार्च के महीने में

अन्य राज्यों में क्रान्तियों का ज़ोर

मेटर्निक को अंगरेज़ी वस्त्र धारण कर के वीयेना से अदृश्य हो जाना पड़ा था। उसका प्रभुत्व अस्ट्रिया पर और अस्ट्रिया के द्वारा इटैली पर इतने अधिक समय तक स्थापित रहा था कि उसके पतन के पश्चात् ही अन्तिम देश में क्रान्तियों का ज़ोर बढ़ गया। मीलन नगर में, जो इटैली में अस्ट्रियन साम्राज्य की राजधानी था, सर्वसाधारण की ओर से प्रदर्शन किये गये तथा छात्रों, व्यापारियों और मजदूरों ने एक मत होकर राजपाल के प्रासाद को चारों ओर से घेर लिया। इसके पश्चात् वहाँ कई दिनों तक क्रांतिकारियों का सामना सरकारी फ़ौज से होता रहा। अन्त में उसे भागना पड़ा तथा उक्त नगर पर देशभक्तों का अधिकार हो गया। इसी काल में पार्मा और माडेना के राज्यों में भी शासनों को नीचा देखना पड़ा। वेनिस में भी क्रांतिकारियों ने अस्ट्रिया का सामना बड़ी वीरता तथा दृढ़ता से किया। अतएव उसके राजपाल को भी अपनी सेना के साथ नगर से भाग जाना पड़ा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इटली में, दक्षिण के राज्यों में क्रान्तियों का प्रारम्भ हुआ था तथा उत्तर के राज्यों ने उनको आगे बढ़ाने में सफलता प्राप्त की थी। तत्पश्चात् सार्डिनिया के राज्य को अस्ट्रिया की शक्ति से भयंकर टक्कर लेनी पड़ी।

यह बड़े खेद का विषय है कि अन्य राज्यों ने चार्ल्स एल्बर्ट की आवश्यकतानुसार सहायता न की। वे युद्ध के लिये तैयार न थे। उनमें पारस्परिक वैमनस्य था। उनके पास योग्य सेनापति भी न थे।

अस्ट्रिया से युद्ध

फल यह हुआ कि युद्ध के प्रारम्भ में तो चार्ल्स एल्बर्ट को विजय हुई। उसने मीलन पर अधिकार कर लिया तथा अस्ट्रिया की सेना को पूर्व की दिशा में भगा दिया। इसके अतिरिक्त उसकी सेना ने पैस्कीयेरा (Peschiera) के सुदृढ़ दुर्ग पर भी अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् जब अस्ट्रिया की सेनायें पूर्ण रूप से तैयार हो गईं तो एल्बर्ट को असफलताओं का सामना करना पड़ा। अस्ट्रिया का विख्यात सेनापति राडेट्स्की

(Radetzky) आयु में अस्सी वर्ष से भी अधिक था, परन्तु वह युद्ध करने की योग्यता और वीरता में अनुपम था। २५ जौलाई सन् १८४८ ई० को उसने शत्रु को कुस्टोज़ा (Custozza) के युद्ध में इतनी बुरी तरह परास्त किया कि उसे मीलन की दिशा में भाग जाना पड़ा। उसकी सहायता करने के स्थान में इटैली के निवासी चार्ल्स एल्बर्ट को दोषी ठहराने लगे। ऐसी दशा में देशभक्तों को अधिक असफलता तथा लज्जा सहन करनी पड़ी। चार्ल्स एल्बर्ट मीलन से सेना के साथ अपने राज्य को लौट गया। उपरोक्त नगर पर आस्ट्रिया का पुनः अधिकार हो गया। राष्ट्रीय शूरवीरों ने फिर भी साहस न छोड़ा। मात्सीनी कहने लगा कि राजा का युद्ध समाप्त हो गया है, अब जनता का युद्ध प्रारम्भ होगा। गारीबाल्डी पहाड़ों पर चला गया तथा लुका छिपी की युद्ध प्रणाली (Guerilla warfare) का प्रयोग करने की तैयारी करने लगा। २३ मार्च सन् १८४९ ई० को चार्ल्स एल्बर्ट को नोवारा (Novara) के युद्ध में पूर्ण पराजय हुई। इसके पश्चात् वह शासन का त्याग कर पुर्तगाल चला गया तथा शासनसूत्र उसके पुत्र विक्टर ऐमैनुअल के हाथ में आगया।

क्रांति का अन्त

कुछ अन्य देशों की भांति इटैली में भी सन् १८४८ ई० की क्रान्ति सफल नहीं हुई थी। आस्ट्रिया के शासन ने विक्टर ऐमैनुअल पर इस बात के लिये बड़ा ज़ोर दिया था कि वह अपने साम्राज्य के संविधान को स्थगित कर दे, परन्तु उसने ऐसा न किया था। इसके पश्चात् क्रान्तिकारी आन्दोलन केवल रोम और वेनिस में चलता रहा। शेष सब राज्यों में उसका अन्त कर दिया गया था। पोप के चले जाने के पश्चात् रोम के शासन पर मात्सीनी, गारीबाल्डी तथा अन्य देशभक्तों का अधिकार हो गया था। वे कुछ काल तक आस्ट्रिया का सामना करते रहे। इसके बाद उन्हें निराश होना पड़ा। फ्रांस के अध्यक्ष लूई नैपोलियन ने पोप को प्रसन्न करने के लिये अपनी सेना इटैली भेजी। उसने ३० जून सन् १८४९ ई० को रोम के गण-राज्य की समाप्ति कर के पोप को पुनः बुला लिया। इसी वर्ष २४ अगस्त को वेनिस के युद्ध और क्रान्ति का भी अन्त हो गया। उस पर आस्ट्रिया निवासियों का पुनः अधिकार हो गया। इस प्रकार इटैली के स्वाधीनता संग्राम का अन्त हुआ। उसके मुट्ठी भर नेता अपने अनुपम उत्साह व वीरता तथा देशभक्तों की सहायता से जो कुछ कर सकते थे वह उन्होंने किया था। उनको और योग्य सैनिक अधिकारियों तथा एकता व व्यवस्था की कमी थी। इटैली को किसी अन्य बाहरी देश से भी सहायता न मिली थी। दस साल बाद जब ये दोष दूर हो गये तो देशभक्तों ने एकीकरण तथा स्वाधीनता के युद्ध में पूर्ण सफलता प्राप्त की।

सातवाँ अध्याय

पूर्वीय समस्या तथा क्रीमिया का युद्ध

(अ) निकटवर्ती पूर्वीय समस्या (१७७४-१८५३)

भूत काल में यूरोप के राजनीतिज्ञों तथा विद्वानों को अगणित कठिन समस्याओं पर विचार करना पड़ा था और अर्वाचीन युग में भी उनके सम्मुख नित्य प्रति भिन्न प्रकार के कठिन प्रश्न उपस्थित होते रहते हैं। परन्तु तुर्की तथा उससे सम्बन्ध रखने वाली समस्यायें उनके लिये सदा चिन्ता और पारस्परिक वैमनस्य का कारण सिद्ध हुई हैं। इसका एक प्रमुख कारण धर्म से सम्बन्ध रखता है। यूरोप में इस्लामी साम्राज्य को स्थापित हुये कम से कम बारह सौ वर्ष बीत चुके हैं, किन्तु मुसलमानों ने वर्तमान शताब्दी से पूर्व ईसाई धर्म अथवा ईसाई सभ्यता को कभी नाम मात्र को भी नहीं अपनाया। ईसाई सभ्यता की जिन विशेषताओं को उन्होंने थोड़ा बहुत ग्रहण भी किया था वे बीसवीं शताब्दी में अतातुर्क कमालपाशा के नेतृत्व में ग्रहण की गई थीं।

यूरोप में तुर्की साम्राज्य के निवासी अधिकतर ईसाई धर्म के अनुयायी थे। अतएव उसकी महान् शक्तियों और विशेष रूप से रूस को कभी कभी यह दावा उपस्थित करना पड़ा कि उन्हें यह अधिकार प्राप्त है कि वे तुर्की अधिकारियों के दुर्व्यवहार तथा अत्याचार से सुल्तान की ईसाई प्रजा की रक्षा करें और उस पर इस बात के लिये दबाव डालें कि वह अपनी शासन प्रणाली में सुधार करने का प्रयत्न करे। इस प्रकार के मामलों को हम 'पूर्वीय समस्या' (Eastern Question) अथवा 'निकटवर्ती पूर्वीय समस्या' (Near Eastern Question) के अन्तर्गत सम्मिलित करते हैं। इसी प्रकार से जो कठिनाइयाँ उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों में फ़ारस, अफ़ग़ानिस्तान तथा पश्चिमीय एशिया के देशों के सम्बन्ध में उपस्थित

हुई हैं उनको मध्य-पूर्वीय समस्या (Middle Eastern Question) और चीन, जापान तथा एशिया के अन्य पूर्वीय देशों के विषय में उपस्थित होने वाली कठिनाइयों को 'दूर-पूर्वीय समस्या' (Far Eastern Question) के नाम से सम्बोधित करते हैं ।

यूरोप में इस्लामी साम्राज्य की स्थापना सब से पहले आठवीं शताब्दी में हुई थी, किन्तु उस समय उन्हें इसमें अधिक सफलता प्राप्त नहीं हो सकी थी।

तुर्की साम्राज्य का उत्कर्ष

ग्यारहवीं शताब्दी में सेल्जूक तुर्कों का उत्थान हुआ और पश्चिमी एशिया के बहुत बड़े भाग पर उनका अधिकार हो गया। उनके विरुद्ध यूरोप के शासकों तथा पोप को धर्मयुद्ध (Crusades) करने पड़े। इस विषय पर हम इसके पूर्व एक विहंगम दृष्टि डाल चुके हैं (खण्ड १, अध्याय १)। चौदहवीं शताब्दी में उस्मानी तुर्कों का उत्थान हुआ। उन्होंने विभिन्न सुल्तानों के अधीन ऐशियाई कोचक, सिरिया, अरब और मिस्र में अपने राज्य की स्थापना की तथा सन् १३५६ ई० में सेना सहित दानियाल के जलडमरूमध्य को पार किया। इसके दूसरे वर्ष उन्होंने ऐड्रियेनोपल नगर पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् भी उनकी विजयों का क्रम चलता रहा। सन् १४०२ ई० में उन्होंने पूर्वीय रोमन साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतुनिया का घेरा डाला। उस समय वे इस पर अधिकार तो न कर सके, परन्तु शीघ्र ही उक्त नगर तथा कुछ अन्य नगरों को छोड़कर बालकन प्रायद्वीप पर उनका पूर्ण अधिकार हो गया। सन् १४५३ ई० में सुल्तान मुहम्मद द्वितीय ने, जो उस्मानी शासकों में सब से योग्य था, एक लाख पचास हज़ार सैनिकों की महान् सेना के साथ कुस्तुनतुनिया का दूसरी बार घेरा डाला। इस बार विजय लक्ष्मी तुर्कों के हाथ रही। इस प्रसिद्ध नगर पर उनका अधिकार हो गया। यूरोप के सम्राटों तथा पोप ने इस बढ़ते हुये प्रवाह को रोकने का पूर्ण प्रयत्न किया, परन्तु वे कृतकार्य न हुये। डन्यूब नदी की घाटी में तुर्क बराबर पश्चिम की ओर अग्रसर होते रहे यहां तक कि वे प्राय: होली रोमन साम्राज्य की सीमा तक पहुँच गये। लगभग दो शताब्दियों तक हैप्सबर्ग वंश के शासक तथा वेनिस का गण-राज्य उनसे युद्ध करते रहे। सन् १६८३ ई० में तुर्कों ने वीयेना का घेरा डाला, परन्तु पोलैंड के बादशाह सोबेस्की (Sobieski) ने, जो आस्ट्रिया निवासियों की सहायता के लिये आया था, उन्हें परास्त करके पीछे हटा दिया। दूसरे वर्ष होली रोमन सम्राट, पोलैंड तथा वेनिस ने मिलकर 'पवित्र संघ' (Holy League) की स्थापना की, जिसने १५ साल तक बराबर तुर्कों से युद्ध किया तथा सन् १६९९ ई० में उन्हें रूस की सहायता से हंग्री के बाहर करने में सफलता पाई।

इसके पश्चात् तुर्कों की ओर से जो आतंक यूरोपीय देशों में फैल गया था उसका अन्त हो गया। अब उनके शासकों को दूसरे प्रकार की चिन्ता ने सताया। तुर्की का पतन प्रारम्भ हो गया था। अठारहवीं शताब्दी में यह विशेषता प्रकट हुई थी और उन्नीसवीं शताब्दी में वह पूर्ण रूप से प्रकाशित हुई। इस सम्बन्ध में विभिन्न कठिनाइयां उपस्थित हुईं, जिनका सामना यूरोप के राष्ट्रों को करना पड़ा। तुर्की साम्राज्य तलवार के बल से स्थापित किया गया था। उसके विभिन्न भागों का संगठन न हो सका था। कुव्यवस्था और भ्रष्टाचार के कारण उसके अन्य दोष भी प्रकट हो रहे थे। तुर्कों से डरने के स्थान में यूरोप के शासकों ने उनके साम्राज्य को परस्पर विभाजित करने की बातचीत प्रारम्भ कर दी। यूरोप के इतिहास में यह कोई नवीन विशेषता न थी। इस से पूर्व पोलैंड का विभाजन और पोलैंड से भी पूर्व स्पेन का विभाजन हो चुका था। यदि अठारहवीं शताब्दी में अथवा इसके पूर्व उपरोक्त देशों का विभाजन सम्भव था तो उन्नीसवीं शताब्दी में तुर्की का विभाजन भी हो सकता था। परन्तु दो विशेष कारण ऐसे थे जिनसे तुर्की इस अवांछनीय परिणाम से बचा रहा। प्रथम यह कि स्पेन या पोलैंड की भांति उसकी दशा पूर्ण रूप से न बिगड़ी थी। उसकी भुजाओं में बल शेष था और वह रूस अथवा आस्ट्रिया का सामना किसी की सहायता के बिना कर सकता था। उदाहरणार्थ, सन् १७८८ ई० में तुर्की हैप्सबर्ग वंश के बादशाह की सेना को परास्त कर चुका था। दूसरा प्रधान कारण यह था कि तुर्की पश्चिमी देशों से दूर था। अतएव वे उसे इतनी सरलता से हड़प न कर सकते थे जितनी सरलता से उन्होंने पोलैंड को हड़प कर लिया था। इसके अतिरिक्त यूरोप की शक्तियां अन्य दिशाओं में व्यस्त थीं जैसे आस्ट्रिया को, जिसे तुर्कों के कारण अधिक कठिनाई हो चुकी थी और भविष्य में भी हो सकती थी, प्रशा और फ्रांस का सामना करने तथा नैदरलैंड्ज़ की रक्षा की चिन्ता थी, न कि तुर्की का अन्त करने अथवा उसके साम्राज्य को विभक्त करने की। तुर्की से सम्बन्ध रखने वाले मामलों में रूस आस्ट्रिया का स्वाभाविक प्रतिद्वन्दी था। परन्तु अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक आस्ट्रिया का बादशाह जोजेफ़ द्वितीय अपने स्वार्थ के लिये, रूस की ज़ारीना कैथरिन द्वितीय के प्रस्तावों से जो पश्चिमीय देशों के विषय में बनाये गये थे, सहानुभूति प्रकट करता रहा।

उसके विभाजन का विचार

अठारहवीं शताब्दी में जब तुर्की की शक्ति का पतन आरम्भ हुआ, उसके पड़ोसी रूस का उत्थान हुआ। उसके उत्थान के साथ साथ पूर्वीय समस्या

का महत्व भी बढ़ गया। पीटर महान् (१६८९-१७२५) के समय से रूस का ध्यान पश्चिम की ओर था। वह पश्चिमी देशों की टोली में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करना चाहता था। वह उनकी सभ्यता और संस्कृति से अधिक से अधिक लाभ भी उठाना चाहता था, परन्तु स्वीडन, पोलैंड और तुर्की उसके मार्ग में कंटक थे। अतएव अठारहवीं शताब्दी में उसे इन तीनों देशों से युद्ध करना पड़ा। पीटर महान् ने स्वीडन को परास्त करके अपने देश वालों के लिये पश्चिम की दिशा में, जैसा कि वह कहा करता था, खिड़की खोल दी थी (सन् १७२१ ई०)। बाल्टिक सागर के तटवर्ती दलदलों को साफ़ कराके उसने वहां एक नवीन नगर तथा बन्दरगाह भी स्थापित किया जो उसी के नाम पर सेंट पीटर्सबर्ग (St. Petersburg) के नाम से विख्यात हुआ। उसकी स्थापना से रूस और पश्चिमी देशों के पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ गये। रूस की ज़ारीना कैथरिन द्वितीय (१७६२-१७९६) ने आस्ट्रिया और प्रशा से मिलकर तीन बार पोलैंड का विभाजन किया। इस प्रकार इस देश की स्वाधीनता समाप्त हो गई। इस प्रकार रूस के मार्ग से दूसरा कांटा भी दूर हो गया। अब शेष रहा तुर्की। इस ओर रूस के शासकों को विशेष ध्यान देना पड़ा। कारण कि इस ओर उसे पश्चिमी देशों के हस्तक्षेप की आशंका थी। इसके अतिरिक्त काले सागर तथा दोनों जलडमरूमध्यों से भूमध्य सागर और भूमध्य सागर से पूर्वीय तथा पश्चिमी संसार के लिए मार्ग जाते थे। रूस के ज़ार, पीटर महान् के समय से सन् १९१४ ई० तक निरन्तर तुर्की की ओर आकर्षित रहे और उसे किसी न किसी बहाने क्षति पहुंचाकर अपने उद्देश्य को सिद्ध करने का प्रयत्न करते रहे। 'पूर्वीय समस्या' की यह सब से बड़ी विशेषता थी जो पश्चिमी राष्ट्रों के लिये सदा चिन्ता का कारण रही। सन् १७७४ ई० में कैथरिन द्वितीय ने तुर्की से छः वर्ष के युद्ध के पश्चात् कुजुक कैनार्डी (Kujuk-Kainardji) की संधि की, जिसके द्वारा उसे काले सागर की दिशा में पैर फैलाने का सुयोग प्राप्त हुआ। उसने अपनी सीमा बूग (Bug) नदी तक बढ़ा ली। इस प्रकार उक्त सागर का उत्तरी तट उसके हाथ में आ गया और डोन (Don) तथा नीपर (Dnieper) नदियों के मुहानों पर भी उसका अधिकार हो गया। तुर्की के द्वारा रूस को बहुत ही लाभदायक व्यापारिक अधिकार भी प्राप्त हुये। वह अब स्वतन्त्रतापूर्वक डैन्यूब नदी तथा काले सागर द्वारा व्यापार कर सकता था। उसे सुल्तान की ईसाई प्रजा के संरक्षण का अधिकार भी मिला। सन् १७९२ ई० में कैथरिन ने तुर्की से यास्सी (Jassy) की संधि की, जिसके द्वारा उसने क्रीमिया प्रायद्वीप पर अधिकार कर लिया तथा अपने राज्य की सीमा को नीस्टर नदी तक बढ़ा लिया। इन अनुपम सफलताओं के कारण

कैथरिन द्वितीय को रूस के इतिहास में महान स्थान प्राप्त हुआ है। उसे यह कहने का अवसर भी प्राप्त हुआ कि "मैं रूस में एक निर्धन बालिका की स्थिति में आई थी। रूस ने मुझे बहुमूल्य दहेज़ दिया, परन्तु मैंने उसे इसके बदले में आज़ौफ़ (Azov), क्रीमिया (Crimea) और ऊक्रेन (Ukraine) प्रदान किये हैं।"

इसके पश्चात् रूस के शासकों को पश्चिम की अधिक महत्वपूर्ण समस्याओं की ओर ध्यान देना पड़ा। सन् १८०७ ई० में जब नैपोलियन से टिलसिट की संधि हो गई तो रूस का ज़ार सिकन्दर प्रथम भी विगत शासकों की भाँति तुर्की के विभाजन का स्वप्न देखने लगा, परन्तु नैपोलियन ने इस ओर उसको बढ़ावा नहीं दिया। अतएव ज़ार ने विवश हो सन् १८१२ ई० में तुर्की से बूकारैस्ट (Bukarest) नगर में संधि कर ली। इसके द्वारा बैसेराबिया (Bessarabia) के प्रदेश पर रूस का अधिकार हो गया। इस प्रकार उसकी सीमा प्रूथ (Pruth) नदी से जा मिली।

दो नवीन तत्व

उन्नीसवीं शताब्दी में पूर्वीय समस्या तथा तुर्की की दशा पर दो नवीन तत्वों ने विशेष प्रभाव डाला।—(१) यूरोपीय शक्तियों के आचरण में परिवर्तन तथा (२) तुर्की साम्राज्य में ईसाई जातियों का उत्थान। इन दोनों तत्वों पर हम संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालेंगे। गत पृष्ठों से यह बात प्रकट हो गई होगी कि अठारहवीं शताब्दी में यूरोपियन देशों में केवल रूस ही एक ऐसा देश था जिसे सुल्तान और उसके साम्राज्य के मामलों में काफ़ी अभिरुचि थी। अन्य देश उसकी ओर से निश्चिन्त थे अथवा उसकी ओर केवल साधारण रूप से दत्तचित्त थे। नेपोलियन बोनापार्ट ने यूरोप के निवासियों को विशेष रूप से पूर्व की ओर आकर्षित किया था और उन पर यह बात प्रकट की थी कि तुर्की साम्राज्य और उस से सम्बन्धित मामलों में उन्हें ख़ास दिलचस्पी लेनी चाहिये। सम्भव है कि वह वास्तव में रूस से मिलकर तुर्की को विभाजित करना चाहता हो। कम से कम इतनी बात अवश्य है कि उसने फ्रांसीसियों को इस ओर विशेष रूप से आकर्षित कर दिया था। अतएव वे पूर्वीय समस्या में विशेष अभिरुचि रखने लगे थे। आस्ट्रिया और ग्रेट ब्रिटेन दोनों सन् १८१५ ई० के पश्चात् रूस की ओर से विशेष रूप से आतंकित हो गये थे। वे इस बात को सहन न कर सकते थे कि उसकी शक्ति और साम्राज्य में अधिक वृद्धि की जाय। अतएव मैटर्निक ने तुर्की की स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया तथा इस सिद्धान्त को भी महत्व दिया कि सब स्थानों में शासनाधिकार केवल उन राजवंशों को दिया जाय जो वास्तव में उसके अधिकारी हैं। ग्रेट ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ तथा मन्त्री भी इस बात को समझने लगे थे, कि रूस की ओर से उनको

पूर्वीय दिशा में हानि पहुँचने की आशंका है। वह सोल्सबरी से भी अधिक सावधान थे। यही कारण है कि कासलरे, कैनिंग तथा पामर्स्टन ने और इसके पश्चात् डिजरेली ने समान नीति का अनुकरण किया, जिसके दो मुख्य उद्देश्य रूसी साम्राज्य की वृद्धि को रोकना तथा तुर्की की स्वाधीनता को स्थापित रखना था। दूसरा नवीन तत्व, जिसने उन्नीसवीं शताब्दी में पूर्वीय समस्या पर प्रकट रूप से प्रभाव डाला, तुर्की साम्राज्य की ईसाई जातियों का उत्थान है। ये जातियां उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही थीं तथा सुन्दर व्यवस्था की क्षमता रखती थीं। उनकी सबसे बड़ी अभिलाषा सुलतान की अधीनता से मुक्ति प्राप्त करने की थी। उन में से रूमानियन जाति के लोग मोल्डेविया (Moldavia) और वौलेकिया (Wallchia) के प्रान्तों में, जहाँ आजकल रूमानिया का देश स्थित है, निवास करते थे। सर्ब, बल्गार और यूनानी बालकन प्रायद्वीप के उन भागों में निवास करते थे जिनकी सीमायें लगभग वही थीं जो सन् १६१३ ई० में थीं। प्रथम दो प्रान्तों की अपेक्षा अन्तिम तीन प्रान्तों में तुर्की शासन का प्रभाव अधिक था, किन्तु किसी प्रान्त में भी तुर्कों की जनसंख्या अधिक न थी। बल्गेरिया का प्रान्त कुस्तुन्तुनिया से बिल्कुल मिला हुआ था। अतएव उसको स्वाधीनता प्राप्त करने में अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा, तथा उसे स्वाधीनता सबसे अन्त में प्राप्त हुई। तुर्की शासन का आचरण सब स्थानों में समान था। उसके अधिकारी ईसाई प्रजा के साथ अत्यन्त कठोर व्यवहार करते थे और इस बात को सहन न कर सकते थे कि वे किसी प्रकार का राजनैतिक आन्दोलन करें। उनके प्रति सुविधा उसी दशा में की जाती थी जब महाशक्तियां उसके लिये प्रयत्नशील होती थीं। बहुधा ऐसा भी होता कि शासन की ओर से सुविधा अथवा सुधार का वचन तो दे दिया जाता था किन्तु उसको कार्य रूप में परिणित करने की ओर ध्यान न दिया जाता था।

सर्ब और यूनानियों के स्वाधीनता युद्ध

सुल्तान की निर्बलता और उसकी ईसाई प्रजा के साथ उसके अधिकारियों का कठोर व्यवहार, यूरोप की महाशक्तियों का सावधान हो जाना और भूमध्य सागर के पूर्वीय भाग पर दृष्टि रखना तथा सर्ब, बल्गार और यूनानी आदि जातियों में जागृति का उत्पन्न होना ये तीनों बातें ऐसी हैं जिनके कारण बालकन प्रायद्वीप में कभी भी कुव्यवस्था फैल सकती थी। अस्तु सन् १८०४ ई० में वहाँ अधीन जातियों की ओर से स्वाधीनता प्राप्त करने के उद्देश्य से पहला क़दम उठाया गया। इसके उठाने का श्रेय सर्ब जाति के लोगों को था, न कि यूनानी अथवा बल्गार जाति को। इस वर्ष उन्होंने अपने नेता

'काले जार्ज' (Kara George) के अधीन विद्रोह किया। तुर्की शासन ने उसका सामना पूर्ण प्रयत्न से किया। इसके फलस्वरूप दोनों ओर से यथेष्ट रक्तपात हुआ। सन् १८१५ ई० में 'काले जार्ज' के प्रतिद्वन्द्वी मिलोश (Milosh) के नेतृत्व में ज़ोरदार आन्दोलन किया गया। वह अपने प्रयत्न में अधिक सफल हुआ। उसने सर्बिया के शासन को अपने हाथ में ले लिया। बहुत संकोच और विचार के पश्चात् सुल्तान ने उपरोक्त देश के लिये एक संविधान स्वीकार किया और मिलोश को उसका अध्यक्ष बनाया (सन् १८२६ ई०)।

सन् १८२१ ई० में यूनानियों ने स्वाधीनता युद्ध किया। इसका विशद वर्णन द्वितीय अध्याय में किया जा चुका है। उनके आन्दोलन ने इतना ज़ोर पकड़ा कि रूस, आस्ट्रिया और ब्रिटिश द्वीपसमूह के शासन चकित थे। ज़ार ने जब देखा कि कुस्तुन्तुनिया का धार्मिक पदाधिकारी (Patriarch) तथा अगणित अन्य ईसाई बलिदान कर दिये गये हैं तो वह तुर्की पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा, परन्तु कैनिंग तथा मैटर्निक ने ऐसी सावधानी से काम लिया कि बालकन प्रायद्वीप में बड़े स्तर पर युद्ध न हुआ। वे जानते थे कि रूस एक ही ग्रास में यूनान को हड़प कर जायेगा तथा दूसरे ग्रास में तुर्की को। अतएव उन्होंने रूसी भालू को नियंत्रण में रक्खा। इसके पश्चात् जब मिस्र के पाशा मुहम्मद अली तथा उसके पुत्र ने सुल्तान की ओर से युद्ध में भाग लिया तो ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और रूस के शासनों ने यही उचित समझा कि सुल्तान पर दबाव डाला जाय। इसके पश्चात् अगस्त सन् १८२७ ई० में नवारीनो का युद्ध हुआ। जब ज़ार ने अपने सहयोगियों की इच्छा के विपरीत तुर्की के विरुद्ध सन् १८२८ ई० में युद्ध की घोषणा की तथा उसकी शक्तिशाली सेना कुस्तुन्तुनिया की ओर बढ़ी तो सितम्बर सन् १८२६ ई० में सुल्तान ने ऐड्रियेनोपल की संधि कर ली। इसके द्वारा यूनान को पूर्ण स्वाधीनता प्रदान की गई। यह बालकन प्रायद्वीप के इतिहास में एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना थी। रूसी साम्राज्य में यूरोप में तो वृद्धि न की गई; इस ओर उसकी सीमा प्रूथ नदी से आगे न बढ़ी। किन्तु इसके पश्चात् काकेशस पर्वत की दिशा में साम्राज्य बढ़ाने का उसे सुन्दर सुयोग प्राप्त हुआ। रूस की नीति यह न थी कि तुर्की को एक ही ग्रास में हड़प कर ले, वरन् यह थी कि धीरे धीरे उसके साम्राज्य को कम करके अपने साम्राज्य में वृद्धि करे। इसके पश्चात् बालकन प्रायद्वीप में रूस का प्रभाव कम हो गया। यह बात अन्य मित्र राष्ट्रों के अनुकूल थी।

यूनानियों के स्वाधीनता युद्ध ने अन्य बातों के साथ साथ सुल्तान की निर्बलता को भी विशेष रूप से प्रकट कर दिया था। उसने एक ओर तो मुहम्मद-अली को अपनी सहायता के लिये बुलाया था और दूसरी ओर एक यूरोपियन राष्ट्र

के आगे बढ़ते ही उसके सामने शस्त्र डाल दिये थे। सुल्तान की निर्बलता से मिस्र के शासक मुहम्मदअली ने विशेष लाभ उठाया।

मुहम्मदअली १८३१–१८४१

मुहम्मदअली प्रारम्भ में तम्बाकू बेचने का व्यवसाय करता था। नैपोलियन के आक्रमण के समय जब मिस्र में कुव्यवस्था फैली तो उसने उससे बहुत लाभ उठाया। वह उपरोक्त देश का पाशा (शासक) बन गया। सुल्तान ने उसको स्वीकार कर लिया। मुहम्मदअली ने अपने देश में नवीन ढंग के सुधार किये तथा सूडान और अरब को विजय करके अपनी शक्ति में अधिक वृद्धि की। जो विद्रोह उसके विरुद्ध किये गये उनको भी उसने आसानी से दबा दिया। जब सुल्तान ने यूनानी स्वाधीनता के युद्ध में सहायता देने के उपलक्ष में उसे केवल क्रीट का शासन प्रदान किया तो मुहम्मदअली संतुष्ट न हुआ। उसने सिरिया विजय करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। इस प्रकार 'पूर्वीय समस्या' के इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारम्भ हुआ।

नवम्बर सन् १८३१ ई० में मुहम्मद अली के पुत्र इब्राहीम ने एक साधारण किन्तु पूर्ण अनुशासित सेना की सहायता से फ़िलस्तीन (Palestine) पर समुद्र और स्थल के मार्गों से आक्रमण किया। भाग्य और तलवार दोनों ही से उसे निरन्तर सहायता मिली। जाफ़ा, गाज़ा और जेरूसलेम पर उसका अधिकार हो गया। कुछ समय के पश्चात् एकर का सुप्रसिद्ध नगर व दुर्ग भी उसके हाथ में आगया (मई सन् १८३२ ई०)। फिर दमिश्क और एलीपो पर उसका अधिकार हुआ। तत्पश्चात् टोरस पर्वत को पार कर के वह तुर्की की दिशा में बढ़ता हुआ दिखाई दिया। सुल्तान ने दिसम्बर के महीने में उसके विरुद्ध अपनी अन्तिम सेना भेजी, परन्तु वह भी बुरी तरह परास्त हुई। यह देख कर सुल्तान बहुत चिन्तित हुआ, तथा उसने यूरोपीय शक्तियों को सहायता के लिये लिखा। किन्तु ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस दोनों इस समय बेल्जियम के स्वाधीनता युद्ध की ओर आकर्षित थे। इतना अवश्य हुआ कि रूस उसकी सहायता के लिये तैयार हो गया। डूबते को तिनके का सहारा होता है। यह विचार कर के सुल्तान महमूद ने अपने प्राचीन शत्रु से सहायता लेना स्वीकार कर लिया। रूसी जहाज़ अविलम्ब बोस्पोरस के जलडमरूमध्य में दृष्टिगोचर हुये और रूसी जवानों का बड़ी संख्या में तुर्की साम्राज्य में उतरना प्रारम्भ हुआ। यह देख कर पश्चिम के राष्ट्रों को अधिक चिन्ता हुई। वे तुर्की साम्राज्य में रूस के हस्तक्षेप को किसी भी दशा में सहन न कर सकते थे। अतएव फ्रांस और आस्ट्रिया ने सुल्तान पर दबाव डाल कर मुहम्मदअली की माँगों को स्वीकृत करा दिया।

रूस का ज़ार भी सुल्तान से पारितोषिक का अभिलाषी हुआ। सुल्तान ने उससे सन् १८३३ ई० में ऊकियार स्केलेस्सी (Ukiar Skelessi) की संधि की। इसके द्वारा तुर्की एक प्रकार से रूस के सैनिक संरक्षण में आगया। रूस के फ़ौजी जहाज़ों को दोनों जलडमरूमध्य से गुज़रने की स्वतन्त्रता मिली और यह बात भी निश्चित कर दी गई कि युद्धकाल में किसी अन्य देश के जहाज़ उनसे न गुज़र सकेंगे। वास्तव में रूस और तुर्की की यह सन्धि पारस्परिक सुरक्षा और अन्य देशों का विरोध करने के उद्देश्य से की गई थी। ग्रेट ब्रिटेन तथा फ्रांस के मन्त्रियों के लिये वह चिन्ता का कारण सिद्ध हुई। किन्तु यह मामला बिना युद्ध के निकल गया। इसके कारण प्रथम देश के वाह्यमन्त्री पामर्स्टन ने अवश्य इस बात का निश्चय कर लिया कि वह रूस की शक्ति में अधिक वृद्धि न होने देगा तथा उक्त सन्धि को भी शीघ्र से शीघ्र व्यर्थ बनाने का प्रयत्न करेगा।

रूस और तुर्की की सन्धि, (१८३३ ई०)

सुल्तान महमूद द्वितीय ने उपरोक्त सन्धि की शर्तों को स्वीकार तो कर लिया था परन्तु वह ज़ार और मुहम्मदअली दोनों की ओर से चिन्तित था। अप्रैल सन् १८३९ ई० में उसने एक सेना दजला नदी की घाटी में भेजी जिसने फ़िलस्तीन और आदाना बन्दरगाहों के बीच के मार्ग को रोक दिया। इसके पश्चात् उसने जून के अन्तिम सप्ताह में इब्राहीम पर, जो सिरिया में शासन कर रहा था, आक्रमण कर दिया। परन्तु उसको पूर्ण पराजय प्राप्त हुई। जौलाई की पहली तारीख़ को सुल्तान महमूद ने संसार से विदा ली और उसके स्थान पर एक सोलह वर्षीय बालक सुल्तान हुआ। तुर्की के लिये ये दोनों हानियाँ असह्-नीय थीं। ठीक इसके पश्चात् तुर्की का जहाज़ी बेड़ा सिकन्दरिया गया और यह तर्क उपस्थित करके कि क़ुस्तुन्तुनिया रूसियों को बेच दिया गया है, उसने मुहम्मदअली की अधीनता स्वीकार कर ली। मुहम्मदअली और उसका पुत्र हर्ष से फूले नहीं समाते थे, किन्तु पामर्स्टन ने शीघ्र ही उनकी शान व झूठे घमंड को मिट्टी में मिला दिया। उसने आस्ट्रिया, प्रशा और रूस को सम्मिलित कर के लन्दन में १५ जौलाई सन् १८४० ई० को एक प्रतिज्ञापत्र लिखा, जिसके द्वारा मुहम्मदअली मिस्र का वंशानुगत परन्तु एकर का केवल मृत्यु पर्यन्त पाशा स्वीकार किया गया। यह भी निश्चित कर दिया गया कि यदि वह इस शर्त को स्वीकार न करेगा और अन्य जीते हुये देशों से भी पृथक न होगा तो उसे केवल मिस्र का

लन्दन का प्रतिज्ञापत्र, १८४० ई०

पाशा रहने का अधिकार दिया जायेगा। इस प्रतिज्ञापत्र को व्यवहार में लाने में दो कठिनाइयाँ थीं। प्रथम, फ्रांस जिस पर मुहम्मदअली को गुप्त रीति से सहायता देने का सन्देह था, इसमें सम्मिलित न हुआ था। द्वितीय, उक्त प्रतिज्ञा-पत्र के लिये मुहम्मद अली ने अपनी अनुमति प्रदान न की थी।

पामर्स्टन ने शीघ्र ही दोनों कठिनाइयों का सामना सफलतापूर्वक किया। वह इस बात से पूर्ण रूप से अवगत था कि फ्रांस के मन्त्री केवल बड़बड़ा कर अपनी अप्रसन्नता का प्रमाण दे सकते हैं, परन्तु वे इंग्लैंड पर आक्रमण करने का साहस कदापि न कर सकेंगे। ठीक इसी प्रकार का अनुभव भी हुआ। लूई फिलिप के मन्त्री गीज़ो और तेयर ने उपरोक्त प्रतिज्ञापत्र का समाचार पाकर त्योरी चढ़ाई तथा बहुत कुछ कहा सुना भी। किन्तु उनका तथा फ्रांसीसी समाचारपत्रों का क्रोध शीघ्र ही शान्त हो गया। उनका उत्तराधिकारी बूढ़ा सूल्त (Soult) इस बात को भली भाँति जानता था कि यदि इंग्लैंड से युद्ध किया जायेगा तो आलियंज़ का वंश फ्रांस में शान्तिपूर्वक शासन न कर सकेगा। अतएव वह पामर्स्टन की नीति के अनुकूल हो गया और उसने किसी प्रकार का विरोध उपस्थित न किया। मुहम्मदअली को ठीक रास्ते पर लाने के लिये पामर्स्टन को युद्ध शक्ति का प्रयोग करना पड़ा। उसने उसे लंदन के प्रतिज्ञापत्र की शर्तों को स्वीकार करने के लिये दस दिन का अवकाश दिया। जब वह बीत गया तो उसकी आज्ञा से इंग्लैंड तथा आस्ट्रिया के जहाज़ी बेड़े सिरिया के प्रसिद्ध नगर व बन्दरगाह बेरूट (Beirut) गये और ९ सितम्बर को उस पर गोलाबारी कर के एक माह के पश्चात् उस पर अधिकार कर लिया। उधर जलसेनानायक नेपियर सिकन्दरिया नगर के सामने दृष्टिगोचर हुआ तथा मुहम्मदअली को शस्त्र डालने को विवश किया। २७ नवम्बर को उसने बाध्य होकर यह सन्धिपत्र लिख दिया कि यदि वह मिस्र का खान्दानी पाशा स्वीकार कर लिया जाय तो वह सिरिया से अपना अधिकार हटा लेगा। परिस्थिति के बदल जाने के कारण बड़ी शक्तियों ने इस शर्त को कठि-नता से स्वीकार किया, परन्तु पामर्स्टन को अपनी नीति में पूरी सफलता मिली। सिरिया में विद्रोह हो गया। अतएव इब्राहीम को वहाँ से चला आना पड़ा। फ्रांस का बड़ा अपमान हुआ। ज़ार निकोलस प्रथम भी अपने उद्देश्यों में कृतकार्य न हुआ था। पामर्स्टन की प्रसिद्धि दुगुनी होगई थी। उसने रूस तथा मुहम्मदअली के हस्तक्षेपों को रोक दिया था तथा उनके आतंक से तुर्की के सुल्तान को बचा लिया था। मन्त्रिमंडल में परिवर्तन होने के कारण सन् १८४१ ई० में पामर्स्टन को अपने पद से पृथक होना पड़ा।

पामर्स्टन के अपने पद से पृथक होने से क्रीमिया के युद्ध के आरम्भ होने

तक पूर्वीय समस्या के सम्बन्ध में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। ज़ार और अंगरेज़ी शासन के पारस्परिक सम्बन्ध भी अच्छे हो गये। ज़ार निकोलस स्वयं इंग्लैंड गया और अंगरेज़ मन्त्रियों से वार्तालाप की। सन् १८४६ ई० में अनाज सम्बन्धी क़ानून (Corn Laws) स्थगित कर दिये गये। पील का मन्त्रीकाल समाप्त हुआ, और पामर्स्टन पाँच साल के लिए वाह्यमन्त्री के पद पर लौट आया। अक्टूबर सन् १८५३ ई० में क्रीमिया का युद्ध आरम्भ हुआ। उसके आरम्भ होते ही पूर्वीय समस्या का महत्व पुनः बढ़ गया।

अन्तिम दस वर्ष

(ब) क्रीमिया का युद्ध (१८५३-५६)

सन् १८५३ ई० से सन् १८५६ ई० तक यूरोप के राष्ट्रों को अपना ध्यान तुर्की की ओर विशेष रूप से आकर्षित करना पड़ा। अबकी बार 'पूर्वीय समस्या' ने बड़ा ही उग्र रूप धारण किया, जो २० वर्ष पूर्व से भी अधिक राजनीतिज्ञों तथा मंत्रियों के लिये चिन्ता का कारण प्रमाणित हुआ। अबकी बार उसने एक महान् युद्ध का रूप धारण किया, जो काले सागर के क्रीमिया नाम के प्रायद्वीप में किया गया था। यूरोप की महान् शक्तियों ने तुर्की के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त निश्चित कर लिये थे उनका पूर्ण अनुसरण क्रीमिया के युद्ध में किया गया। रूस ने इस बात का प्रयत्न किया कि तुर्की के विरुद्ध हस्तक्षेप करके उसके साम्राज्य का अधिक से अधिक भाग अपने अधिकार में कर ले। इंग्लैंड तथा फ्रांस ने तुर्की की सहायता करके उसकी क्षीण शक्ति को अधिक क्षीण बनने से बचाने का प्रयत्न किया। दूसर शब्दों में हम कह सकते हैं कि ज़ार ने 'यूरोप के रोगी' को समाप्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु इंग्लैंड और फ्रांस के शासनों ने अमृत पान कराके उसे सदा के लिए जीवित कर दिया। आस्ट्रिया और प्रशा उपरोक्त युद्ध में सम्मिलित नहीं हुये। आस्ट्रिया के मन्त्रियों ने दुरंगी नीति से काम लिया। एक ओर तो वे रूस को सहायता करने के अभिलाषी थे, क्योंकि उसकी सहायता से वे सन् १८४९ ई० में हंग्री की राज्यक्रांति को समाप्त कर चुके थे। दूसरी ओर उन्हें इस बात का भय भी था कि कहीं रूसी शक्ति और साम्राज्य में अत्यधिक वृद्धि न हो जाय। इसके अतिरिक्त उन्हें इंग्लैंड और फ्रांस का भी ध्यान था। ऐसी दशा में उन्होंने रूस के विरुद्ध युद्ध करने की धमकी तो दी, परन्तु वे क्रीमिया के युद्ध से पृथक रहे। इसके अतिरिक्त भी मित्रराष्ट्रों को उनके व्यवहार से पर्याप्त सहायता मिली। प्रशा ने बिज़मार्क के कारण युद्ध की घोषणा न की। बिज़मार्क का कथन था कि उपरोक्त युद्ध से प्रशा को कोई लाभ न हो सकेगा। इस से ज़ार को बड़ी सहायता प्राप्त हुई। इसके बदले

में दस साल बाद ज़ार ने आस्ट्रिया के विरुद्ध प्रशा की प्रकट रूप से सहायता की। इस सम्बन्ध में हम सार्डिनिया के राज्य को भी विस्मृत नहीं कर सकते। वह अपने मित्र फ्रांस की सहायतार्थ सन् १८५५ ई० में युद्ध में सम्मिलित हुआ। उसे यह भी आशा थी कि इस प्रकार इटैली के एकीकरण का कार्य सरल हो जायेगा तथा विक्टर ऐमैनुअल को इटैली का बादशाह होने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

क्रीमिया में युद्ध होने के कई कारण थे। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि उस समय बालकन प्रायद्वीप की दशा संतोषजनक न थी। यूनान को छोड़कर शेष प्रायद्वीप में तुर्कों का शासन था। परन्तु उनकी सत्ता प्रति दिन क्षीण होती जाती थी। इसके प्रतिकूल विभिन्न यूरोपीय जातियों में जो वहां निवास करती थीं अर्थात् सर्ब, बल्गार एवं मैसीडन के निवासियों आदि में राष्ट्रीय जाग्रति बढ़ रही थी। तुर्कों का शासन कठोर अवश्य था

बालकन प्रायद्वीप में आकस्मिक अग्निमय विस्फोट की सामग्री

किन्तु जो अत्याचार उनकी ओर से किये गये थे, वे किसी नीति विशेष के अनुसार नहीं किये गये थे। शासन की ओर से प्राय: प्रजा के नित्य प्रति के कार्यों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप भी न होता था। उसका मुख्य काम शान्ति व व्यवस्था को बनाये रखना तथा कर वसूल करना था। प्रजा को शासन की ओर से पूर्ण सामाजिक व धार्मिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त थी। इसके प्रतिकूल बालकन प्रायद्वीप की अन्य जातियां भी उसी मार्ग का अनुगमन करना चाहती थीं जो यूनानियों ने ग्रहण किया था। उनमें से कुछ जातियां ऐसी थीं जो बड़ी सीमा तक अपना शासन प्रबन्ध स्वयं करती थीं। उदाहरणार्थ, मोल्डेविया तथा वौलेकिया के निवासी हाल के सन्धिपत्रों के अनुसार अपना आन्तरिक प्रबन्ध स्वयं करते थे। सर्ब जाति को भी इसी प्रकार के अधिकार मिले हुये थे, परन्तु वे पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने का स्वप्न देख रहे थे। इसकी प्राप्ति के लिये वे एक बार यूनानियों की भांति युद्ध भी कर चुके थे परन्तु वे सफल मनोरथ न हुये थे। बालकन प्रायद्वीप के राज्यों में धार्मिक विभिन्नता की भी कमी न थी। देश के अधिकतर निवासी कट्टर पंथी यूनानी चर्च (Orthodox Greek Church) के अनुयायी थे। उसके निवासियों में मुसलमानों की संख्या कम थी, परन्तु सभी राज्यों में वे किसी न किसी संख्या में उपस्थित थे। उक्त विवाद के आधार पर हम कह सकते हैं कि सुल्तान के यूरोपीय साम्राज्य में अकस्मात् अग्निमय विस्फोट होने की प्रचुर सामग्री एकत्रित थी। *उसके किसी भाग में किसी भी क्षण तूफ़ान उठ सकता था तथा उसके उठने से* यूरोप का शक्ति-संतुलन अव्यवस्थित हो सकता था।

सन् १८४१ ई० के कठिन समय के पश्चात् पूर्वीय क्षितिज पर एक घनघोर घटा सबसे पूर्व फ़िलस्तीन के पादरियों के पारस्परिक वैमनस्य के कारण दृष्टिगोचर हुई। उसको देखकर यूरोप के शासनों को चिन्ता हुई।

पवित्र स्थान

धर्मयुद्धों (Crusades) के समय से फ्रांस का शासन सिरिया और फ़िलस्तीन में ईसाई यात्रियों का संरक्षण कर रहा था। सन् १७४० ई० में सुल्तान ने भी इस अधिकार को स्वीकार कर लिया था। अठारहवीं शताब्दी में जब रूस की शक्ति का उत्थान हुआ तो कट्टर-पंथी यूनानी चर्च के अनुयायी ज़ार को अपना संरक्षक मानने लगे तथा उसके मोंक (Monks) उन एकाधिकारों के विरुद्ध आवाज़ उठाने लगे जो दीर्घकाल से उक्त देशों में रोमन चर्च के अनुयायियों को प्राप्त थे। उन्होंने उनको हटाकर कई गिर्जाघरों पर अधिकार भी कर लिया था। इनमें बेथलीयेम के चर्च (Church of Bethlehem) का महत्त्व सब से अधिक था। सन् १८५० ई० में यूरोप के शासनों ने विशेष रूप से इस ओर अपना ध्यान दिया। दो वर्ष तक फ्रांस, इंग्लैंड तथा रूस के प्रतिनिधि इस सम्बन्ध में सुल्तान से पत्रव्यवहार करते रहे। उसने दोनों ही पक्षों को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। अतएव कुछ शर्तों पर उनमें समझौता हो गया। इस प्रकार पवित्र स्थानों तथा यात्रियों की सुरक्षा के प्रश्न का निर्णय हो गया। परन्तु इसके कारण यूरोप के निवासियों का ध्यान सन् १८४१ ई० के पश्चात् फिर से कुस्तुनतुनिया की ओर हो गया। इस से यह बात भी स्पष्ट हो गई कि किसी भी दिन सुल्तान और उसके साम्राज्य के रहस्यमय मामलों के कारण बालकन प्रायद्वीप में तूफ़ान उठ सकता है। इसके कारण ज़ार और रूस के उच्च श्रेणी के मनुष्य अप्रसन्न हो गये थे। अतएव दूसरी समस्या को हल करने में अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा।

यह समस्या अधिक महत्व लिये हुये थी। तुर्की साम्राज्य में यूनानी चर्च के अनुयायियों की संख्या सन् १८५३ ई० में १ करोड़ १० लाख थी। रूस यूनानी चर्च को मानने वाले देशों में सबसे उच्च स्थान रखता था। अतएव स्वाभाविक रूप से ज़ार स्वयं को तुर्की साम्राज्य में निवास करने वाले यूनानी चर्च के अनुयायियों का संरक्षक समझता था। जब उसके नये राजदूत मैनशीकौफ़ (Menshikoff) ने, जो एक अत्यन्त बुद्धिमान राजनीतिज्ञ तथा अनुभवी पदाधिकारी था, इस अधिकार को सुल्तान से नियमानुसार स्वीकृत कराने का प्रयत्न किया तो पश्चिम की शक्तियां भयभीत हुईं। रूस को उपरोक्त अधिकार कुजुक-कैनार्डजी (Kujuk-Kainardji) की संधि (सन् १७७४ ई०)

यूनानी चर्च के संरक्षण का प्रश्न

से प्राप्त हो चुका था। फिर भी उनका विचार था कि ज़ार धीरे धीरे सुल्तान की स्वाधीनता को समाप्त करना चाहता है। विशेषकर फ्रांस के सम्राट नैपोलियन तृतीय को बड़ी चिन्ता थी। वह सदा से स्वयं को रोमन चर्च का अधीश्वर समझता था। सन् १८५३ ई० की ग्रीष्म ऋतु में यूरोप के राजनीतिज्ञों ने वीयेना नगर में एकत्रित होकर उक्त प्रश्न को हल करने का प्रयत्न किया। उन्होंने कोई ऐसा मार्ग ढूंढ निकालने का प्रयत्न किया जिस से ज़ार संतुष्ट हो जाय, परन्तु सुल्तान की स्वाधीनता में किसी प्रकार का अन्तर न आने पाये। इस समय तक पूर्वीय समस्या के अत्यन्त गम्भीर हो जाने का एक विशेष कारण यह भी था कि इसके पूर्व जब सुल्तान ने ज़ार से पृथक संधि करना स्वीकार न किया था तो द्वितीय ने अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दे दी थी। ३ जुलाई सन् १८५३ ई० को रूसी सेना ने वास्तव में प्रुथ नदी को पार किया और मोल्डेविया तथा वौलेकिया पर पूर्ण अधिकार कर लिया। इस प्रकार पूर्वीय समस्या और भी अधिक रहस्यपूर्ण बन गई।
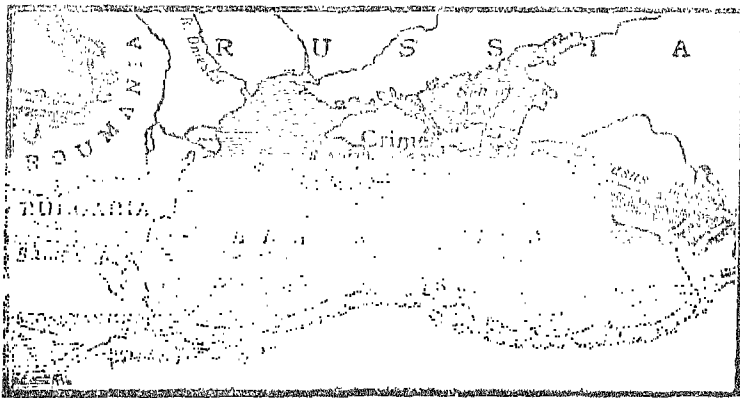
क्रीमिया का युद्ध

ज़ार निकोलस की महत्वाकांक्षा

इस प्रकार के कार्यों से ज़ार निकोलस प्रथम के साहस और महत्वाकांक्षा का परिचय मिलता है। परन्तु उसने जो व्यवहार किया था उससे किसी को भी आश्चर्य न होना चाहिये था। रूसके शासक बहुत पहले से इस प्रकार का हस्तक्षेप कर रहे थे। कैथरिन महान् के समय से रूस अपने पैर बालकन प्रायद्वीप की ओर फैलाने का प्रयत्न कर रहा था। परन्तु ज़ार निकोलस ने मोल्डेविया और वौलेकिया पर अधिकार करने के पूर्व इस प्रकार का कोई कार्य न किया था। इसके प्रतिकूल वह गत् बीस वर्षों से अन्य शक्तियों से मिलकर इस बात पर ज़ोर दे रहा था कि

तुर्की का अस्तित्व अक्षुण्ण रक्खा जाय। इस नीति के अनुसार उसने उसे मिस्र के पाशा मुहम्मद अली के हस्तक्षेप से बचाने का प्रयत्न किया था। क्रीमिया के युद्ध के प्रारम्भ होने से कुछ ही समय पूर्व उसके विचार अकस्मात बदल गये और वह सुल्तान को 'यूरोप का रोगी' कह कर संबोधित करने लगा, जिसका समाप्त कर देना ही अच्छा था। दूसरे शब्दों में वह अपने अठारहवीं शताब्दी के पूर्वज की भांति सहसा तुर्की के विभाजन पर ज़ोर देने लगा और कैथरिन प्रथम की भांति उसको क्षति पहुँचाकर कीर्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। इस बदली हुई नीति की व्याख्या उसने धीरे धीरे इंग्लैंड के राजदूत सर हैमिल्टन सीमोर (Sir Hamilton Seymour) से, जो सेंट पीटर्सबर्ग में नियत था, कई दिनों की वार्तालाप द्वारा की थी। "तुर्की की स्थिति अत्यन्त गम्भीर है ......ऐसा प्रतीत होता है कि यह देश टुकड़े टुकड़े हो कर रहेगा। ... .हमें एक रोगी, एक बुरी दशा के रोगी से पाला पड़ा है। मैं आपको स्पष्ट शब्दों में बतला देना चाहता हूं कि इसके पूर्व कि समस्त आवश्यक तैयारियां पूर्ण हो सकें यदि वह किसी दिन भी हमारे बीच से बिदा हो जायेगा तो हमको एक बहुत बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ेगा।" निकोलस का प्रस्ताव था कि तुर्की के साम्राज्य का विभाजित कर दिया जाय। रूस का अधिकार कुस्तुन्तुनिया पर हो जाय और इंग्लैंड मिस्र और क्रीट को अपने अधिकार में कर ले। किन्तु इंग्लैंड के मन्त्रियों ने उसके मत को स्वीकार न किया।

नैपोलियन तृतीय की नीति

इस समय यूरोप के राजनैतिक मंच का सब से बड़ा अभिनेता रूस का ज़ार निकोलस प्रथम (१८२५-१८५५) था, जिसकी नीति पर हम दृष्टिपात कर चुके हैं। दूसरा बड़ा अभिनेता फ्रांस का सम्राट नैपोलियन तृतीय (१८५२-१८७०) था। पांचवें अध्याय में हम द्वितीय की वैदेशिक नीति पर प्रकाश डाल चुके हैं और बतला चुके हैं कि वह स्वयं शांतिप्रिय था, परन्तु अपने तथा अपने देश के लिये प्रतिष्ठा तथा गौरव प्राप्त करने के विचार से वह वैदेशिक मामलों में महत्वपूर्ण रीति से भाग लेना चाहता था। जब ज़ार निकोलस की नीति के कारण यूरोप में युद्ध के लक्षण प्रकट हुये तो नैपोलियन तृतीय ने भी इस अवसर से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। उसका विश्वास था कि फ्रांस के निवासी और पोलैंड, इटली तथा जर्मनी आदि के उदार दल के लोग अवश्य उसको सहयोग देंगे। उसको यह भी ज्ञात था कि अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति उसके अनुकूल थी। रूस से युद्ध की दशा में न केवल तुर्की वरन् इंग्लैंड भी उसका सहायक होगा। भूमध्य सागर के पूर्वीय भाग में उसका चाचा नैपोलियन बोनापार्ट ख्याति

तथा सम्मान प्राप्त कर गया था। क्या वह उसका अनुकरण नहीं कर सकता था? क्या रूस से युद्ध करके वह नेपोलियन प्रथम के मास्को के अपमान और अपने सन् १८४० ई० के अपमान का बदला नहीं ले सकता था? इस प्रकार के विचारों तथा कारणों से फ्रांस के सम्राट ने पहले यूनानी चर्च के संरक्षण के प्रश्न को उठाया और जब ज़ार निकोलस ने तुर्की की ओर बढ़ने का प्रयत्न किया तो उसने उसका सामना करने का निर्णय किया। ग्रेट ब्रिटेन के उदार दल के लोगों का सिद्धान्त युद्ध के विरुद्ध था, परन्तु वे ज़ार के विरुद्ध भी थे। उनमें से बहुतों का वहां की जनता की भांति यह विचार था कि यदि उसको तुर्की साम्राज्य में ईसाइयों के संरक्षण का अधिकार दे दिया जायेगा तो वह उस पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न अवश्य करेगा। यदि वह इसमें सफल हो गया तो ब्रिटिश व्यापार तथा भारत से यातायात के लिये बहुत बड़ा संकट उत्पन्न हो जायेगा। सन् १७४० ई० से फ्रांस को तुर्की साम्राज्य में रहने वाले पादरियों के संरक्षण का अधिकार प्राप्त था। इन समस्त बातों पर विचार करके नेपोलियन तृतीय ने बालकन प्रायद्वीप में पूर्ण प्रयत्न से ज़ार का विरोध करने का संकल्प किया। इंग्लैंड में कोब्डन, ब्राइट तथा शांतिप्रिय नीति के अन्य उग्रवादी समर्थक क्रीमिया में युद्ध किये जाने के पूर्णतया विरुद्ध थे। पार्लमेंट के सदस्य भी इस सम्बन्ध में काफ़ी मतभेद रखते थे। इसके होते हुये भी ऐबरडीन के शासन ने क्रीमिया के युद्ध में नेपोलियन तृतीय और सुल्तान की ओर से भाग लेने का निर्णय किया।

इस बीच में यूरोप की बड़ी शक्तियां वीयेना नगर में सम्मेलन करके पूर्वीय समस्या को शान्ति के साथ हल करने का प्रयत्न कर रही थीं। आस्ट्रिया के चांसलर काउंट बूओल (Count Buol) को यथेष्ट आशा थी कि उन्हें अपने उद्देश्यों में अवश्य सफलता मिलेगी। किन्तु अंगरेज राजदूत लार्ड स्ट्रैटफर्ड दि रैडक्लिफ़ (Sir Stratford de Redcliffe) ने जो कुस्तुनतुनिया में नियत था, बना बनाया काम बिगाड़ दिया। समझौते की जो शर्तें वीयेना से ज़ार और सुल्तान के पास भेजी गई थीं, उनका दोनों ने अपने अनुकूल अर्थ निकाला। प्रथम ने तो उन्हें स्वीकार कर लिया, किन्तु द्वितीय ने अंगरेज़ राजदूत के परामर्श से उन्हें अस्वीकार किया। यह एक अत्यन्त उत्तरदायित्वहीन कार्य था जो लार्ड स्ट्रैटफर्ड ने किया था। उसने सुल्तान को पथ भ्रष्ट करके उन शर्तों को अस्वीकृत करा दिया जिनके लिए न केवल यूरोप की बड़ी शक्तियां वरन् तुर्की के शासन ने भी स्वीकृति दे दी थी। अस्तु सुल्तान ने इस आशा में कि फ्रांस और इंग्लैंड अवश्य उसकी सहायता करेंगे, २३ अक्टूबर सन् १८५३ ई०

युद्ध की घोषणा, अक्टूबर, १८५३ ई०

को रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। उपरोक्त शासनों ने अपने आपको ऐसी बुरी परिस्थिति में पाया जिससे मुक्ति पाना कठिन था। उन्हें युद्ध में तुर्की की सहायता करनी पड़ी। लार्ड ऐबर्डीन युद्ध से दूर रहना चाहता था। परन्तु विदेशी शासन का प्रबन्ध पामर्स्टन के अधीन था जो सदा से स्वतंत्रता, कर्मठता और साहस से कार्य करना पसन्द करता था। ४ जनवरी सन् १८५४ ई० को इंग्लैंड और फ्रांस के संयुक्त समुद्री बेड़ों ने काले सागर में प्रवेश किया। मार्च के अन्त में दोनों देशों ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। इस से बहुत पूर्व ज़ार के बेड़े ने तुर्की के समुद्री बेड़े को सिनोपी (Sinope) की खाड़ी में नष्ट कर दिया था (नवम्बर सन् १८५३ ई०)। जनवरी सन् १८५५ ई० में सार्डिनिया भी मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में सम्मिलित हुआ।

क्रीमिया के युद्ध की घटनाओं को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम भाग मार्च से जौलाई सन् १८५४ ई० तक चला। रूस की सेनाओं ने, जो मोल्डेविया तथा वोलेकिया के प्रदेशों पर अधिकार किये हुये थीं, २३ मार्च को डैन्यूब नदी को पार करके सिलिस्त्रिया (Silistria) नगर का घेरा डाला। २९ मई को अंगरेज़ी और फ्रांसीसी बेड़े ने, जो काले सागर में तुर्की के तट पर पड़े हुये थे, वार्ना के बन्दरगाह में सेनायें उतारीं। सुल्तान ने सिलिस्त्रिया की सुरक्षा का इतना सुन्दर प्रबन्ध किया कि ज़ार कुछ करते न बना। उधर अंगरेज़ी और फ्रांसीसी सेनायें भी वार्ना से उसकी सहायता के लिये बढ़ रही थीं। यह देखकर ज़ार ने घेरा उठा लिया। उसकी सेनायें डैन्यूब नदी को पार करके लौट गई और धीरे धीरे मोल्डेविया तथा वोलेकिया से भी हटा ली गईं। इस प्रकार जौलाई के मास तक रूस तुर्की के विरुद्ध कोई विशेष सफलता प्राप्त न कर सकता।

महत्त्वपूर्ण घटनायें

युद्ध का द्वितीय भाग सितम्बर सन् १८५४ ई० से सितम्बर सन् १८५५ ई० तक स्थित रहा। इसमें मित्र राष्ट्रों के राजनीतिज्ञों ने अत्यन्त बुद्धिमानी तथा दूरदर्शिता से काम लिया। रूस को नीचा दिखलाने के उद्देश्य से उसके आन्तरिक भाग में सेनायें न भेज कर उन्होंने क्रीमिया के प्रायद्वीप में शत्रु को पराजय स्वीकार करने को विवश किया। इस प्रकार वे उस बड़ी पराजय और लज्जा से बच गये जो नैपोलियन बोनापार्ट को सहन करनी पड़ी थी। उनके पास युद्ध सामग्री तथा अन्नादि पहुँचाने का समुद्री मार्ग भी साफ़ रहा। इसके प्रतिकूल भी उन्हें उक्त प्रायद्वीप में सहस्रों विपत्तियों का सामना करना पड़ा। समुद्री मार्ग के होते हुये भी उनके पास सामान देर से पहुँचता था। अंगरेज़ी शासन की अयोग्यता तथा प्रतिकूल

जलवायु के कारण भी उन्हें यथेष्ट हानि उठानी पड़ी। रूस की सेनाओं को भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसलिये कि देश का बहुत बड़ा भाग एक प्रकार के दलदल में परिवर्तित हो गया था, जिसके द्वारा उन्हें रेल मार्गों तथा उत्तम सड़कों के बिना लम्बी यात्रा करनी पड़ती थी। मित्र राष्ट्रों की ओर से फ्लारेंस नाइटिंगेल ने रोगियों की सेवा कर के यथेष्ट ख्याति प्राप्त की। उसके द्वारा उन विपत्तियों पर भी प्रकाश पड़ा जो अंगरेज़ सैनिकों को क्रीमिया के युद्ध में सहन करनी पड़ी थीं। अतएव अंगरेज़ी शासन ने आवश्यक सुधारों की ओर ध्यान दिया।

सितम्बर सन् १८५४ ई० में एल्मा (Alma) का युद्ध हुआ। इसमें सफलता प्राप्त करके मित्र राष्ट्रों ने अपनी सेनायें क्रीमिया के प्रायद्वीप में उतार दीं। इसके पश्चात् युद्ध की सब से प्रसिद्ध घटना सेबस्टोपोल (Sebastopol) का घेरा है, जो लगभग एक वर्ष तक चलता रहा। प्रारम्भ में मित्र राष्ट्रों का आक्रमण निर्बल प्रमाणित हुआ। इसके विरुद्ध रूसियों ने बड़ी दृढ़ता तथा योग्यता से दुर्ग की रक्षा की। प्रारम्भ में अंग्रेज़ी सेना का सेनापति लार्ड रेगलन् (Lord Reglan) और फ्रांसीसी सेना का सेनापति सेंट आरनाड (Saint-Arnaud) था। इनसे कुछ करते न बना। इसके अतिरिक्त वे अपने पदों पर अधिक काल तक आसीन भी न रहे। इसके विरुद्ध रूसी पदाधिकारी टॉडलेबन (Todleben) तथा मैनशीकोफ़ (Menshikoff) आदि ने दुर्ग की रक्षा का उत्तम प्रबन्ध कर के अधिक ख्याति प्राप्त की। दो बार रूसियों ने पूर्ण प्रयत्न से घेरे को हटाने की कोशिश की। परन्तु २५ अक्टूबर को उन्हें बालाक्लावा (Balaclava) के युद्ध में और ५ नवम्बर को इंकरमान (Inkerman) के युद्ध में पूर्ण पराजय मिली। अतएव वे अधिक काल तक गढ़ की रक्षा करने में सफल न हुये। अन्त में ६ सितम्बर सन् १८५५ ई० को रूसियों ने दुर्ग के तोपखाने में आग लगा दी और उसे शत्रु के अधीन छोड़ दिया। मित्र राष्ट्रों के विजयी होने का एक विशेष कारण यह था कि इंग्लैंड में पामर्स्टन ने प्रधान मन्त्री के पद पर आसीन होकर युद्ध का प्रबन्ध उचित ढंग से कर दिया था। उधर सार्डिनिया के बादशाह ने भी युद्ध में सम्मिलित होकर इंग्लैंड और फ्रांस के लिये कुमक भेज दी थी। सबसे प्रमुख बात यह थी कि फ़र्वरी सन् १८५५ ई० में ज़ार निकोलस प्रथम की मृत्यु हो गई थी और उसका स्थान उसके पुत्र सिकन्दर द्वितीय (१८५५–१८८१) ने ले लिया था। निकोलस प्रथम कहा करता था कि जनवरी तथा फ़र्वरी हमारे सबसे योग्य सेनापति हैं, किन्तु क्रीमिया के युद्ध में ये सेनापति भी उसके लिये अधिक लाभप्रद सिद्ध न हो सके थे।

ज़ार निकोलस मैटर्निक तथा स्वतन्त्र व लोकतन्त्रता के अन्य विरोधियों का

सहयोगी था। वह उस युग के लिये नाम मात्र को भी उपयुक्त न था जो राजनैतिक स्वाधीनता तथा राष्ट्रीय एकीकरण को महत्व देता था। वह ईसाई धर्म का कट्टर अनुयायी और महत्वाकांक्षी शासक तथा रूस व रूसी संस्कृति का पोषक था। उसका यह भी विचार था कि वह ईश्वर की ओर से इस लिये भेजा गया है कि संसार में शान्ति व व्यवस्था स्थापित करे। इन सब बातों के अतिरिक्त न उसका देशी शासन ही निर्दोष था और न सेनायें ही पूर्ण रूप से सज्जित थीं। जो युद्ध उसने प्रारम्भ किया था उसे उसका पुत्र अधिक काल तक स्थापित न रख सका। आस्ट्रिया के बादशाह ने जब दूसरी बार युद्ध में सम्मिलित होने की धमकी दी तो उसने मार्च सन् १८५६ ई० में मित्र राष्ट्रों से सन्धि करली।
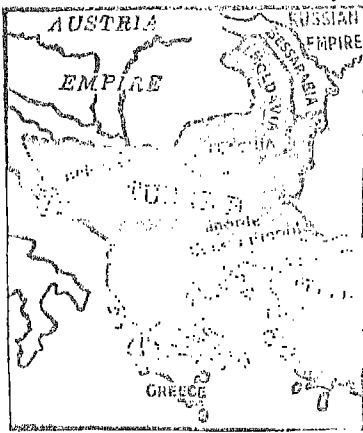
बालकन प्रायद्वीप एड्रियेनोपल की संधि के पश्चात् सन्, १८२९ ई०
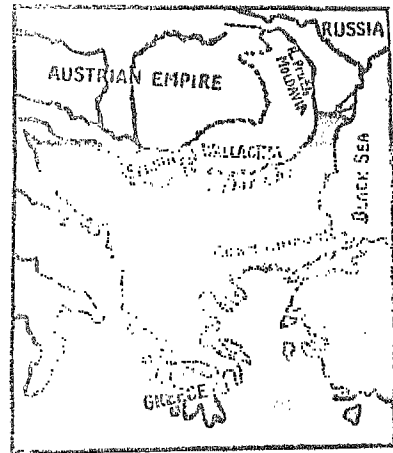
बालकन प्रायद्वीप पेरिस की संधि के पश्चात्, सन् १८५६ ई०

सन्धि की शर्तें निश्चित करने के लिए एक कांग्रेस फ्रांस की राजधानी पेरिस में आमन्त्रित की गई। इसमें फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, आस्ट्रिया, सार्डिनिया, तुर्की तथा रूस ने भाग लिया। प्रशा ने युद्ध में कोई भाग न लिया था, किन्तु वह सन् १८४१ ई० में अन्य महाशक्तियों के साथ दानियाल और बौस्पोरस के जलसंयोजकों के सम्बन्ध में एक प्रतिज्ञापत्र (Convention of the Straits) पर हस्ताक्षर कर चुका था। अतएव १६ मार्च को जब काले सागर की स्वाधीनता

पेरिस की संधि, मार्च सन् १८५६ ई०

का प्रश्न उपस्थित हुआ तो उसको भी प्रतिनिधित्व दे दिया गया तथा अन्त में उसने भी सन्धि की प्रतिज्ञाओं पर हस्ताक्षर किये। सम्मेलन का अधिवेशन २५ फर्वरी को प्रारम्भ होकर आठ सप्ताह तक होता रहा। उसमें प्रत्येक देश से दो प्रतिनिधि सम्मिलित हुये। इनमें से कुछ के नाम इतिहास में विशेष रूप से विख्यात हैं, जैसे ग्रेट ब्रिटेन का प्रतिनिधि लार्ड क्लैरेन्डन (Lord Clarendon), आस्ट्रिया का प्रतिनिधि काउन्ट बूओल (Count Buol), सार्डिनिया का प्रतिनिधि कैवूर (Cavour) तथा तुर्की का प्रतिनिधि प्रधान मन्त्री अलीपाशा (Ali Pasha)। सम्मेलन की अध्यक्षता का श्रेय फ्रांस के बाह्य मन्त्री एम० वालेवस्की (M. Walewski) को प्राप्त हुआ।

सम्मेलन के कार्य में किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित नहीं हुई। जो निर्णय किये गये वे किसी देश के लिए कठोर तथा असहनीय न थे। जैसा कि फ्रांस के एक प्रतिनिधि ने कहा था, "जब कोई व्यक्ति ३० मार्च की संधि की शर्तों पर दृष्टिपात करता है तो उसे कोई ऐसा प्रकट लक्षण दिखाई नहीं पड़ता जिससे यह कहा जा सके कि युद्ध में कौन विजयी हुआ है तथा किसको पराजय प्राप्त हुई है।' यूरोप के सभी राष्ट्रों को काले सागर द्वारा व्यापार करने की आज्ञा दे दी गई, किन्तु उनका कोई जहाज युद्ध का झण्डा लगा कर उसमें प्रवेश नहीं कर सकता था। रूस तथा तुर्की में से कोई भी काले सागर के तट पर शस्त्रागार निर्मित नहीं कर सकता था। यह एक ऐसा प्रतिबन्ध था जिसे कोई भी महाशक्ति सहन न कर सकती थी। रूस के एक महान व्यक्ति ने इस विषय में अपने विचार इन शब्दों में व्यक्ति किये थे,—'यह बात प्राकृतिक नियम के विरुद्ध है कि एक साम्राज्य जिसकी जनसंख्या ८ करोड़ है अपने ही सागर में युद्ध के जहाज़ न रक्खे।" डेन्यूब नदी भी यूरोप के समस्त राष्ट्रों के लिए खोल दी गई। रूस से तुर्की साम्राज्य के कट्टरपन्थी यूनानी चर्च (Orthodox Greek Church) के संरक्षण का अधिकार ले लिया गया। दक्षिणी बेसेराबिया भी उसके साम्राज्य से पृथक करके सुल्तान के साम्राज्य में सम्मिलित कर दिया गया। इस प्रकार रूस की सीमा डेन्यूब नदी से पीछे हट गई तथा भविष्य के लिये रूस और तुर्की के बीच एक वैमनस्य का कारण दूर हो गया। तुर्की यूरोपीय राष्ट्र मण्डल में सम्मिलित कर लिया गया। सभी राष्ट्र उसकी स्वाधीनता तथा सीमाओं की सुरक्षा के उत्तरदायी बनाये गए। इस प्रकार तुर्की को संजीवनी बूटी उपलब्ध हो गई। इसके बदले में सुल्तान ने यह वचन दिया कि मैं सदा अपनी ईसाई प्रजा के साथ उत्तम व्यवहार करूंगा, किन्तु यह आश्वासन केवल सन्धिपत्र तक ही सीमित रहा। सर्विया को स्वायत्त शासन का जो अधिकार प्राप्त था उसका उत्तरदायित्व सब राष्ट्रों ने ग्रहण किया। यह सौभाग्य

मोल्डेविया तथा वौलेकिया को भी प्राप्त हुआ।

पेरिस की सन् १८५६ ई० की संधि अर्वाचीन यूरोप के इतिहास में विशेष महत्व रखती है। जैसा कि बतला चुके हैं, इससे तुर्की के साम्राज्य को दीर्घ आयु प्राप्त हुई। पश्चिमी राष्ट्रों को चिन्तित करने वाला वह भय, कि रूस अपने पैर भूमध्य सागर तक फैलाने में सफलता प्राप्त कर लेगा तथा उन्हें पूर्वीय देशों तक पहुँचने में कठिनाई होगी, समाप्त हो गया। रूस का बड़ा अपमान हुआ। इसके पश्चात् वह यूरोप की ओर बढ़ने के स्थान में एशिया की दिशा में बढ़ने का प्रयत्न करने लगा। नैपोलियन तृतीय की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। युद्ध से लौटे हुये सैनिकों तथा उसकी प्रजा ने 'सम्राट ज़िन्दाबाद' के नारे लगाये। युद्ध के समय में अस्ट्रिया का व्यवहार ऐसा रहा था जिससे रूस सदा के लिये उसका शत्रु बन गया। पेरिस की संधि से उस नीति तथा व्यवस्था को भी भारी धक्का लगा जो सन् १८१४ ई० में वीयेना के सम्मेलन में निश्चित की गई थी।

आठवां अध्याय

इटैली का एकीकरण

(१८१५–१८७०)

मैटर्निक ने एक बार कहा था कि इटैली केवल एक भौगोलिक चिह्न मात्र है। यह बात सन् १८१५ ई० की है। इसके कई शताब्दियों पूर्व से उपरोक्त देश की यही अवस्था थी। कई बार इसका प्रयत्न किया जा चुका था कि उसके विभिन्न राज्यों अथवा भागों को सम्मिलित करके एक सुदृढ़ तथा संयुक्त राज्य बना दिया जाय, परन्तु इस कार्य में सफलता नहीं मिली थी। इटैली की संपत्ति, उसके विद्या तथा कला के अनुपम उदाहरणों और उसकी भूमि की उत्पादन शक्ति को देखकर प्रत्येक सफल आक्रमणकारी यही प्रयत्न करता कि उसे अपने साम्राज्य में सम्मिलित करले। रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात् वहाँ दीर्घ काल तक पूर्वीय गोथों तथा लोम्बार्ड जाति के कारण विद्वेष रहा। तत्पश्चात् होली रोमन सम्राट और पोप के पारस्परिक वैमनस्य के कारण इटैली का प्रत्येक नगर कलह और कुव्यवस्था का केन्द्र बना रहा। जब मध्यकालीन युग का अन्त हुआ तो फ्रांस के बादशाह चार्ल्स अष्टम् (१४८३–१४९८) ने इटैली में युद्ध किया, जिसके कारण देश में रक्तपात होता रहा तथा यूरोप के कुछ शासक वहां अपना अधिकार स्थापित करने का प्रयत्न करते रहे। वहाँ के निजी शासक भी उनकी सहायता से अपनी शक्ति में वृद्धि करते रहे तथा अपने हित के लिये राष्ट्रीय भावनाओं का बलिदान देते रहे। ऐसी दशा में इटैली की दशा नित्यप्रति बिगड़ती गई और मैकिअवैली (Machiavelli) जैसे देशभक्तों के प्रयत्नों के प्रतिकूल भी उस में सुधार न हो सका।

उन्नीसवीं शताब्दी में इटैली की स्वाधीनता तथा एकीकरण के मार्ग में कई

कठिनाइयां थीं। इनमें सबसे बड़ी कठिनाई यह थी, कि वहाँ अधिकतर विदेशियों का शासन स्थापित था। जैसा कि हम इसके पूर्व बतला चुके हैं, उसके उत्तरी भाग में अस्ट्रिया का शासन था। टस्कनी, मोडेना तथा पारमा में अस्ट्रिया के अधीन हैप्सबर्ग वंश के सम्बन्धी तथा मित्र शासन करते थे। सुदूर दक्षिण में दो सिसलियों (नेपिल्ज़ और सिसली) के राज्य में बूरबन वंश का एक बादशाह शासन कर रहा था। बीच के भाग में पोप का शासन था। यह भी इटेली के एकीकरण के लिये एक बहुत बड़ी बाधा थी। पोप के शासन के सम्बन्ध में एक आनन्द की बात यह थी कि मध्यकाल में पोप ग्रेगारि प्रथम (५९०—६०४) ने इसकी स्थापना इस विचार से की थी कि इस प्रकार ईसाई धर्म का अधीश्वर लोम्बार्ड जाति के विरुद्ध, इटेली के निवासियों की रक्षा विशेष रूप से कर सकेगा। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में जब उसके एकीकरण का सवाल उठाया गया तो पोप के शासन ने उसके मार्ग में एक बहुत बड़ी कठिनाई का रूप धारण किया। जब तक देश के मध्य भाग में पोप का शासन विद्यमान था तब तक उसके उत्तरी तथा दक्षिणी भागों में एकीकरण असम्भव था। और पोप के शासन का किस प्रकार अंत किया जाय, यह भी एक गम्भीर प्रश्न था। विशेषकर ऐसी दशा में जब यूरोप में उसके अनुयायियों की संख्या अगणित थी तथा कुछ शासक भी ऐसे थे जो उसके शक्तिशाली समर्थक तथा सहायक थे। इटेली के एकीकरण में एक अन्य गम्भीर कठिनाई यह थी कि उसके निवासियों में उस समय तक सार्वजनिक रूप से राष्ट्रीयता का अभाव था। यूनान की भांति इटेली भी एक ऐसा देश था जहाँ प्रायः प्रत्येक नगर और शहर की परम्परायें पृथक थीं। ऐसी स्थिति में एकीकरण का कार्य अत्यन्त दुष्कर था। इस सम्बन्ध में मेटर्निक ने लिखा था कि "इटेली में एक प्रान्त दूसरे प्रान्त के विरुद्ध है। एक नगर दूसरे नगर के विरुद्ध है। एक वंश दूसरे वंश के विरुद्ध है और एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के विरुद्ध है।"

एकीकरण के मार्ग में कठिनाइयाँ

जब नेपोलियन बोनापार्ट ने इटेली को अपने अधिकार में कर लिया तो उसके इतिहास में एक नवीन अध्याय का प्रारम्भ हुआ। दूसरे अध्याय में हम इस विषय पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाल चुके हैं। नेपोलियन ने अस्ट्रिया निवासियों तथा बूरबन वंश के शासनों का अन्त कर दिया। पोप के राज्य को फ्रांस के शासन में सम्मिलित कर लिया गया एवं कुछ समय तक समस्त देश एक ही प्रकार के कानून तथा शासन पद्धति के अधीन रहा। किन्तु वीयेना की कांग्रेस में यूरोप के राजनीतिज्ञों ने

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति का प्रभाव

इस व्यवस्था का अकस्मात् अन्त करके घड़ी की सुई को उल्टा घुमा दिया। "इटैली के देश में एक ओर से दूसरी ओर तक, लेखनी के एक ही प्रयोग से, हमारी विभिन्न प्रकार की स्वतन्त्रताओं, हमारे सम्पूर्ण सुधारों तथा हमारी समस्त आशाओं का अन्त कर दिया गया। दीर्घकालीन व्यवस्था (Ancien Regime) फिर से स्थापित कर दी गई। जो पूर्व के समान दोषयुक्त थी किन्तु जिसका एक सिद्धान्त प्रतिहिंसा भी था।" इसके प्रतिकूल फ्रांसीसी क्रांति के वरप्रसाद नेपोलियन बोनापार्ट ने इटैली निवासियों के हृदयों पर यह बात पूर्ण रूप से अंकित कर दी थी कि वे एक राष्ट्र हैं। वे इस पाठ को किसी दशा में भी विस्मरण करने के लिये तैयार न थे। उन्हें क्रान्ति के कुछ सुन्दर परिणामों का अनुभव भी हो चुका था। इटैली में एकता उत्पन्न हो गई थी। वहाँ जागीरदारी प्रथा की समाप्ति कर दी गई थी। क़ानून की दृष्टि में सबका दर्जा बराबर कर दिया गया था तथा धार्मिक स्वतन्त्रता, प्रेस की स्वतन्त्रता और स्वायत्त शासन का प्रवाह प्रारम्भ हो गया था। इन सुधारों के आधार पर हम कह सकते हैं कि इटैली में राष्ट्रीय शासन की आधारशिला रख दी गई थी। इससे वहाँ के निवासियों के राष्ट्रीय उत्साह तथा देशभक्ति की भावनाओं में भी वृद्धि हो गई थी।

सन् १८१५ ई० के बाद की दशा

इटैली की यह दशा वीयेना की कांग्रेस से पूर्व की है। उपरोक्त कांग्रेस के समय यूरोप के राजनीतिज्ञों ने उसके सम्बन्ध में ऐसा बुरा निर्णय किया कि वहाँ पुरानी व्यवस्था लौट आई और राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय एकीकरण के सिद्धान्त को भारी धक्का लगा। सन् १८१५ ई० के पश्चात् उसकी क्या दशा थी इसका विशद वर्णन इसके पूर्व किया जा चुका है (अध्याय २)। अतएव उस पर पुनः प्रकाश डालने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इस सम्बन्ध में हम इटैली के विख्यात लेखक मात्सीनी के लेख से कुछ उद्धरण अवश्य प्रस्तुत करेंगे, जिनसे यह प्रकट होगा, कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में जब इटैली के एकीकरण का प्रश्न पुनः उठाया गया, उस समय इस देश की क्या दशा थी। मात्सीनी के यह उद्धरण सन् १८४५ के हैं,—"हमारा न कोई विशेष झण्डा है, न कोई राजनैतिक नाम, न यूरोपीय राष्ट्रों के बीच हमारा कोई स्थान है। हमारे पास न कोई सम्मिलित केन्द्र है, न कोई सम्मिलित इतिहास है और न कोई सम्मिलित बाज़ार। हम आठ राज्यों में विभक्त हैं,—लोम्बार्डी, पारमा, टस्कनी, मोडेना, लुका, पोप का राज्य, पीडमोंट तथा नेपिल्स का राज्य। ये सब एक दूसरे के स्वाधीन हैं। न उन में किसी प्रकार की एकता है, न उनका आदर्श एक है और न उनमें किसी प्रकार का व्यवस्थित सम्बन्ध ही है।............

प्रतिबन्धों अथवा असह्य करों के कारण इटैली के प्रत्येक राज्य में सबसे आवश्यक वस्तुओं के आयात तथा निर्यात में अवरोध उपस्थित होता है। और हम न स्वतन्त्रता-पूर्वक उन वस्तुओं को बेच सकते हैं जो हमारे पास आवश्यकता से अधिक हैं और न परस्पर उन वस्तुओं को बदल सकते हैं जिनकी हमें आवश्यकता अनुभव होती है। ......इन राज्यों में से किसी में भी न प्रेस को स्वतन्त्रता प्राप्त है, न सम्मिलित रूप से कार्य करने की स्वतन्त्रता है; न भाषण की स्वतन्त्रता है और न सम्मिलित रूप से प्रार्थनापत्र प्रेषित करने की स्वतन्त्रता है। न विदेशों से पुस्तकें मँगाने की स्वतन्त्रता है, न शिक्षा सम्बन्धी स्वतन्त्रता है और न किसी अन्य प्रकार की स्वतन्त्रता है।"

गुप्त समाज

ऐसी दशा में आवश्यक था कि इटैली में गुप्त समाजों को प्रोत्साहन मिले। इनका कार्य गुप्त रीति से शासनों का सामना करना तथा एकीकरण व उन्नति के सिद्धान्तों को आगे बढ़ाना था। इनका उल्लेख कई अवसरों पर पहले भी हो चुका है। इसी प्रकार के समाज यूरोप के अन्य देशों में भी स्थापित किये गये थे। उन्होंने वहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़ाने में योग दिया था। इटली में उस समय कई गुप्त समाज काम कर रहे थे। इनमें सबसे श्रेष्ठ स्थान नेपिल्ज़ को 'कारबोनारि' अथवा 'कोयला उत्पन्न करने वालों' की संस्था को प्राप्त था। उसका स्पष्ट वर्णन द्वितीय अध्याय में किया जा चुका है। इस समय उसने उक्त देश के नवयुवकों में राष्ट्रीयता का संचार करने तथा उनके राजनैतिक आन्दोलन में अधिक सहायता प्रदान की थी। किसी समय फ्रांस का सम्राट नेपोलियन तृतीय भी उसका सदस्य रह चुका था। इस प्रकार के समाजों का सब से बड़ा केन्द्र नेपिल्ज़ के राज्य में था। इसी राज्य को 'कारबोनारि' को जन्म देने का श्रेय भी प्राप्त था। इन समाजों तथा समितियों के विषय में हम चाहे प्रतिकूल मत स्थिर क्यों न करें, परन्तु हमें इस बात को स्वीकार करने में संकोच न करना चाहिये कि उन्होंने सन् १८१५ ई० तथा सन् १८५० ई० के बीच इटैली के निवासियों के उत्साह को बढ़ाने का सब से अधिक प्रयत्न किया था। उनका जन्म इसलिये हुआ था कि उनको अन्य रीतियों से अपने विचारों को प्रकाशित करने की स्वतन्त्रा प्राप्त न थी। इस सम्बन्ध में इटैली के विख्यात देशभक्तों तथा लेखकों ने कुछ इस प्रकार के विचारों का प्रकाशन किया है जिनसे प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ उपदेश ग्रहण कर सकता है। "जब तक तुम्हारे लिये किसी कार्य को करने का कोई नैतिक उपाय सम्भव हो, किसी भी हिंसात्मक उपाय का प्रयोग कदापि न करो। किन्तु जब नैतिक उपाय से कार्य सम्पन्न न हो सके तथा अत्याचार और अनाचार इतना अधिक बढ़ जाय कि जिस बात को तुम

ाय संगत समझते हो, उसको विदित करने के समस्त उपयुक्त साधन
क किये जायें, जब विचारों का प्रकाशन संगीनों के बल से रोक दिया जाय तब
ी दशा में अपना कार्य स्वतन्त्रतापूर्वक करो। यदि तुम्हें विश्वास हो कि न्याय
म्हारे पक्ष में है तथा इसके अतिरिक्त भी तुम्हारे सहयोगियों की संख्या कम
तो अपने हाथों को सकोड़ लो और कारावास का जीवन व्यतीत कर के अथवा
ूली पर अपने प्राणों की आहुति देकर अपने सिद्धान्तों का समर्थन करो।
नको यह अधिकार कदापि उपलब्ध नहीं है कि अपने देश को व्यर्थ गृह-
द्ध में व्यस्त कर दो। किन्तु यदि तुम्हारा बहुमत है, यदि तुम्हारे उद्गार
ाखों के उद्गार हैं तो ऐसी दशा में तुम्हें उठकर खड़ा हो जाना चाहिये तथा
क्ति के द्वारा अत्याचार तथा अनाचार का अन्त कर देना चाहिये।"

पेरिस की सन्धि के कुछ वर्ष पश्चात् यूरोप के अन्य देशों की भाँति इटैली
भी राजनैतिक आन्दोलन हुये। ये आन्दोलन विभिन्न राज्यों के शासनों के
विरुद्ध किये गये थे। इनका मुख्य उद्देश्य वहाँ संविधान की स्थापना था। जब किसी ऐसे देश में जहाँ कोई बादशाह शासन करता है, संविधान स्थापित हो जाता है तो उसके द्वारा वहाँ के शासकों

राजनैतिक आन्दोलन, सन् १८२० व १८३०ई०

ा अधिकार सीमित कर दिये जाते हैं। परन्तु इटैली के विभिन्न शासक इस प्रकार
ापने अधिकारों को सीमित करवाने के लिये तत्पर न थे। अतएव उनके विरुद्ध
ान्दोलन किये गये। सन् १८२० ई० में नेपिल्ज़ और पीडमांट में और सन्
८३० ई० में पारमा, मोडेना और पोप के राज्य में क्रान्तियाँ हुई, परन्तु वे सफल
हो सकीं। अस्ट्रिया की सहायता से वे सब समाप्त कर दी गईं और उक्त राज्यों के
ासकों ने शासन के कार्य में पूर्व से भी अधिक कठोरता और निर्दयता से
ाम लेना प्रारम्भ कर दिया। उपरोक्त क्रांतियों से कम से कम यह बात पूर्ण रूप से
पष्ट हो गई कि इटैली की राजनैतिक उन्नति और एकीकरण के मार्ग में अस्ट्रिया
ा शासन कंटक है एवं जब तक वे उस से छुटकारा न पा लेंगे तब तक वे अपने
द्देश्य की पूर्ति में कृतकार्य न होंगे। अतएव विभिन्न नेताओं तथा दलों ने अपने
ारस्परिक वैमनस्य को विस्मृत करके इस ओर विशेष रूप से ध्यान दिया।
ेटर्निक ने एक बार कहा था, "जो राजनैतिक व्यवस्था सन् १८१५ ई० में स्था-
पित की गई थी उसने अस्ट्रिया को स्वाभाविक रीति से इटैली की सार्वजनिक शांति
ा संरक्षक तथा उत्तरदायी बना दिया है।" जब अस्ट्रिया के चान्सलर और राज-
ीतिज्ञ को अपने उत्तरदायित्व का इतना अधिक ध्यान था तो आवश्यक था कि
टैली का छोटे से छोटा शासक भी देशभक्तों को चुनौती दे तथा अस्ट्रिया की

सहायता से राजनैतिक आन्दोलन व क्रांतियों को तुरन्त ही समाप्त कर देने दावा करे। मैटर्निक शासन में आधुनिक प्रकार के सभी सुधारों के विरुद्ध थ वह इस बात से पूर्णतया परिचित था कि जब क्रान्ति का प्रारम्भ कर दिया ज है तो जिस स्थान पर उसके जन्मदाता उसको समाप्त कर देना चाहते हैं उ वह बहुत आगे बढ़ जाती है। मैटर्निक का विचार बिल्कुल ठीक था। परन्तु इस बात को भी विस्मरण न करना चाहिये था कि जब उन्नति का मार्ग अनु रीति से अवरुद्ध कर दिया जाता है तो परिणाम यह होता है कि इसके पश्‍ अधिक उग्र परिवर्तन कर देने पड़ते हैं। अस्तु इटैली के देशभक्तों की बुद्धि यही आया कि यदि उन्हें अपने प्रयत्नों तथा उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करनी है आवश्यक रूप से उन्हें सब से पूर्व विदेशी सत्ता का अन्त करना होगा।

इस समय इटैली के देशभक्त कई दलों में विभाजित थे, किन्तु उन स निर्दिष्ट स्थान एक ही था। वे इस सम्बन्ध में भी एक मत थे कि जो श सम्पूर्ण इटैली के लिये निर्धारित किया जाय वह ः पद्धति का होना चाहिये। इस प्रकार का संविधान स निया के लिए सन् १८४८ ई० में निर्मित किया जा चुका

राजनैतिक दल

अब देशभक्तों की दृष्टि सम्पूर्ण इटैली की ओर थी, न कि विभिन्न राज्यों की ओ उपरोक्त देश के कवि, उपन्यासकार, नाटककार और इसी प्रकार के अन्य व्यक्ति उदार सिद्धान्त पर ज़ोर दे रहे थे। उनके कारण मध्यवर्ग के लोगों में य जागृति उत्पन्न हो गई थी। इसी सिद्धान्त को राजनैतिक दल भी महत्व दे रहे इनमें तीन प्रमुख थे :—(१) गणतन्त्रवादी (Republicans), (२) संघ शासन के समर्थक (Federalists) तथा (३) राजतंत्रवादी (Royalists इनमें से प्रथम दो दलों को स्वदेश में स्वाधीनता तथा एकीकरण के स्थ करने में सफलता न मिली; केवल राजतंत्रवादियों को ही इस गुरुतर का सफलता मिली।

प्रथम दल, जो उदार सिद्धान्त के उग्रवादी विचार रखता था, इटै विख्यात लेखक जोज़ेफ़ मात्सीनी (Joseph Mazzini) की अध्यक्षता में स्थ किया गया था। मात्सीनी (१८०५-१८७२) जि का निवासी तथा एक विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर क था। चालीस वर्ष (१८३०-१८७०) तक वह इटै स्वाधीनता तथा एकीकरण के लिये बड़ी कर्मठता से करता रहा। सन् १८३० ई० में वह देश से निर् किरदया गया। वह मार्सेल्ज़ चला गया और वहां 'नवयुवक इटैली' ना

मात्सीनी और उसकी संस्था 'नवयुवक इटैली'

संस्था की नींव डाली। सन् १८३७ ई० में वह इंग्लैंड में आया और स्वदेश के लिये अंगरेजों की सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहा। रोम में सन् १८४९ ई० में जो गण-राज्य स्थापित किया गया था, उसकी स्थापना के लिये मात्सीनी ने विशेष रूप से प्रयत्न किया था। इसके पश्चात् उसके दल का तो पतन हो गया, किन्तु इस महान् कार्य में जो उसे सब से अधिक प्रिय था, वह कैवूर तथा गारीबाल्डी की सहायता करता रहा (१८५९-१८६०)। मार्च सन् १८७२ ई० तक जब उसकी मृत्यु हुई, इटैली की स्वाधीनता और एकीकरण का कार्य सम्पूर्ण हो चुका था।

मात्सीनी गणतन्त्रवादी सिद्धान्त के उग्र रूप का समर्थक था। युवावस्था में वह देशभक्तों के क्रांतिकारी समाज 'कारबोनारि' का सदस्य रह चुका था। उसके एक संघर्ष में भाग लेने के कारण वह निर्वासित कर दिया गया था। उसने अपनी 'नवयुवक इटैली' नाम की संस्था में केवल ४० साल से कम के शिक्षित लोगों को भर्ती किया था। यह संस्था गैर-कानूनी न थी। उसका कार्य समस्त देश में विभिन्न श्रेणी के लोगों में जागृति उत्पन्न करना तथा देशी व विदेशी निरंकुश शासकों से मुक्ति प्राप्त करना था। उनको हटाकर वह समस्त इटैली के लिये एक सम्मिलित 'रोमन गण-राज्य' स्थापित करना चाहता था। इसमें सन्देह नहीं कि मात्सीनी संगठन और शासन के कार्य में बहुत पीछे था, परन्तु निर्वासनकाल में फ्रांस तथा इंग्लैंड में रहकर उसने जो अगणित पुस्तकें, पत्र तथा आदेश आदि प्रकाशित किये थे, उनको पढ़कर इटैली के निवासियों का उत्साह व साहस अत्यन्त अधिक हो गया था। निर्वासनकाल का अन्त होने पर जब वह लौट आया तब भी वह अपने लेखों तथा व्यक्तिगत विशेषताओं द्वारा स्वदेश की सेवा करता रहा। 'नवयुवक इटैली' के सदस्यों की संख्या कम से कम पचास हजार थी। यह संस्था अपने सिद्धान्त के अनुसार समस्त इटैली के लिये गण-राज्य स्थापित करने में तो कृतकार्य नहीं हुई, परन्तु उसने अन्य उपायों से देश की सेवा करने का पूर्ण प्रयत्न किया।

मात्सीनी का सबसे प्रधान समर्थक जोज़ेफ़ गारीबाल्डी (Joseph Garibaldi) था। वह नीस का निवासी था। उसका पिता मछुये का व्यवसाय करता था। प्रारम्भ में वह सार्डिनिया की जलसेना में नाविक था। उस पर भी मात्सीनी की संस्था का प्रभाव पड़ा। वह उसका सदस्य बन गया और उसके सन् १८३४ ई० के आन्दोलन में पूर्ण भाग लिया। अतएव वह देश त्यागने को

गारीबाल्डी

विवश किया गया। दक्षिणी अमेरिका में पहुंच कर वह वहां के आन्दोलनों में भाग लेता रहा। सन् १८४८ ई० में वह लौट आया तथा सार्डिनिया के बादशाह की ओर से युद्ध करता रहा। रोम के सन् १८४६ ई० के क्रांतिकारी शासन में वह भी सम्मिलित था। इस स्थिति से उसने फ्रांसीसियों के विरुद्ध उपरोक्त नगर की रक्षा में विशेष योग्यता प्रदर्शित की। सन् १८५६ ई० में उसने दूसरी बार सार्डिनिया की ओर से आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया। इस वर्ष जौलाई मास में जब फ्रांस के सम्राट नैपोलियन तृतीय ने आस्ट्रिया से वीलाफ्रांका (Villafranca) की सन्धि कर ली तो वह अपने वीर 'लाल कुर्तियों' (Red Shirts) की संक्षिप्त सेना के साथ सिसली चला गया और बूरबन वंश के बादशाह को परास्त करके उसने इस द्वीप पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् वह इटैली की मुख्य भूमि पर चला आया और नैपिल्ज़ के बादशाह को भी युद्ध में परास्त करके दोनों देशों को विक्टर ऐमैनुअल को हस्तगत कर दिया। इस प्रकार उसने देश की स्वाधीनता तथा एकीकरण में विशेष रूप से योग दिया। सन् १८६२ ई० और सन् १८६७ ई० में गारीबाल्डी ने रोम नगर पर अधिकार करने का प्रयत्न किया, परन्तु वह उसमें कृतकार्य न हो सका। दोनों ही बार उसे इटैली के एकीकरण के युद्ध से हताश होकर सार्डिनिया द्वीप के निकट काप्रेरा (Caprera) के द्वीप में एकान्तवास करना पड़ा। सन् १८७० ई० में वह फ्रांस की ओर से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध करने को गया। २ जून सन् १८८२ ई० को उसकी मृत्यु हो गई।

द्वितीय राजनैतिक दल का सबसे बड़ा नेता विसेंट ज्योबर्टी (Vincent Gioberti, 1801-1852) था, जो पीडमोंट का एक पादरी था। प्राकृतिक रूप से उसके धार्मिक विचार पुराने ढंग के थे, किन्तु राजनैतिक विषयों में वह संधानीय शासन का समर्थक था। उसका कहना था कि इटैली में स्थायी रूप से शांति उसी समय स्थापित हो सकती है जब उसके समस्त राज्यों को सम्मिलित करके एक संधानराज्य (Federation) स्थापित कर दिया जाय। इसके सर्वोच्च शासन पर वह पोप को आसीन करना चाहता था। मात्सीनी तथा गारीबाल्डी के समान उसे भी अपने जीवन का एक भाग निर्वासन में व्यतीत करना पड़ा। बहुत से उच्च श्रेणी के अमीर उमरा (Nobles) तथा पादरी ज्योबर्टी के समर्थक थे। सन् १८४६ ई० से सन् १८४६ ई० तक पोप की सहानुभूति भी उसके साथ थी। इसके पश्चात् जब मात्सीनी ने रोम में गण-राज्य की स्थापना की तो वह उदार सिद्धान्त के सभी आन्दोलनों के विरुद्ध हो गया।

संधानीय-शासन के समर्थक

तीसरे दल में, जिसका मुख्य केन्द्र सार्डिनिया के राज्य में था, वे लोग सम्मिलित थे जो इटैली के समस्त राज्यों को सम्मिलित करके, सर्वोच्च आसन पर बादशाह को बिठलाना चाहते थे, किन्तु वे निरंकुश शासन प्रणाली के कट्टर विरोधी थे। वे देश के लिये उदार सिद्धान्त के अनुसार संविधान निर्मित करने के इच्छुक थे और बादशाह के अधिकारों को पूर्ण रीति से सीमित रखना चाहते थे। उनमें से अधिकतर लोगों का विचार था कि सार्डिनिया का बादशाह इसके लिए सब से उपयुक्त है। अन्य शासकों की तुलना में वह आस्ट्रिया का सामना अधिक सफलता के साथ कर सकता था। सन् १८४८ ई० से पूर्व राजतंत्रवादी दल की स्थापना भी न हुई थी। इसका कारण यह था कि इसके पूर्व सार्डिनिया का राज्य भी अन्य राज्यों की भांति उन्नति और लोकतंत्र के सिद्धान्त के विरुद्ध था। उस समय उसके शासन ने मात्सीनी और गारीबाल्डी जैसे देशभक्तों को भी देश से निर्वासित कर दिया था। उक्त वर्ष से स्थिति में परिवर्तन हुआ और वह धीरे धीरे लोकतन्त्रवादियों का सब से बड़ा सहायक हो गया।

राजतंत्र के समर्थक

राजतन्त्रवादियों का सबसे बड़ा नेता काउंट कैवूर (Count Cavour, 1810-1861) था। उसका जन्म तूरिन के एक प्रतिष्ठित वंश में हुआ था। पीडमौंट के अन्य नवयुवक अभिजात पुरुषों की भांति वह भी शिक्षा प्राप्त करके एक सैनिक पद पर नियुक्त हुआ, किन्तु उसने सन् १८३१ ई० में त्यागपत्र दे दिया। सन् १८४७ ई० से उसने राजनैतिक जीवन प्रारम्भ किया। सन् १८४८ ई० में वह सार्डिनिया की संसद का सदस्य निर्वाचित हुआ। दो वर्ष पश्चात् वह कृषि मंत्री तथा सन् १८५२ ई० में प्रधान मंत्री के पद पर सुशोभित हुआ। प्रारम्भ में कोई भी व्यक्ति यह न बतला सकता था कि यह नाटा क़द रखने वाला सद्भावनापूर्ण तथा अल्प भाषी व्यक्ति किसी दिन इटैली के भाग्य का निर्णय करेगा। कैवूर में शारीरिक शक्ति की कमी अवश्य थी, किन्तु मानसिक शक्ति में बहुत कम लोग उसकी समता कर सकते थे। उसने पुस्तकों के अध्ययन तथा पर्यटन के द्वारा विभिन्न विषयों का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया था। जेनेवा, पेरिस तथा लंदन ये तीनों नगर उसे सब से अधिक प्रिय थे। सन् १८४७ ई० में उसने तूरिन में रहकर एक समाचारपत्र प्रकाशित किया, जो अंगरेज़ी पद्धति के राजतंत्र को महत्व देता था। इटैलियन स्वाधीनता के प्रथम युद्ध में जो १८४८--१८४९ में किया गया था, कैवूर को अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं को प्रकट करने का अवसर न मिल सका था, किन्तु द्वितीय स्वाधीनता

राजतंत्रवादियों का नेता कैवूर

युद्ध में सफलता प्राप्त करके उसने अपने तथा सार्डिनिया के लिये इटैली के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

जो कार्य कैवूर तथा राजतंत्र के अन्य समर्थकों ने अपने लिये निश्चित किया था उसे हम किसी दशा में सरल नहीं कह सकते। वह एक बड़ा ही दुष्कर कार्य था, जिसे केवल योग्य राजनीतिज्ञ तथा विलक्षण शक्ति रखने वाले मन्त्री ही सफलता के निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचा सकते थे। कैवूर को इटैली में आस्ट्रिया के शासन को समाप्त करनी थी, अन्य राजनैतिक दलों को शान्त करना था, विभिन्न राज्यों के दृष्टिकोणों पर ध्यान देना था और सबसे बड़ा कठिनाई यह थी कि उसे पोप की राजनैतिक शक्ति और प्रतिष्ठा का समाप्त करना था। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये आवश्यक था कि यूरोप के जनमत को अनुकूल बनाया जाय तथा किसी शक्तिशाली सहायक की खोज भी की जाय। इन दोनों बातों के पूर्ण होने के अतिरिक्त भी एक कठिनाई यह थी कि सार्डिनिया जैसे छोटे और साधारण शक्ति रखने वाले देश के लिये, आस्ट्रिया जैसी बड़ी यूरोपीय शक्ति का सामना करना कठिन था। किन्तु इस महान् कार्य में भाग्य ने भी प्रथम देश का साथ दिया। इस विषय में एक लेखक का लेख है कि "किसी व्यक्ति की बुद्धि में भी यह बात नहीं आ सकती कि कौन सब से अधिक प्रशंसनीय है, वह बुद्धिमत्ता तथा चातुर्य जिसकी सहायता से यह कार्य किया गया था अथवा आशा के विरुद्ध भाग्यचक्र का योग जिसने उसे निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचाया था।"

सफलता प्राप्ति की तीन श्रेणियाँ

कैवूर ने अपने कार्य में जल्दी नहीं की वरन् वह धीरे धीरे आगे बढ़ा। एक लेखक ने इस कार्य को तीन पृथक श्रेणियाँ बतलाई हैं। प्रथम श्रेणी यह थी कि उसने एक इटैलियन समस्या को जन्म दिया। इसके पश्चात् उसने अत्यन्त गम्भीरता के साथ यूरोपीय राष्ट्रों को उसमें अभिरुचि रखना सिखलाया। यह द्वितीय श्रेणी थी। तृतीय श्रेणी में उसने एक शक्तिशाली मित्र की सहायता से विद्युत गति से आस्ट्रिया के राज्य पर आक्रमण कर दिया। प्रत्येक श्रेणी में कैवूर को कठिनाई का सामना करना पड़ा, किन्तु उसने प्रत्येक श्रेणी में सफलता प्राप्त की और सार्डिनिया की सत्ता को 'संयुक्त इटैली' की सत्ता में परिवर्तित कर दिया। पहले क़दम का उठाना सबसे सरल था, किन्तु इसके लिये भी विशेष परिश्रम, लगन तथा तत्परता की आवश्यकता थी। जिस समय वह सार्डिनिया के राज्य में कृषि मन्त्री बनाया गया था उस समय इटैलियन समस्या का अस्तित्व भी न था। इंग्लैंड, फ्रांस और अन्य देशों के समाचार पत्रों में इटैली की आवश्यकताओं तथा उसके साथ किये गये अवांछनीय व्यवहार का बहुत कम

उल्लेख किया जाता था। परन्तु सन् १८५० ई० के पश्चात् इटेलियन समस्या का जन्म हो गया और उसका हल भी आवश्यक समझा जाने लगा। तूरिन नगर में इटेली के अन्य राज्यों के देशभक्त, जो अपने राज्य में न रह सकते थे, शरणागत हुये थे। वे इसके अभिलाषी थे कि किसी प्रकार उनकी आवाज़ यूरोप निवासियों के कानों तक पहुँचे। अतएव वे विभिन्न देशों के समाचारपत्रों को लेख भेजने लगे। इस प्रकार इटेलियन समस्या का जन्म हुआ। इस बात की आवश्यकता प्रतीत न हुई कि कैवूर उन्हें धन देकर अपनी इच्छानुसार लेख लिखने के लिये विवश करे। इसके प्रतिकूल उसने उन्हें ऐसे अच्छे ढंग से प्रोत्साहित किया जो एक बुद्धिमान और शक्तिशाली मन्त्री को शोभा देता था।

इटेलियन समस्या को जन्म देने के पश्चात् कैवूर को यह चिन्ता हुई कि किसी न किसी प्रकार यह समस्या प्रकट रूप से यूरोप के शासकों और राजनीतिज्ञों के समक्ष प्रेषित की जाये। क्रीमिया के युद्ध के समय इस कार्य के लिये सुन्दर सुयोग हाथ आया। सार्डिनिया को उपरोक्त युद्ध में सम्मिलित होने की क्या आवश्यकता थी? केवल यही कि कैवूर उपरोक्त देश के महत्व में वृद्धि करना चाहता था और इस बात का इच्छुक था कि यूरोप के शासक इटेली की समस्या में अभिरुचि रखने लगें। यदि यूरोप की शक्तियां पूर्वीय समस्या में अभिरुचि रखने तथा उसको उपयुक्त रीति से हल करने को अपना कर्तव्य समझती हैं तो सार्डिनिया भी इस बात का प्रमाण दे सकता था कि वह भी एक यूरोपीय शक्ति है। ऐसी दशा में उसके निवासी तथा राजनीतिज्ञ यह आशा कर सकते थे कि यूरोप की शक्तियां इटेली की समस्या का भी उचित रीति से हल करने की कोशिश करेंगे। उपरोक्त युद्ध में इंग्लैंड और फ्रांस ने तुर्की की ओर से भाग लिया। परन्तु आरम्भ में उसका प्रवाह विशेष रूप से मित्र राष्ट्रों के पक्ष में न था। सन् १८५४ की पतझड़ तक अंगरेज़ी सेनाओं में सैनिकों की कमी अनुभव होने लगी। उस समय तक इंग्लैंड में फ़ौजी भरती की गति भी धीमी थी। कैवूर प्रथम ही इस विषय में अपनी अनुकूलता प्रकट कर चुका था। अतएव मित्र राष्ट्रों ने पीडमोंट के रणबाकुरों को, जो क्रीमियन जलवायु की कठिनाइयों को सहन कर सकते थे, विशेष रूप से प्राप्त करने का प्रयत्न किया। कैवूर ने युद्ध में सम्मिलित होते समय अपना दर्जा इंग्लैंड और फ्रांस के बराबर रक्खा तथा यह शर्त भी उपस्थित की कि उसके अन्त में मित्र राष्ट्र इटेली की स्थिति पर विचार करेंगे, किन्तु यह शर्त स्वीकृति न हो सकी। कारण यह था कि मित्र राष्ट्रों को यह आशा थी कि आस्ट्रिया भी उपरोक्त युद्ध में भाग लेगा। फल यह हुआ कि सार्डिनिया बिना

क्रीमिया के युद्ध में सम्मिलित होना

किसी शर्त के उपर्युक्त युद्ध में सम्मिलित हुआ। कैवूर ने किसी प्रकार का अर्थ-साहाय्य भी स्वीकार न किया। उसने इंग्लैंड से केवल २० लाख पौंड ऋण के रूप में प्राप्त किये।

क्रिमियन युद्ध की समाप्ति पर पेरिस की कांग्रेस में संधि की शर्तें निश्चित की गईं। उसमें सार्डिनिया का प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुआ, किन्तु वहाँ इटैलियन समस्या के विषय में किसी प्रकार का प्रस्ताव स्वीकार न किया गया। केवल नेपोलियन तृतीय ने कैवूर के साथ सहानुभूति प्रदर्शित की। यह पारितोषिक था उन सेवाओं का जो सार्डिनिया ने अर्पित की थीं तथा जिनको वह अर्पित कर रहा था, क्योंकि उसकी सेनायें उस समय भी सेबस्टोपोल में पड़ी हुई थीं। उपरोक्त युद्ध में सार्डिनिया के सम्मिलित हो जाने से केवल यह लाभ हुआ था कि यूरोप के शासकों तथा राजनीतिज्ञों की दृष्टि में इटैलियन समस्या का महत्व बढ़ गया था और उसके लिये सहानुभूति भी प्राप्त कर ली गई थी। नेपोलियन तृतीय उसकी ओर विशेष रूप से आकर्षित हो गया था, किन्तु इंग्लैंड की सहानुभूति केवल नाम मात्र को प्राप्त हो सकी थी।

इसके पश्चात् कैवूर और उसके बादशाह विक्टर ऐमैनुअल द्वितीय के भाग्य से घटनाओं ने कुछ ऐसा रूप धारण किया कि इटैली की स्वाधीनता तथा उसके एकीकरण का कार्य सरल हो गया। जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं,

युद्ध को आमंत्रण

प्रथम के कार्यक्रम का तृतीय शीर्षक यह था कि अस्ट्रिया के इटैलियन राज्य पर आक्रमण किया जाय और उसे निष्कासित करके समस्त उत्तरी इटैली पर अधिकार स्थापित कर लिया जाय। यह एक कठिन कार्य था। कारण कि कोई भी देश किसी दूसरे देश पर अकारण आक्रमण करना स्वीकार नहीं करता। इसका सब से सुन्दर रूप यह हो सकता था अस्ट्रिया स्वयं अपनी ओर से सार्डिनिया पर आक्रमण करे अथवा कम से कम सार्डिनिया को युद्ध के लिये ललकारे। कैवूर ने क्रीमिया के युद्ध के पश्चात् ऐसी बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता से काम किया कि उसे दो प्रकार की सुविधायें प्राप्त हो गईं। अर्थात् फ्रांस का बादशाह नैपोलियन तृतीय इटैली के युद्ध में विक्टर ऐमैनुअल की सहायता करने को तैयार हो गया और अस्ट्रिया के शासन ने अपनी ओर से कैवूर के पास युद्ध का अन्तिम निर्णय भेज दिया। इंग्लैंड के शासन ने निरन्तर यह प्रयत्न किया कि किसी प्रकार युद्ध न हो, किन्तु वह अपने प्रयत्न में सफल मनोरथ न हुआ।

पेरिस की सन्धि के दो वर्ष पश्चात् तक कुछ न हो सका। इसके बाद अकस्मात्

ऐसा प्रतीत हुआ कि कैवूर की योजना सफल न हो सकेगी। १४ जनवरी सन् १८५८ ई० को मात्सीनी के दल के एक व्यक्ति ने, जिसका नाम ओर्सीनी (Orsini) था, नैपोलियन तृतीय पर नाटकशाला जाते समय बम फेंका, किन्तु वह बच गया। इस घटना का फ्रांस और सार्डिनिया के पारस्परिक सम्बन्ध पर भी प्रभाव पड़ा, किन्तु शीघ्र ही सम्राट का दृष्टिकोण बदल गया। इटैली के स्थान में वह अंगरेज़ों से अप्रसन्न हो गया। कारण कि षड्यंत्र की योजना इंग्लैंड में बनाई गई थी तथा वह बम भी जिसका प्रयोग ओर्सीनी ने किया था उसी देश में बनाया गया था। इस घटना से मनुष्य इटैली के स्वाधीनता युद्ध में अधिक अभिरुचि रखने लगे। ओर्सीनी ने कारावास से यह सन्देश नैपोलियन के पास भेजा,—"जब तक इटैली स्वाधीन न होगा उस समय तक यूरोप को तथा आपको शान्ति प्राप्त न होगी।......मेरे देश को स्वाधीन कर दो और भविष्य में दो करोड़ पचास लाख नागरिक आपको दुआ देते रहेंगे।" जिस समय ओर्सीनी को फांसी दी गई उस समय भी 'इटैली ज़िन्दाबाद' के शब्द उसके मुंह से निकले।

प्लोंबियर का प्रतिज्ञापत्र
जून-जौलाई, १८५८

मई सन् १८५८ ई० में नैपोलियन तृतीय का एक मित्र कैवूर से मिलने तूरिन आया एवं उससे कहा कि सम्राट का विचार है कि एक मास प्लोंबियर के स्वास्थ्यप्रद स्थान में जो "सार्डिनिया की सीमा के बिल्कुल निकट है, व्यतीत करे।" उपरोक्त स्थान फ्रांस में है और वह सार्डिनिया की सीमा से किसी प्रकार भी निकट न था, किन्तु नैपोलियन तृतीय की अन्ताराज्यनीति (Diplomacy) संकेतों द्वारा कार्य करती थी। जो संकेत किया गया था उसे कैवूर ने तुरन्त समझ लिया। वह देश पर्यटन के बहाने स्विटज़रलैंड चला गया और वहां से गुप्त रूप से नैपोलियन से भेंट करने के लिए प्लोंबियर आया। वहां दोनों ने आस्ट्रिया पर आक्रमण करने के उद्देश्य से एक प्रतिज्ञापत्र लिखा, किन्तु उसकी शर्तें इटैली के एकीकरण के विरुद्ध थीं। नैपोलियन की आकांक्षा केवल यह थी कि इटैली में आस्ट्रिया के राज्य को समाप्त कर दिया जाय। इस प्रकार वह फ्रांस के प्राचीन शत्रु की शक्ति को क्षीण करना चाहता था, किन्तु इटैली के एकीकरण द्वारा अपने लिये एक नया ख़तरा पैदा करना उसे सहन न था। अतएव प्लोंबियर के प्रतिज्ञापत्र से यह निश्चित किया गया कि फ्रांस और सार्डिनिया मिलकर इटैली में आस्ट्रिया के शासन की समाप्ति करेंगे और द्वितीय का साम्राज्य ऐल्प्स पर्वत से ऐड्रियेटिक सागर तक फैल जायेगा। इटैली को चार भागों में विभाजित करने की योजना स्वीकृत की गई,—(१) उत्तर में सार्डिनिया का शासन (२) समस्त डच्चियों को सम्मिलित करके एक राज्य, जिस पर सम्राट का चचेरा भाई राजकुमार

जेरोम बोनापार्ट (Prince Jerome Bonaparte)* शासन करेगा (३) पोप का राज्य (४) दो सिसलियों का राज्य। जो सहायता नैपोलियन तृतीय सार्डिनिया को प्रदान करेगा उसके बदले में सेवाय और नीस फ्रांस को दे दिये जायेंगे। यह भी निश्चित कर दिया गया कि दोनों शाही खानदानों के सम्बन्ध को अधिक सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से जेरोम बोनापार्ट का विवाह विक्टर ऐमैनुअल की पुत्री से कर दिया जायेगा।

प्लोंबियर के प्रतिज्ञापत्र से यह भी निश्चित कर दिया गया था कि युद्ध का प्रारम्भ शीघ्र से शीघ्र कर दिया जायेगा। "हम लोग शीघ्र से शीघ्र केवल युद्ध ही प्रारम्भ न कर देंगे वरन् (उसके लिये) कोई बहाना भी प्रस्तुत करेंगे।" अस्तु १ जनवरी सन् १८५६ ई० को जब लोग नैपोलियन तृतीय से भेंट करने राजप्रासाद में आये तो उसने अस्ट्रिया के प्रतिनिधि से कहा, "मुझे खेद है कि आपके शासन से मेरे सम्बन्ध उतने अच्छे नहीं हैं जितने कि पहले थे।" इसके कुछ दिनों के पश्चात् विक्टर ऐमैनुअल ने सार्डिनिया की संसद् का उद्घाटन करते समय कहा, "जो दुःख भरी आवाज़ इटैली के विभिन्न भागों से हमारे कानों में आ रही है उसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते।" इस प्रकार की बातों से स्पष्ट था कि नैपोलियन युद्ध के लिये तत्पर था और केवल एक बहाने की खोज में था।

युद्ध की घोषणा, अप्रैल सन् १८५९ ई०

अस्ट्रिया का व्यवहार कठोर अवश्य था, किन्तु वह प्रत्येक स्थिति में युद्ध से दूर रहना चाहता था। ९ मार्च को कैवूर ने सार्डिनिया की सेना को तैयार होने का आदेश दिया, परन्तु उक्त मास के अन्त में ऐसा प्रतीत हुआ कि युद्ध न होगा। अतएव कैवूर ने अपनी इच्छा के विरुद्ध सैनिक तैयारियों को स्थगित करने की आज्ञा निकाली। इसके पश्चात् न मालूम किस कारण वश अस्ट्रिया के शासन ने सार्डिनिया के शासन को यह लिख कर भेज दिया कि यदि वह युद्ध की तैयारियों को बन्द न करेगा तो अस्ट्रिया उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा। इन शब्दों को पढ़कर कैवूर के हर्ष का पारावार न रहा। उसके हृदय की आकांक्षा पूर्ण होगई थी। वह प्रसन्नता से कहने लगा, "पांसा फेंक दिया गया है और हमने इतिहास में स्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है।" २९ अप्रैल को फ्रांस ने भी युद्ध की घोषणा कर दी।

अस्ट्रिया का सेनाध्यक्ष गले (Giulay) एक लाख सेना के साथ टीचीनो (Ticino) नदी के किनारे पहुँच गया, किन्तु उसने उसे पार करने में देर

*नैपोलियन बोनापार्ट के छोटे भाई जेरोम का पुत्र।

करदी। कारण यह था कि उपरोक्त देश को आशा थी कि इंग्लैंड उस समय भी दोनों के बीच समझौता कराने में कृतकार्य होगा। जिस स्थान पर गले की सेना ठहरी हुई थी उस स्थान से सार्डिनिया की राजधानी तूरिन अधिक दूर न थी तथा शत्रु की ओर केवल पचास सहस्र सैनिक थे। फिर भी उसने संकोच वश आक्रमण न किया। इस देरी का परिणाम यह हुआ कि फ्रांस के सैनिक सहस्रों की संख्या में सूसा (Susa) और जेनोआ के मार्गों से पीडमौंट में पहुँच गये। मित्र राष्ट्रों ने माजेंटा (Magenta) और सोल्फेरीनो (Solferino) के प्रसिद्ध युद्ध में प्रतिष्ठापूर्ण विजय उपलब्ध की। आस्ट्रिया की सेना को पराजित होकर पीछे हट जाना पड़ा और उस चतुर्भुज में शरण लेनी पड़ी जो मान्टोवा और वैरोना आदि के दुर्गों द्वारा बनता है। प्रत्येक व्यक्ति आशा करता था कि मित्र राष्ट्रों की सेना आगे बढ़कर उपरोक्त चतुर्भुज पर आक्रमण करेगी, किन्तु ऐसा न करके नैपोलियन तृतीय ने सन्धि की वार्ता प्रारम्भ कर दी। यह एक बड़ी ही विचित्र बात थी। किन्तु नैपोलियन तृतीय को विचित्र कार्यों के करने में ही आनन्द आता था। ११ जौलाई को उसने स्वयं आस्ट्रिया के बादशाह फ्रांसिस जोज़ेफ़ से भेंट करने के लिये प्रस्थान किया, और वीलाफ्रांका (Villafranca) के गाँव में उससे सन्धि करके न केवल फ्रांस वरन् सार्डिनिया के लिये भी समस्त शर्तें तय कर दीं। फ्रांस के सम्राट ने कैवूर को वचन दिया था कि वह सार्डिनिया का अधिकार समस्त उत्तरी इटली पर करा देगा, किन्तु उसने अपने वादे को पूरा न किया। विक्टर ऐमेनुअल को सम्पूर्ण लोम्बार्डी पर भी अधिकार न मिला। वेनीशिया का राज्य आस्ट्रिया के अधिकार में रहा। टस्कनी और मोडेना के शासक पूर्ववत् स्वाधीन रहे। सन्धि में पारमा के राज्य का नाम को भी उल्लेख न किया गया था। युद्ध में भाग लेने के उपलक्ष में प्लोंबेयर के प्रतिज्ञापत्र के अनुसार सेवाय और नीस पर फ्रांस का अधिकार हो गया (सन् १८६० ई०)।

प्रसिद्ध घटनायें, मई-जौलाई, १८५९ ई०

उपरोक्त युद्ध के समय जो व्यवहार नैपोलियन तृतीय ने किया था, उसको सभी लोगों ने बुरा बतलाया है। यदि फ्रांस और सार्डिनिया युद्ध बन्द न कर देते तो वेनीशिया पर उनका अधिकार अवश्य हो जाता और इसके लिये द्वितीय युद्ध की आवश्यकता न होती। सन् १८५६ ई० के युद्ध को समाप्त कर देने की दिशा में भी यदि फ्रांस का सम्राट शीघ्रता न करता और सन्धि की शर्तें कैवूर के परामर्श से निश्चित करता, तब भी वेनीशिया पर मित्र राष्ट्रों का अधिकार हो जाता। आस्ट्रिया को जो क्षति सहन करनी चाहिये

नैपोलियन तृतीय का असाधारण व्यवहार

GERMANY
FRANCE
Munich
R. Danube
Vienna
Berne
SWITZERLAND
AUSTRIA
Buda Pest
HUNGARY
SAVOY
PIEDMONT
Turin
Milan
LOMBARDY 1859
Custozza
Solferino
VENETIA 1866
Venice
Trieste
PARMA 1860
MODENA 1860
Genoa
LUCCA
PAPAL
TERRITORY
TUSCANY 1860
ADRIATIC SEA
CORSICA
SARDINIA
Rome 1870
1860
Gaeta
Naples
TYRRHENIAN SEA
KINGDOM of NAPLES 1861
Brindisi
Palermo
SICILY
1861
Syracuse

इटैली का एकीकरण

थी वह उसे सहन न करना पड़ा। नेपोलियन ने फ्रांसिस जोजेफ को चतुर्भुज के बीच सुरक्षित छोड़ दिया था। वहाँ से वह वेनीशिया की रक्षा सफलता के साथ कर सकता था। ऐसी दशा में यदि कैवूर ने त्यागपत्र दे दिया तो हमें आश्चर्य न करना चाहिये। पेरिस की सन्धि (सन् १८५६ ई०) के समय भी वह फ्रांस के सम्राट के कारण, जिसका समझना कठिन था और जिसमें दृढ़ संकल्प की कमी थी, अपनी आकांक्षा पूर्ण करने में कृतकार्य न हो सका था। अबकी बार भी ऐसा ही हुआ। उसके चले जाने के पश्चात् विक्टर ऐमैनुअल द्वितीय ने बड़ी सावधानी से काम किया। उसने विल्लीफ्रांगका की सन्धि की शर्तों को स्वीकार कर लिया, किन्तु उसने उन पर हस्ताक्षर करते समय "जहाँ तक उन से मेरा सम्बन्ध है" यह वाक्यांश जोड़ दिया। इसका यह अर्थ था कि उसने तीनों डचियों और पोप के राज्य के सम्बन्ध में किसी प्रकार का उत्तरदायित्व नहीं लिया था। इस से उसे बहुत लाभ हुआ।

सन् १८५९ ई० के युद्ध से इटेली की स्वाधीनता तथा एकीकरण का कार्य केवल यहाँ तक पूर्ण हुआ था कि लोम्बार्डी का मैदान सार्डिनिया के राज्य में सम्मिलित कर लिया गया था और मध्य तथा दक्षिण इटेली के निवासियों का उत्साह बहुत बढ़ गया था। कैवूर के त्यागपत्र दे देने के बाद भी विक्टर ऐमैनुअल सब काम उसके परामर्श से करता रहा और कुछ समय पश्चात् उसके ज़ोर देने पर वह अपने स्थान पर लौट भी आया। अतएव जिस कार्य को पूरा करने की लगन कैवूर को थी वह उसी प्रकार उसकी इच्छानुसार चलता रहा। आस्ट्रिया के पराजित होने के कारण टस्कनी, पारमा और मोडेना की डचियों का कोई सहायक न रहा था। उधर उनके निवासियों के लोकतन्त्रीय व राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी ज़ोर आगया था। ऐसी परिस्थिति में उनके शासकों का ठहरना कठिन था। अतएव वे तीनों अदृश्य हो गये और वहाँ क्रान्तिकारी शासन स्थापित हो गये। इनके अध्यक्षों ने विक्टर ऐमैनुअल से यह इच्छा प्रकट की कि तीनों डची सार्डिनिया के राज्य में सम्मिलित कर ली जायें। इसी प्रकार पोप के राज्य के कुछ भागों में भी कुव्यवस्था का प्रकोप बढ़ा। बोलोग्ना (Bologna) और रोमांग्ना (Romagna) में संघर्ष हुये। इनका उद्देश्य पोप के स्थान पर वहाँ सार्डिनिया के बादशाह की सत्ता स्थापित करना था। कैवूर ने इनकी प्रार्थना स्वीकार की और तीनों डचियों तथा रोमांग्ना का सहमेलन कर के इटेली के एकीकरण के कार्य को आगे बढ़ाया।

डचियों और रोमांग्ना का सहमेलन, १८६० ई०

इसके पश्चात् दक्षिणी इटैली में स्वाधीनता व एकीकरण के लिये आन्दोलन

किये गये, स्वाधीनता बूरबन वंश के निरंकुश शासन से तथा एकीकरण सार्डिनिया के राज्य से जिसका क्षेत्रफल उस समय तक बहुत विस्तृत हो गया था। किन्तु इन आन्दोलनों को सफल बनाने का श्रेय गारीबाल्डी को था, न कि विक्टर ऐमेनुअल अथवा कैवूर को। सर्वप्रथम सिसली के निवासियों पर उत्तर की घटनाओं का प्रभाव पड़ा। उन्होंने बूरबन बादशाह

दक्षिणी इटली में गारीबाल्डी के आश्चर्यजनक कार्य

फ्रांसिस द्वितीय के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। इस समाचार को पाकर गारीबाल्डी ने जेनोआ नगर में स्वयंसेवकों की, जो इतिहास में लाल कुर्तियों (Red Shirts) के नाम से विख्यात हैं, एक सेना एकत्रित की। सार्डिनिया तथा दोनों सिसलियों के शासनों में सन्धि थी। इसलिये कैवूर का कर्तव्य था कि उपरोक्त सेना को जेनोआ के बन्दरगाह से प्रस्थान करने की आज्ञा न देता। किन्तु उसने ऐसा न किया। प्रकट रूप से तो वह लाल कुर्तियों को गिरफ्तारी और दण्ड की धमकी देता रहा, परन्तु गुप्त रूप से उसने गारीबाल्डी को यह लिख दिया कि उक्त सेना जेनोआ के बन्दरगाह से प्रस्थान कर सकती है। गारीबाल्डी ने मई सन् १८६० ई० में दक्षिण के लिये प्रस्थान किया। सिसली पहुँच कर पहले उसने केवल तीन मास के अल्प समय में उपरोक्त द्वीप पर अधिकार किया। फिर वह मसीना के जलसंयोजक को पार करके इटली की मुख्य भूमि पर पहुँचा और सितम्बर में नेपिल्ज़ पर अधिकार कर लिया। फ्रांसिस द्वितीय की सेना शत्रु के पक्ष में चली गई। आस्ट्रिया से भी कुमक आने की आशा समाप्त हो चुकी थी। ऐसी दशा में उसने शासन कार्य से मुक्त होकर एक संक्षिप्त सेना के साथ गायेटा (Gaeta) के दुर्ग में शरण ली। गारीबाल्डी की विद्युत गति और सफलताओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि वह शीघ्र ही गणतन्त्रवादी शासन के समर्थकों की ओर से दक्षिण में एकशास्ता का स्थान प्राप्त कर लेगा। किन्तु विक्टर ऐमेनुअल और कैवूर यह कैसे सहन कर सकते थे कि इटली दो भागों में विभाजित रहे। उन्होंने तुरन्त पोप के राज्य पर आक्रमण करने को एक सेना भेजी, जिसने उसकी सेना को परास्त करके नेपिल्ज़ में प्रवेश किया। तत्पश्चात् उसने गायेटा (Gaeta) के चारों ओर घेरा डाल दिया और नेपिल्ज़ पहुँच कर वह गारीबाल्डी की सेना से मिल गई। पोप के घोर विरोध के होते हुये भी कैवूर ने उसके राज्य के सहमेलन की घोषणा करदी। (सितम्बर सन् १८६० ई०)। इतना अवश्य हुआ कि उसने रोम नगर तथा उसके आस की भूमि को नहीं मिलाया। नवम्बर में विक्टर ऐमेनुअल ने गारीबाल्डी के साथ बड़ी

थान से नेपाल्स नगर में प्रवेश किया तथा उसके निवासियों ने प्रत्येक प्रकार से उसका स्वागत किया। गारीबाल्डी एक गण-तन्त्रवादी था, किन्तु वह देशभक्त पहले था। अतएव उसे इटैली के एकीकरण के कार्य में किसी प्रकार की रुकावट डालना मान्य न था। फर्वरी सन् १८६१ ई० में गायेटा की सेना ने शस्त्र डाल दिये तथा फ्रांसिस द्वितीय देश से निर्वासित कर दिया गया। इस प्रकार दोनों सिसलियों और पोप के राज्य के सम्मिलित करने में जो कठिनाई शेष थी वह भी दूर हो गई। ये दोनों देश भी साडिनिया के साम्राज्य में, जिसका क्षेत्रफल अधिक विस्तृत हो गया था, सम्मिलित कर लिये गये।

दोनों सिसलियों तथा पोप के राज्य का सहमेलन, १८६१ ई०

सन् १८५९ ई० के युद्ध के पश्चात् एकीकरण के महत्वपूर्ण कार्य में किसी महान् कठिनाई का सामना न करना पड़ा था। विगत पराजयों के पश्चात् आस्ट्रिया इस योग्य न रह गया था कि पूर्व की भाँति विभिन्न राज्यों की सहायता पृथक रूप से करता। इटैली के स्थान में अब उसका विशेष ध्यान जर्मनी और हंगरी की ओर था। ब्रिटेन के निवासी इटैली के एकीकरण तथा साडिनिया की उदार नीति के समर्थक थे। वहाँ के प्रधान मन्त्री पामर्स्टन के कैवूर से बहुत उत्तम सम्बन्ध थे। जो कुछ हस्तक्षेप हो सकता था वह फ्रांस के सम्राट नेपोलियन तृतीय की ओर से हो सकता था। गृहनीति सम्बन्धी समस्याओं में अधिक संलग्न रहने के कारण, उसकी ओर से किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित नहीं की गई। यद्यपि उसने रोम नगर में फ्रांसीसी सैनिकों की संख्या में वृद्धि कर दी तथा साडिनिया के शासन से स्पष्ट कह दिया कि पोप के राज्य का जो भाग शेष रह गया है, उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाय।

इस प्रकार कैवूर के अनुपम परिश्रम तथा प्रयत्नों के कारण केवल दो वर्ष (१८५९-१८६१) में रोम और वेनीशिया के अतिरिक्त इटैली के विभिन्न स्वाधीन राज्य साडिनिया के राज्य में सम्मिलित कर लिये गये। साडिनिया का राज्य इटैलियन राज्य में परिवर्तित कर दिया गया था। उसकी संसद ने इटैलियन संसद का रूप ग्रहण कर लिया तथा उसका संविधान इटैली का संविधान बन गया। १७ मार्च सन् १८६१ ई० को विक्टर ऐमेनुअल द्वितीय ने साडिनिया के बादशाह के स्थान में 'इटैली का बादशाह' की उपाधि धारण की। इस प्रकार इटैलियन राज्य का जन्म हुआ तथा कैवूर की आकांक्षा पूर्ण हुई। इटैली के भिन्न राज्यों का एकीकरण हो गया था। जो शासन पद्धति संयुक्त राज्य के लिए धारण की गई थी वह उदार प्रणाली की थी।

इटैलियन राज्य का जन्म, सन् १८६१ ई०

इसके पश्चात् ६ जून सन् १८६१ ई० को कैवूर की मृत्यु हुई। गत तीन वर्षों में उसने इतना अधिक कार्य किया था कि उसका स्वास्थ्य पूर्णतया बिगड़ गया था। किन्तु जो नाम उसने इटैली के इतिहास में प्राप्त किया है वह अमर रहेगा। एक लेखक ने उसकी प्रशंसा में अपने विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया था :—"इटैली एक राष्ट्र की स्थिति से कैवूर का वर प्रसाद तथा उसके जीवन का प्रधान कार्य है।......अन्य व्यक्ति भी राष्ट्रीय उदारवाद के लिये प्रयत्नशील रहे हैं किन्तु इस सिद्धांत को संभव बनाना उसी का काम था। उसने उसे प्रत्येक प्रकार की साम्प्रदायिक उद्दण्डता से उन्मुक्त किया। उसने उसे व्यर्थ की कल्पित योजनाओं से बचाया, उसे आतंकपूर्ण षड़यन्त्रों से सुरक्षित रक्खा। उसने उसे क्रांति तथा प्रतिक्रियावाद से बचाते हुये उसके लिये सीधा मार्ग निश्चित किया तथा उसे व्यवस्था का वरदान दिया। उसने उसे एक झंडा दिया, एक शासन दिया तथा उसके लिये विदेशों में सहायक प्राप्त किये।"

वेनीशिया और रोम, १८६६ व १८७० ई०

वेनीशिया और रोम अब भी शेष थे। उनके सहमेलन में कुछ देर हुई। इस काम में प्रशा ने विशेष रूप से इटैली के निवासियों की सहायता की। इटैली की भांति प्रशा के सम्बन्ध भी अस्ट्रिया से अवांछनीय थे। सन् १८६६ ई० में अस्ट्रिया तथा प्रशा के बीच एक युद्ध हुआ, जिसमें इटैली के शासन ने अन्तिम देश की सहायता की। उसके सैनिकों को तो अस्ट्रिया के मुकाबिले में सफलता प्राप्त न हो सकी, किन्तु उसकी सहायता के अलक्ष में युद्ध की समाप्ति पर वेनीशिया का देश उसको दे दिया गया। सन् १८७० ई० में प्रशा और फ्रांस के बीच एक युद्ध हुआ। इसके प्रारम्भ होते ही फ्रांसीसी सैनिक रोम से वापस बुला लिये गये। २ सितम्बर सन् १८७० ई० को इटैली में यह समाचार प्रसिद्ध हुआ कि नैपोलियन तृतीय के शासन का अन्त हो गया है। ११ सितम्बर को इटैली के सैनिक दल पोप के राज्य में प्रविष्ट हुये तथा उन्होंने रोम पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् सार्वजनिक मतदान के द्वारा यह बात निश्चित कर ली गई कि रोम निवासी इटली के राज्य में सम्मिलित होने के इच्छुक हैं। अतएव जौलाई सन् १८७२ ई० में विक्टर ऐमैनुअल बड़ी शान से रोम में आया तथा अपनी नवीन राजधानी में निवास करके संयुक्त इटैलियन राज्य पर शासन करने का श्रेय प्राप्त किया। पोप के राजनैतिक अधिकारों की अन्त्येष्टि कर दी गई और उसका महत्व केवल धर्माचार्य की स्थिति से शेष रहा।

———:o:———

नवां अध्याय

जर्मन साम्राज्य का अभ्युदय

(१८१५–१८७०)

उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इस काल में संसार के विभिन्न देशों में राष्ट्रीयता का उत्कर्ष चरम सीमा पर था। यूरोप और एशिया दोनों ही के इतिहासों में हम इस विशेषता का दिग्दर्शन करते हैं। इस विषय में प्रथम ने द्वितीय का पथ प्रदर्शन किया था। यूरोप में राष्ट्रीयता के आधार पर विभिन्न राज्यों का उत्कर्ष उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ था। एशिया में यह कार्य बीसवीं शताब्दी में पूरा हुआ। नैपोलियन बोनापार्ट के उत्थान का सबसे बड़ा कारण यह था कि, जैसा कि उसके एक मन्त्री ने स्वीकार किया था, यूरोप के शासनों ने उसका सामना करने में तत्परता से कार्य नहीं किया था और उन्होंने कुछ ऐसी भूलें भी की थीं जो उन्हें नहीं करनी चाहिये थीं। उसके पतन का सबसे बड़ा कारण यह था कि यूरोप में अकस्मात् राष्ट्रीय उद्गारों का अद्वितीय उत्कर्ष हुआ, जिसके आगे उसकी बड़ी से बड़ी सेनायें भी न ठहर सकीं। इस तरह उसके विश्व विजय के स्वप्न लोप हो गये। राष्ट्रीयता के उत्कर्ष ने यूरोप के अभ्युदय और इतिहास को प्रकट रूप से प्रभावित किया है। किन्तु इसके कारण कुछ ऐसी कठिनाइयां भी उपस्थित हुई हैं जिनको हल करने में आज तक पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है।

जिस समय फ्रांस में सन् १७८९ ई० की राज्यक्रांति प्रारम्भ हुई थी उस समय जर्मनी की दशा अच्छी न थी। इसका उल्लेख हम इसके पूर्व भी कर चुके हैं (खण्ड १ अध्याय २)। उस समय वहां अगणित राज्य थे। इनमें अस्ट्रिया

और प्रशा का स्थान सबसे ऊंचा था। ये सब राज्य होली रोमन सम्राट के अधीन थे, किन्तु उनके शासक अपना आन्तरिक प्रबन्ध स्वेच्छापूर्वक करते थे तथा एक दूसरे से स्वेच्छापूर्वक सम्बन्ध रखते थे। सबसे अधिक महत्व अस्ट्रिया का था। इसका कारण यह था कि अधिकतर उसके हैप्सबर्ग वंश के शासकों को ही होली रोमन सम्राट होने का गौरव प्राप्त हुआ। किन्तु अस्ट्रिया की तुलना में प्रशा की युद्ध शक्ति तथा व्यवस्था अधिक उन्नत अवस्था में थी। यदि अस्ट्रिया का उत्कर्ष वंशानुगत सम्बन्धों के कारण हुआ था तो प्रशा का उत्कर्ष उसकी युद्ध शक्ति के आधार पर हुआ था। यह विशेषता उनके इतिहासों से भली प्रकार प्रकट होती है। समस्त जर्मनी के लिये एक सभा (डाइट) थी, जो बहुत काल से स्थापित थी। होली रोमन सम्राट और डाइट ही विभिन्न राज्यों को एक सूत्र में बांधने के दो साधन थे। इसके अतिरिक्त जब कभी कोई विदेशी शत्रु जर्मनी पर आक्रमण करता, तब भी उनमें या कम से कम अधिकतर राज्यों में एक प्रकार का संगठन हो जाता था, जैसा कि नैपोलियन बोनापार्ट के समय में हुआ था। उक्त सभा वास्तव में जर्मनी के शासकों तथा शहरों के प्रतिनिधियों की सभा थी। हम उसकी समता संसद से किसी दशा में भी नहीं कर सकते। उसके अधीन न कोई सेना थी और न उसका अधिकार आय की विशेष मदों पर ही था। उसके सदस्य भी केवल अपने शासकों के प्रतिनिधि और आज्ञाकारी सेवक थे। अतएव वे समस्त देश के हित को दृष्टि में न रखकर केवल अपने शासक के आदेशों को दृष्टि में रखते थे। डाइट की स्थिति दीर्घकाल तक अक्षुण्ण रही। इसका कारण यह न था कि उससे कोई विशेष लाभ होता था वरन् यह था कि वह किसी की हानि न कर सकता था।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में जर्मनी की अवस्था

यह एक अद्भुत बात है कि आधुनिक जर्मनी का निर्माण नैपोलियन के कारण हुआ था। जैसा कि हम द्वितीय अध्याय में स्पष्ट रूप से बतला चुके हैं, उसके कारण इस कार्य में तीन प्रकार से विशेष सहायता मिली थी,—(१) उसने जर्मन राज्यों को जिनकी संख्या अगणित थी, इस प्रकार संगठित किया था कि उनकी संख्या केवल ३८ रह गयी थी। (२) उसके कारण प्रशा की स्थिति ऐसी सुदृढ़ हो गई थी कि वह सरलता से अस्ट्रिया का सामना कर सकता था तथा उसको हटाकर शेष जर्मन राज्यों का नेतृत्व कर सकता था। (३) नैपोलियन के कारण जर्मनों के हृदयों में राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न हो गई थी। उसने एक विशेष सेवा यह भी की थी कि उसने होली रोमन साम्राज्य को समाप्त कर

एकीकरण के मार्ग में कठिनाइयाँ

दिया था तथा उसके स्थान पर जर्मन राज्यों का एक संघ (Confederation) स्थापित कर दिया था। इसके बाद भी जर्मनी के एकीकरण के मार्ग में कई अवरोध उपस्थित रहे,—(१) जर्मनी नैपोलियन के युद्धों के कारण थका हुआ था। (२) जर्मनी के सुधारक व नेता सुधार तथा एकीकरण के प्रश्न पर एक मत न थे। एक सुनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार काम करने के स्थान में वे उसके लिये विभिन्न योजनायें उपस्थित कर रहे थे। कुछ का मत था कि अस्ट्रिया को निकाल कर, प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण किया जाय। दूसरे लोगों का मत था कि वहाँ हैप्सबर्ग वंश का शासन पुनः स्थापित कर दिया जाय। कुछ सुधारक ऐसे भी थे जो समस्त राज्यों को हटाकर जर्मनी में एक अभाज्य गण-राज्य स्थापित करने के पक्ष में थे। (३) इस काल में जर्मनी की उन्नति और उसके राजनैतिक आन्दोलन पर शिक्षित वर्ग के लोगों का अधिक प्रभाव पड़ा। इनके प्रभाव से ही नैपोलियन के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन किया गया था। वीयेना की कांग्रेस में जब जर्मनी के देशभक्तों की अभिलाषायें पूरी न हुई तो वहाँ के शिक्षित वर्ग के लोगों ने राष्ट्रीय उद्‌गारों को ठंढा न होने दिया वरन् वे सुधारों व एकीकरण के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहे। विशेष कर जर्मनी के विश्वविद्यालयों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में विशेष योग दिया। इनमें ऐना (Jena) के विश्वविद्यालय का स्थान सर्वोच्च था। वार्टबूर्ग का त्योहार (सन् १८१७ ई०) इसी विश्वविद्यालय के छात्रों की ओर से मनाया गया था। परन्तु उसका परिणाम यह हुआ कि मैटर्निक ने कार्ल्सबाद के प्रस्तावों को जर्मन डाइट से स्वीकृत करा के जर्मनी के एकीकरण के मार्ग में एक नवीन कठिनाई उपस्थित कर दी (पृष्ठ ३१ खण्ड २)। (४) जर्मनी के एकीकरण के मार्ग में एक बड़ी कठिनाई यह भी थी कि जर्मन राष्ट्र की राजनैतिक अवस्था संतोषजनक न थी। एक दोष तो यह था कि उसके नेताओं में एकीकरण और सुधार के विषय में एक मत न था। इसका उल्लेख इसके पूर्व हो चुका है। इसके अतिरिक्त उनमें राजनैतिक अनुभव का भी अभाव था। जर्मनी में सब श्रेणियों के लोगों में समान राष्ट्रीय जागृति भी न थी। विशेष कर सामान्य जनता में अधिक राष्ट्रीय जागृति न हो सकी थी। सब श्रेणियों के लोग संयुक्त जर्मनी की आवश्यकता भी अनुभव न करते थे। उसकी आकांक्षा भी अधिकतर उच्च श्रेणी के लोगों तक ही सीमित थी।

इन अवरोधों के होते हुये भी जर्मनी में सुधार तथा एकीकरण के कार्य की उन्नति हुई। मैटर्निक तथा उसकी दोषपूर्ण व्यवस्था के अतिरिक्त भी जर्मनी में लोकतन्त्र तथा राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों की विजय हुई। इस सम्बन्ध में दक्षिण के राज्यों ने उत्तरीय राज्यों का नेतृत्व किया। कार्ल्सबाद के प्रस्तावों से भी पूर्व

बवेरिया के बादशाह ने अपनी प्रजा के लिये एक संविधान स्वीकृत कर दिया था (सन् १८१८ ई०)। इसके दो साल के अन्दर बादन तथा वुर्टम्बर्ग के राज्यों में भी संविधान चालू हो गये थे। सन् १८३० ई० में यूरोप के अन्य देशों की भांति जर्मनी में भी राजनैतिक आन्दोलन किये गये, किन्तु वे निर्बल और प्रभावहीन थे। इसलिये वे पूर्णतः अपने उद्देश्य में कृतकार्य नहीं हुये। जर्मनी के कुछ शासकों ने संविधान बना कर सांवैधानिक ढंग पर शासन करना स्वीकार भी किया, किन्तु मैटर्निक के ज़ोर देने पर उन्होंने उसे हटा दिया अथवा उसके अनुसार उचित रीति से व्यवहार न होने दिया। इस क्रम में एक ध्यान देने योग्य विषय यह है कि सन् १८४८ ई० के पूर्व प्रशा के शासन ने उदार प्रणाली का कोई विशेष सुधार न किया। वहां का बादशाह फ्रेड्रिक विलियम तृतीय (१७९७–१८४०), जो हठी तथा निर्बल संकल्प का मनुष्य था, दीर्घकाल तक प्रतिक्रियावाद तथा प्रगतिशीलता के सिद्धान्तों के बीच भटकता रहा। कुछ समय के लिये ऐसा भी प्रतीत हुआ कि उसका मन्त्री हार्डिनबर्ग (Hardenburg), जिसने स्टाइन की सहायता से प्रशा की बुरी दशा में सुधार किया था, उदार नीति के अनुसार कार्य करेगा, किन्तु मैटर्निक ने उसे पथभ्रष्ट कर दिया और सन् १८१८ ई० के पश्चात् रूस का ज़ार भी इस विषय में आस्ट्रिया का सहायक हो गया।

सन् १८३० ई० का आन्दोलन

सन् १८४८ ई० के आन्दोलन का महत्व

सन् १८३० ई० की तुलना में सन् १८४८ ई० के आन्दोलन का महत्व अधिक है। जर्मनी में बहुत पहले से क्रान्ति की सामग्री तैयार थी। जैसे ही फ्रांस में आर्लियंज़ वंश का तख्ता उलटा वैसे ही जर्मनी में भी एक कोने से दूसरे कोने तक क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया गया। अबकी बार यह कार्य ऐसी तीव्र गति से किया गया कि वह देखने और सुनने वालों के लिये आश्चर्य का कारण बना। इस से इसका प्रमाण भी मिला कि उपरोक्त देश में शासनों से सभी श्रेणियों के लोग दुखित थे। सन् १८४८ ई० के आन्दोलन के दो रूप थे। एक तो प्रत्येक राज्य में वहां के निवासियों की ओर से संविधान की मांग की गई। दूसरे, सम्पूर्ण जर्मनी के एकीकरण तथा उसके लिये केन्द्रीय प्रतिनिधि संस्था की स्थापना पर ज़ोर दिया गया। किन्तु सन् १८३० ई० की भांति सन् १८४८ ई० का आन्दोलन भी सफल न हुआ। कई राज्यों में ज़ोरदार आन्दोलन किये गये तथा संविधान की मांग भी की गई। प्रशा के बादशाह फ्रेड्रिक विलियम चतुर्थ (१८४०–१८६१) ने भी प्रारम्भ में तो देशभक्तों के साथ पूर्ण

सहानुभूति प्रकट की। अतएव कुछ समय के लिये ऐसा प्रतीत हुआ कि देशभक्त अपने आन्दोलन में अवश्य कृतकार्य होंगे, पर ऐसा न हुआ। जैसा कि हम छठे अध्याय में बतला चुके हैं, आस्ट्रिया के प्रभाव से प्रशा के बादशाह ने न केवल फ्रैंकफोर्ट के संसद् द्वारा आयोजित संविधान को अस्वीकार कर दिया वरन् उसे ओल्मुट्स (Olmutz) की सभा के अवसर पर पूर्ण रूप से उसके आगे अपमानित भी होना पड़ा। इस प्रकार मध्य यूरोप के अन्य देशों की भाँति जर्मनी में भी सन् १८४८ ई० का आन्दोलन असफल सिद्ध हुआ। न तो वहाँ किसी प्रकार का संवैधानिक शासन ही स्थापित हो सका और न उसके एकीकरण के लिये कोई बड़ा क़दम ही उठाया जा सका।

प्रशा के अपमान का मुख्य कारण यह था कि वह अपने प्रतिद्वंदी आस्ट्रिया का सामना रणक्षेत्र में न कर सकता था। इसके पश्चात् उसके शासकों ने युद्ध-शक्ति की ओर विशेष ध्यान दिया। इस सम्बन्ध में

संघर्ष नीति का समर्थक विलियम प्रथम

विलियम प्रथम (१८६१–१८८८) ने प्रथम प्रयास किया। वह फ्रैड्रिक विलियम चतुर्थ का भाई था। द्वितीय का मस्तिष्क अस्वस्थ हो जाने के कारण वह सन् १८५८ ई० में संरक्षक नियत हुआ और सन् १७६१ ई० में उसका शरीरान्त हो जाने पर वह राजसिंहासन पर सुशोभित हुआ। वह अपने स्वेच्छाचारी विचार और प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तों के लिये पूर्व से ही बदनाम था। वह राजनैतिक क्रान्ति के इतना विरुद्ध था कि उसे 'कारतूसी राजकुमार' की उपाधि प्रदान कर दी गई थी। उसमें कुछ विशेषतायें ऐसी भी थीं जिनकी उसके भाई में कमी थी। वह दृढ़ संकल्प का व्यक्ति था। वह किसी विषय को ठीक प्रकार से समझने की क्षमता रखता था। वह आदर्शवाद के स्थान में व्यवहार को अधिक महत्व देता था। उसमें सैनिकों के अन्य गुण भी विद्यमान थे। साहस, पवित्रता तथा सत्यनिष्ठा उसके चरित्र के उज्ज्वल रत्न थे। उसे पूरा विश्वास था कि जर्मनी के एकीकरण का कार्य प्रशा के द्वारा सम्पन्न होगा तथा प्रशा के बादशाह को स्वयं इस कार्य को अपने हाथ में लेना होगा। वह यह भी जानता था कि यह कार्य युद्ध शक्ति के बिना सम्पन्न न हो सकेगा। इस समय आस्ट्रिया की तुलना में प्रशा की युद्ध शक्ति कम थी। विलियम प्रथम ने दृढ़ संकल्प कर लिया था कि वह उसे एक महान् युद्ध शक्ति बना कर ही दम लेगा। इस विचार से उसने अनिवार्य युद्ध शिक्षा विधान को अधिक कठोरता से लागू किया, और इस प्रकार ३९ नवीन सैनिक दलों के तैयार किये जाने का आदेश दिया। परन्तु प्रशा के उदारवादी दल के लोगों ने उसका विरोध किया। उनका सिद्धान्त था कि एकी-

करण के काम के लिये युद्ध शक्ति का उपयोग न करना चाहिये। इसके विपरीत इस कार्य में राष्ट्रीय उद्गारों तथा सार्वजनिक मत से सहायता लेनी चाहिये। इस सम्बन्ध में दोनों के बीच विधान-सभा में बड़ा वादविवाद हुआ। बादशाह ने इसके निर्णय को जन मत संग्रह के लिये छोड़ दिया। परन्तु अबकी बार उप-रोक्त दल के लोग पहले से भी अधिक संख्या में निर्वाचित होकर आये। अब तो समस्या बड़ी ही गम्भीर हो गई। कार्यपालिका तथा विधान-मण्डल के बीच एक ऐसी गुत्थी पड़ गई जिसका सुलझाना कठिन था। विलियम प्रथम का दृढ़ विचार था कि नवीन सैनिक दलों को भंग करने के स्थान में वह स्वयं राजसिंहासन से पृथक् हो जायेगा। जनता के प्रतिनिधि संसद के इस अधिकार को अक्षुण्ण रखना चाहते थे कि उसे कार्यपालिका पर प्रभुत्व रखने का पूर्ण अधिकार है। जब किसी प्रकार भी काम न चला तो विलियम प्रथम ने बिज़्मार्क को अपनी सहायता के लिये आमन्त्रित किया तथा उसे अपना मुख्य मन्त्री नियुक्त कर के शासन की कठिन समस्याओं को सुलझाने का भार उसके कंधों पर डाल दिया (सन् १८६२ ई०)। यद्यपि विलियम प्रथम को इसका किञ्चित भी आभास न हो सका था तथापि उसके इस कार्य से, न केवल प्रशा वरन् समस्त जर्मनी के इतिहास में एक ऐसी प्रगति प्रारम्भ हुई जिसने उनकी शक्ति तथा महानता में प्रकट रूप से वृद्धि कर दी।

उसका मन्त्री ओटो वोन बिज़्मार्क

ओटो वोन बिज़्मार्क का जन्म सन् १८१५ ई० के अप्रैल मास में एक प्रतिष्ठित वंश में हुआ था। इस वर्ष से सन् १८९८ ई० तक जब उसका शरीरांत हुआ, उसने अपनी विशेषताओं तथा सफलताओं के द्वारा विश्व के इतिहास पर अधिक प्रभाव डाला। इस सम्बन्ध में हम उसकी समता इंग्लैंड के विख्यात मन्त्री और राजनीतिज्ञ पामर्स्टन (१७८४–१८६५) से कर सकते हैं, क्योंकि दोनों महान् व्यक्तियों ने अपने समय के इतिहास पर विशेष प्रभाव डाला था। उसे हम जर्मन साम्राज्य का, जो आधुनिक अमेरिका की भांति एक अद्भुत चमत्कार है, निर्माता भी कह सकते हैं। उसने अपने जीवन का प्रारम्भिक काल पोमेरानिया (Pomerania) के देहात में व्यतीत किया था। वहां रह कर उसने आखेट, तलवारबाज़ी तथा घोड़े की सवारी का शौक़ पैदा कर लिया था। यह एक ऐसा शौक़ था जो जीवन पर्यन्त उसके आमोद प्रमोद का साधन रहा। तीन वर्ष तक उसने गोटिंजन (Gottingen) और बर्लिन के विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की, परन्तु उसने विशेष साहित्यिक अथवा मानसिक योग्यता प्राप्त न की। वरन् वहां रहकर उसने मद्यपान, मल्ल विद्या तथा इसी प्रकार की अन्य रुचियां

प्राप्त की। अतः बिस्मार्क ने [illegible] को अपने शीघ्र ही लात मार दी। इसलिये कि उसे यह साधारण तथा सरकारी बाबू के कार्य एवं व्यवस्थाओं की भाँति "चोटे और कागज वालों" का पालन करना रुचिकर न था। सन् १८३९ ई० से सन् १८४७ ई० तक बिस्मार्क देहात में भूमिधर का जीवन व्यतीत करता रहा। इस काल में वह सैर सपाटे, पुस्तकों के पढ़ने तथा स्थानीय राजनीति में भी व्यस्त रहा। कॅबूर की भाँति उसको भी कृषि से विशेष प्रेम था। "मैंने निर्णय किया है कि मैं ग्राम में रहूँगा और कृषि में सफलता प्राप्त करके ग्राम ही में मरूँगा। यदि युद्ध प्रारम्भ हो जाय तो संभव है कि मैं युद्ध में भी सफलता प्राप्त करूँ।" विद्यार्थी जीवन में बिस्मार्क के विचार प्रजातन्त्रवादी थे, किन्तु इन आठ वर्षों में जब वह देहात में जीवन व्यतीत कर रहा था, उसके राजनैतिक सिद्धान्तों में कायापलट परिवर्तन हुआ। वह रूढ़िवादी हो गया और नास्तिकता को छोड़ कर वह ईसाई धर्म का कट्टर अनुयायी बन गया। राजनीति तथा धर्म सम्बन्धी ये दो ऐसे सिद्धान्त थे जिनको उसने इसके पश्चात् कभी नहीं त्यागा।

बिस्मार्क के राजनैतिक जीवन का प्रथम भाग (१८४७—१८५२)

सन् १८४७ ई० में बिस्मार्क ने विवाह किया और इसी वर्ष उसने अपने राजनैतिक जीवन में प्रवेश किया। इसके प्रथम वर्ष वह प्रशा के डाइट का सदस्य निर्वाचित किया गया। यह वह डाइट था जिसको फ्रेड्रिक विलियम चतुर्थ ने लोकतन्त्रवादी मनुष्यों को प्रसन्न करने के लिये संयुक्त प्रशा के लिये आमन्त्रित किया था तथा जिसको देख कर सदस्य और [illegible] असमंजस हो गये थे। प्रशा के इतिहास में सन् १८४७ ई० से सन् १८५१ ई० तक का समय बड़े ही उथल पुथल का समय था। इसी काल में वहाँ क्रांति हुई थी। फ्रेड्रिक विलियम ने सम्पूर्ण जर्मनी का शासन सूत्र अपने हाथ में लेने से इन्कार कर दिया था। तत्पश्चात् ऐरफूर्ट का संघ बनाया गया था, किन्तु वह व्यर्थ प्रमाणित हुआ था। इस काल में बिस्मार्क ने अत्यन्त कठोरता तथा दृढ़ता से लोकतन्त्रवादी दल का विरोध तथा रूढ़िवादियों का समर्थन किया था। उसने अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा न केवल क्रांति का विरोध किया वरन् उग्रवादी सुधारों को रोकने का भी प्रयत्न किया। उसने अपने भाषणों से सिद्ध कर दिया कि वह इसके पूर्णतया विरुद्ध है, कि प्रशा का बादशाह जर्मनी के एकीकरण के लिये किसी प्रकार का प्रतिबन्ध स्वीकार करे या वह प्रशा में राष्ट्रीय आन्दोलन करने वालों को प्रोत्साहन दे। जब फ्रेड्रिक विलियम ने जर्मनी का शासक बनना स्वीकार न किया तो बिस्मार्क बहुत प्रसन्न हुआ। इस सम्बन्ध में उसने अपने विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया,—"संभव है कि फ्रैंकफुर्ट का राजमुकुट अधिक चमकीला

हो। किन्तु जो सोना उसे वास्तव में चमकीला बना सकता है वह उसी समय प्राप्त होगा जब प्रशा का राजमुकुट पिघला दिया जाय। और मुझे इसकी आशा नहीं है कि उसके पिघलाने का कार्य प्रशा के संविधान के लिये उपयुक्त सिद्ध हो सकता है।" दूसरे शब्दों में बिज़मार्क इसके विरुद्ध था कि प्रशा का बादशाह जर्मनी के एकीकरण के लिये अपने देश की प्रतिष्ठा तथा परम्पराओं से हाथ धो बैठे। इसी सिद्धान्त पर उसने इन शब्दों में भी प्रकाश डाला था,—"हम सब लोग इसके अभिलाषी हैं कि प्रशा की चील अपने संरक्षण और शासन के पंख मेमल से डान्सबर्ग तक फैलाये, परन्तु हम उसे सर्वदा स्वाधीन देखना चाहते हैं। न तो हम इस बात को पसन्द कर सकते हैं कि वह रांजेन्सबर्ग के संसद से आबद्ध कर दी जाय, और न इस बात को ही सहन कर सकते हैं कि वह फ्रैंकफ़ार्ट के सब को समान बनाने वाले गिद्ध के परों की छाया में शरण ले।" बिज़मार्क का यह सिद्धान्त कि "हम प्रशा के निवासी हैं और प्रशा के निवासी ही बनकर रहेंगे" प्रशंसा के योग्य था। उसने ऐसी उत्तम नीति से काम किया कि उक्त सिद्धान्त का पालन पूर्ण रीति से हो गया। जर्मन साम्राज्य जो बाद को स्थापित हुआ प्रशा की इच्छानुसार तथा प्रशा की परम्पराओं के अनुकूल स्थापित किया गया था। इस सम्बन्ध में एक लेखक ने जर्मनी और इटली के एकीकरण की तुलना करते हुये उल्लेख किया था,—"सार्डिनिया रोम की ओर बढ़ा था, परन्तु जर्मनी बर्लिन की ओर बढ़ा।" इसका यह अर्थ है कि इटली का एकीकरण इस ढंग से किया गया था कि सार्डिनिया के निवासियों को समस्त इटली की प्रथाओं को स्वीकार करना पड़ा और उनकी निजी प्रथायें उनसे मिलकर विलुप्त हो गईं। इसके विपरीत बिज़मार्क तथा विलियम प्रथम ने ऐसे अच्छे ढंग से काम किया कि प्रशा के रीति-रिवाज तथा उसकी परम्परायें अक्षुण्ण रहीं तथा शेष जर्मन साम्राज्य के निवासियों को उन्हें अपनाना पड़ा। यह विशेषता उपरोक्त मन्त्री की इच्छा तथा नीति के अनुकूल थी।

बिज़मार्क के राजनैतिक जीवन का दूसरा भाग (१८५१–१८६२)

सन् १८५१ ई० तक यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गई थी कि वास्तव में बिज़मार्क अपने अनुपम गुणों के कारण नेता बनने का अधिकारी है। बादशाह की दृष्टि भी उस पर पड़ चुकी थी। उसके मित्रों को पूर्ण आशा थी कि वह उसे अवश्य किसी उच्च पद पर नियुक्त करेगा। परन्तु फ्रैड्रिक विलियम को उसकी अडिग मनोवृत्ति प्रिय न थी। एक बार वह उसके नाम के आगे ये शब्द लिख चुका था,—"प्रतिक्रियावादी नीति का भयानक अनुयायी जिससे रक्त की गंध आती है। यह उसी समय उपयोगी प्रमाणित हो सकता है जब संगीनों का उपयोग स्वतंत्रता से किया जाय।" बादशाह

का विचार था कि बिज़मार्क की शिक्षा अब भी अपूर्ण है। अतएव उसने उसे मन्त्री नियुक्त करने के स्थान में प्रशा की ओर से फ्रैंकफोर्ट के डाइट का सदस्य नियुक्त कर दिया। बिज़मार्क जैसे व्यक्ति के लिये जिसे अन्ताराज्यनीति का अनुभव नाम मात्र को भी न था, इतना सम्मान गर्व का विषय था। बादशाह का विचार बिल्कुल ठीक था। आगामी ग्यारह वर्षों के अनुभव ने बिज़मार्क को राजनीतिज्ञ बना दिया। वह प्रशा के शासन की ओर से आठ वर्ष तक फ्रैंकफोर्ट में रहा, तीन वर्ष तक सेंट पीटर्सबर्ग में रहा तथा कुछ मास तक पेरिस में रहा। इसके अतिरिक्त वह कुछ
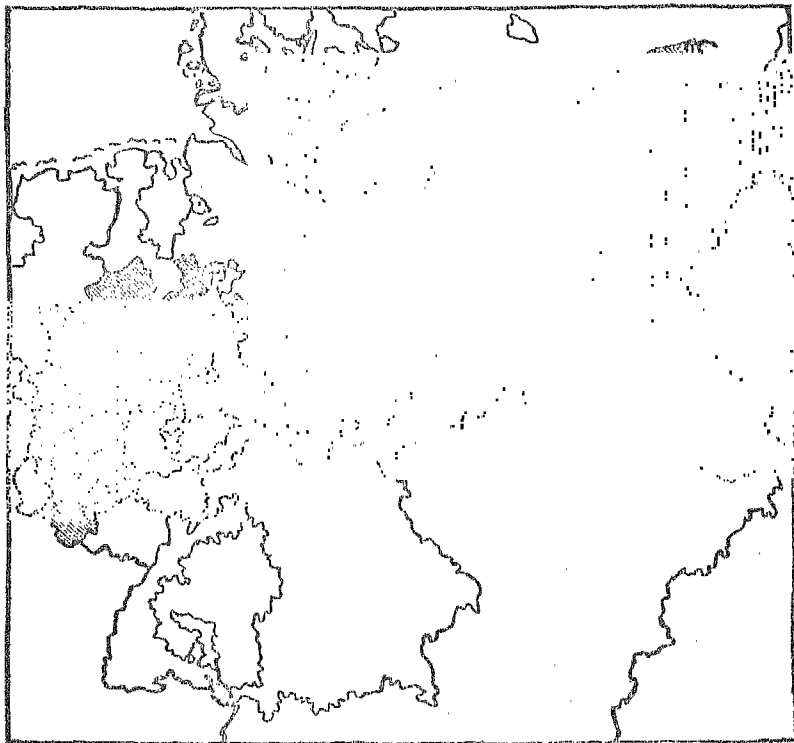
जर्मन संघ में प्रशा की स्थिति, १८१५—८६६ ई०

समय के लिये वीयेना में भी रहा। सारांश यह कि इस प्रकार के अनुभवों तथा कैवूर को छोड़ कर शेष महान् राजनीतिज्ञों से भेंट करने के पश्चात् उसने प्रशा के लिये युद्ध शक्ति और प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये बहुत उपयोगी शिक्षा प्राप्त करली।

आठ साल तक जर्मन संघ की राजधानी में निवास करके बिज़मार्क ने नये प्रकार के अनुभव प्राप्त किये तथा नई धारणायें बनाईं। उसे ज्ञात हुआ कि युद्ध के बिना आस्ट्रिया तथा प्रशा में स्थायी रूप से मित्रता नहीं हो सकती। उसने अनुभव

से यह मालूम किया कि जर्मनी की समस्या के विषय में जो सबसे बड़ी कठिनाई है वह उक्त देशों के पारस्परिक सम्बन्ध के कारण है, न कि छोटे राज्यों की गतिविधि के कारण। उसने यह भी ज्ञात किया कि जर्मनी के राज्य वास्तव में प्रशा के स्थान में आस्ट्रिया की सहायता करना चाहते हैं। कारण कि प्रथम तो एकीकरण के द्वारा उनकी स्वतन्त्रता व अस्तित्व को समाप्त करना चाहता था, किन्तु द्वितीय उस समय की स्थिति को स्थापित रख कर उनके स्वतन्त्र अस्तित्व को अक्षुण्ण रखना चाहता था। फ्रैंकफोर्ट में रहकर प्रशा के प्रतिनिधि ने यह भी सीख लिया था कि
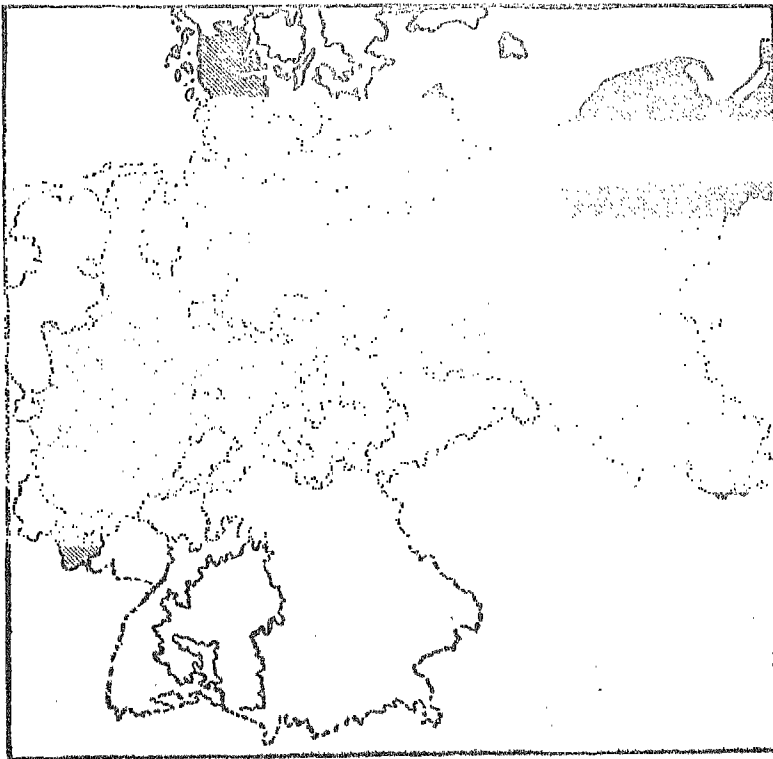
उत्तरी जर्मन संघ में प्रशा की स्थिति, १८६७ ई०

आवश्यकता के समय कोई मन्त्री अथवा राजनीतिज्ञ षड्यन्त्र, कूटनीति तथा बहाने से भी काम ले सकता है। ज़ार की राजधानी में रहकर भी बिज़मार्क ने एक अत्यन्त हितकारी काम किया। क्रीमियन युद्ध के कारण फ्रांस और रूस की मित्रता का अंत हो गया था। बिज़मार्क ने सेंट पीटर्सबर्ग में रह कर ज़ार सिकन्दर द्वितीय से घनिष्टता उत्पन्न कर ली थी, जिसके कारण प्रशा के शासन ने बाद को रूस के अनुकूल शासन पद्धति का प्रयोग किया। जो थोड़ा समय उसने पेरिस में व्यतीत

किया था उसमें उसने नैपोलियन तृतीय और उसके मन्त्रियों के समझने का पूर्ण प्रयत्न किया। इस काल में उसने ऐसे उत्तम बीज बोये जिनके द्वारा बाद को जब वह प्रशा का मन्त्री और अध्यक्ष हो गया, अति उत्तम कृषि तैयार हुई।

उपरोक्त विवरण से हम ओटो वोन बिज़मार्क की शासन पद्धति के मुख्य सिद्धान्तों को आसानी से समझ सकते हैं। ये निम्नांकित थे :— (१) उसे प्रशा पर गर्व तथा पूर्ण भरोसा था। अतएव वह उसकी प्रतिष्ठा और परम्पराओं को अक्षुण्ण रखना चाहता था। (२) वह राजतंत्र का प्रेमी तथा गण-राज्य का पूर्ण विरोधी था। (३) वह राजनैतिक आन्दोलनों और क्रांतियों के भी विरुद्ध था। (४) वह राजनैतिक वादविवाद को व्यर्थ समझता था और अपना सब काम तलवार के बल पर निकालना चाहता था। (५) वह जर्मन एकीकरण के अनुकूल अवश्य था, किन्तु उसका विश्वास था कि युद्ध के बिना इस कार्य में सफलता नहीं मिल सकती। (६) जहां तक उसकी वैदेशिक नीति का सम्बन्ध था, वह आस्ट्रिया के विरुद्ध था तथा रूस से मैत्री रखना चाहता था। उसकी नीति का मुख्य उद्देश्य यह था कि किसी प्रकार आस्ट्रिया को जर्मन संघ से निष्कासित कर दिया जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये शांतिपूर्ण नीति से काम लेने के स्थान में वह युद्ध नीति से काम लेना चाहता था। फ्रांस से युद्ध करना, उसकी नीति का कोई विशेष उद्देश्य नहीं था, किन्तु जब इसकी आवश्यकता प्रतीत हुई तो उसने उपरोक्त देश के विरुद्ध भी युद्ध करके उस महान् भवन को पूर्ण किया जिसे वह जर्मन एकीकरण के आधार पर निर्मित कर रहा था। उसकी नीति को स्पष्ट रूप से समझने के लिये आवश्यक है कि हम उस पर निम्न शीर्षकों के अधीन प्रकाश डालें,— (१) प्रशा के विधान मंडल के साथ उसका व्यवहार, (२) आस्ट्रिया से उसका सम्बन्ध (३) फ्रांस से उसका सम्बन्ध।

बिज़मार्क की शासन पद्धति

जिस समय बिज़मार्क विलियम प्रथम का मुख्य मन्त्री नियुक्त किया गया था (१८६६), उस समय प्रशा के बादशाह के सम्मुख सब से आवश्यक समस्या यह थी कि विधान-मण्डल को किस प्रकार नियन्त्रण में रक्खा जाय और उसे वश में करके अपनी युद्ध प्रिय नीति को किस प्रकार सफल बनाया जाय। बिज़मार्क के पास इसका एक ही हल था, जिसे उसने बिना किसी संकोच के सदस्यों के सम्मुख इस प्रकार विदित किया कि शासन की महान् समस्यायें जो किसी समय उपस्थित होती हैं, भाषणों तथा प्रस्तावों के द्वारा हल नहीं हो सकतीं।

विधान-मण्डल के साथ उसका व्यवहार

सन १८४८ ई० और सन १८४९ ई० में यही भूल की गई थी। वे तलवार के बल पर तथा रक्तपात करके (By Iron and Blood) हल की जा सकती हैं। बिज़मार्क की वक्तृता को सुनकर सदस्यगण आश्चर्य चकित हुये, परन्तु वास्तव में जिस शासन नीति की ओर उसने संकेत किया था वही प्रशा के लिये उस समय हितकर थी। किन्तु केवल बिज़मार्क जैसे योग्य तथा शक्तिशाली पुरुष ही उसे सफलता के साथ निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचा सकते थे। इसका यह अर्थ कदापि न था कि वह प्रतिनिधि सभा अथवा प्रेस के द्वारा शासन की आलोचना को नापसन्द करता था, परन्तु वह उस महान् आदर्श के लिये जो उसे प्रिय था इस प्रकार के प्रतिबन्धों को बिना संकोच समाप्त करने को तैयार था। उसने विरोधी दल के प्रतिनिधियों को इस शर्त पर शासन में सम्मिलित करने का प्रयत्न किया कि वे उसके युद्ध सम्बन्धी सुधारों को स्वीकार कर लेंगे, परन्तु इसमें उसे सफलता उपलब्ध न हुई। जब विधान-मण्डल ने उसकी योजनाओं को स्वीकार नहीं किया तो उसे कठोरता और संकल्प की दृढ़ता से काम लेना पड़ा। उसने बजट की स्वीकृति के बिना ही उन्हें कार्य रूप में परिणित करने का निश्चय किया। एक प्रकार से इसका यह अर्थ था कि उसने प्रशा के संविधान को समाप्त कर दिया है। परन्तु उसको इसकी किंचित मात्र भी चिन्ता न थी। उसे ज्ञात था कि बादशाह की सहानुभूति उसके साथ है। वह यह भी जानता था कि यदि विरोधी दल की ओर से, जिसमें अधिकतर मध्यम श्रेणी के लोग थे, किसी प्रकार का विरोध होगा, तो सेना की सहायता से वह उसको शीघ्र ही समाप्त कर देगा। उसे यह भी ज्ञात था कि अन्ताराज्यनीति (Diplomacy) और विदेशों के विरुद्ध युद्ध सम्बन्धी सफलताओं के प्रकाश में आन्तरिक विरोध स्वयं ही विलीन हो जाता है। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। उसने अपनी नीतिपटुता से प्रशा के युद्धप्रिय शासन को अमर बना दिया। अतएव वह १९१४-१९१८ के महायुद्ध तक स्थायी रूप से विद्यमान रहा। जब साडोवा (Sadowa) के युद्ध के पश्चात् अस्ट्रिया उपरोक्त देश के चरणों पर आ गिरा तो विधान-मण्डल ने बिज़मार्क के गत पांच वर्षों तक बजट की स्वीकृति के बिना शासन करने के अपराध को क्षमा कर दिया। बिज़मार्क को भी अब पूरा विश्वास हो गया कि विधान-मण्डल कभी भी उसके मार्ग में रोड़ा न अटकायेगा।

बिज़मार्क विधान-मण्डल पर इसलिए प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा था कि वह वैदेशिक समस्याओं की ओर बिना किसी प्रकार के विरोध अथवा अवरोध के दत्तचित्त होना चाहता था। उसकी गृहनीति तथा विदेशी नीति दोनों का

अस्ट्रिया से संबंध

मुख्य उद्देश्य यह था कि जर्मन राज्यों के संघ से आस्ट्रिया को किसी प्रकार हटा दिया जाय तथा उसके स्थान में उनका नेतृत्व प्रशा के अधीन कर दिया जाय। यह एक अत्यन्त दुष्कर कार्य था, परन्तु बिज़मार्क जैसे दूरदर्शी तथा बुद्धिमान राजनीतिज्ञ के लिये कोई कठिन कार्य ऐसा न था जिसे वह भुजाओं की शक्ति तथा नीतिपटुता से सरल न बना सकता हो। उसने आस्ट्रिया के विरुद्ध अपनी समस्त शक्तियां जुटा दीं। जिस समय वह अपने पद पर सुशोभित हुआ था उस समय जर्मन राज्यों पर आस्ट्रिया का प्रभुत्व था। वैदेशिक गगन मण्डल भी तिमिराच्छादित था। ऐसा प्रतीत होता था कि फ्रांस का सम्राट नैपोलियन तृतीय रूस से संधि करके प्रशा के लिये जर्मनी में कठिनाइयां उत्पन्न करेगा। यदि वह अपने उद्देश्य में कृतकार्य हो जाता तो सम्भवत: प्रशा को जर्मनी का नेतृत्व प्राप्त न होता। बिज़मार्क के सौभाग्य से सन् १८६३ ई० के प्रारम्भ में एक ऐसा अवसर उपस्थित हुआ जिसकी सहायता से उसने अपनी नीति को सफल बनाने में सफलता प्राप्त की। इस वर्ष पोलैंड के निवासियों ने स्वाधीनता प्राप्त करने के विचार से रूस के विरुद्ध विद्रोह किया। यह उनका दूसरा विद्रोह था। प्रथम विद्रोह सन् १८३० ई० में हुआ था। इसका उल्लेख हमने दूसरे अध्याय में किया था। यह विद्रोह सफल न हो सका था। दूसरे विद्रोह के समय इंग्लैंड और फ्रांस में शासन और जनता की ओर से पोलों के लिये सहानुभूति प्रकट की गई। परन्तु बिज़मार्क ने ऐसी भूल नहीं की। इसके विपरीत उसने ज़ार को प्रसन्न करने के लिये अपनी सेनायें पूर्वीय सीमा पर एकत्रित कीं। यह देखकर ज़ार को विश्वास हो गया कि यूरोप की शक्तियां पोलैंड के विद्रोह का तमाशा दूर ही से देखती रहेंगी। अतएव उसने उसे कठोरता से दबा दिया। जिस नीति से नैपोलियन तृतीय ने काम लिया था, उससे पोलों को तो किसी प्रकार की सहायता प्राप्त नहीं हुई, किन्तु उसके कारण ज़ार बहुत अप्रसन्न हुआ और रूस तथा फ्रांस की संधि असम्भव हो गई। इसके विपरीत बिज़मार्क के व्यवहार ने ज़ार की बड़ी सहायता की। उसके कारण रूस और प्रशा में संधि हो गई और प्रशा के राजनीतिज्ञ को जर्मनी में स्वेच्छापूर्वक कार्य करने की स्वतन्त्रता मिल गई। बिज़मार्क की नीतिपटुता संकट से खाली न थी। यदि फ्रांस, इंग्लैंड और आस्ट्रिया युद्ध की घोषणा कर देते तो उनके आक्रमणों का पहला प्रहार प्रशा को ही सहन करना पड़ता। उसकी नीति द्वारा सब से बड़ा लाभ यह हुआ कि जर्मनी में आस्ट्रिया के स्थान प्रशा का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

इसके पश्चात् शीघ्र ही आस्ट्रिया और प्रशा के बीच नियमानुसार युद्ध

की स्थिति उपस्थित हुई। यह युद्ध श्लाज़विग-होल्स्टीन (Schleswig Holstein) की डचियों के सम्बन्ध में घटित हुआ। ये दोनों डची कथन मात्र को डेन्मार्क के शासन के अधीन थीं, किन्तु चार शताब्दियों से वे स्वाधीन जीवन व्यतीत कर रही थीं। डेन्मार्क के राष्ट्रीय दल का प्रयत्न था कि किसी प्रकार ये दोनों देश डेनिश साम्राज्य में सम्मिलित कर लिये जांय, किन्तु इसमें उसे सफलता न मिल सकी। श्लाज़विग-होल्स्टीन की समस्या इसलिये और भी अधिक उलझ गई थी कि डेन्मार्क में, शासकों की पितृ परम्परा समाप्त होने वाली थी और सैलिक नियम (Salic Law) के अनुसार उपरोक्त डचियों में कोई स्त्री शासन न कर सकती थी। इसका यह अर्थ हुआ कि यदि उनकी स्वाधीनता पूर्व ही समाप्त न कर दी गई तो उपरोक्त देश से उनका सम्बन्ध शीघ्र ही विच्छेद हो जायेगा। सन् १८४८ ई० में उनके विषय में प्रथम गम्भीर प्रश्न उपस्थित हुआ। इस वर्ष होल्स्टीन के निवासियों ने डेन्मार्क के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया, और सन् १८१५ ई० के जर्मन संघ में सम्मिलित होने के नाते जर्मनी के निवासियों से सहायता के इच्छुक हुये। परन्तु इस प्रश्न का सम्बन्ध केवल जर्मनी से न था। उसका सम्बन्ध अन्य यूरोपीय देशों से भी था। यदि ये दोनों डची डेन्मार्क से पृथक होकर प्रशा के अधीन हो जातीं तो अन्तिम देश की जल-शक्ति और महानता अधिक बढ़ जाती। यह एक ऐसी बात थी जिसे इंग्लैंड और फ्रांस सहन नहीं कर सकते थे। सन् १८५२ ई० में इस समस्या का हल निकाला गया। इस वर्ष लन्दन की सन्धि से यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि श्लाज़विग-होल्स्टीन डेन्मार्क के अधीन रहेंगे, परन्तु वे उसके साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किये जायेंगे। यह कोई नई बात न थी। दूसरे शब्दों में उनकी वही स्थिति बनी रही जो पूर्व से स्थापित थी। इस मामले में एक प्रकार से डेन्मार्क को सफलता मिली थी। परन्तु इस से काम न चला, और जर्मन संघ से उसके सम्बन्ध नित्य नित्य बिगड़ते गये।

श्लाज़विग-होल्स्टीन की समस्या

सन् १८६३ ई० में इस समस्या ने एक विकट रूप धारण किया। डेन्मार्क के राष्ट्रीय दल ने इस वर्ष यह देख कर कि यूरोप की महाशक्तियां पोलैंड की ओर आकर्षित हैं, श्लाज़विग होल्स्टीन के लिये एक नवीन संविधान निर्मित किया, जिससे व्यवहारिक रूप में श्लाज़विग की स्वाधीनता समाप्त हो गई। यह कार्य लन्दन की संधि के पूर्णतया विरुद्ध था, परन्तु बिस्मार्क उसके कारण बहुत प्रसन्न हुआ। उसे एक ऐसा सुअवसर प्राप्त हुआ जिससे लाभ

डेन्मार्क के विरुद्ध युद्ध, १८६४ ई०

उठाकर उसने प्रशा को अत्यधिक लाभ पहुँचाया। उसने आस्ट्रिया के शासन से कहा कि यह एक ऐसा विषय है जिसके सम्बन्ध में उसे और प्रशा को मिलकर काम करना चाहिये। आस्ट्रिया का शासन नेपोलियन तृतीय की इटैली सम्बन्धी नीति के कारण भयभीत था*। अतएव उसने प्रशा के प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार कर लिया। उन्हें बहाना भी शीघ्र ही मिल गया, क्योंकि सन् १८६३ ई० में डेनमार्क लंदन की संधि के विरुद्ध कार्य कर चुका था। युद्ध में दोनों शक्तियों ने मिलकर डेनमार्क को सरलता से परास्त किया (सन् १८६४ ई०)। इसका एक विशेष कारण यह था कि वह किसी अन्य देश से सहायता प्राप्त न कर सका था। अक्टूबर सन् १८६४ ई० में उसके शासन को वीयेना की संधि के अनुसार दोनों डचियों से वंचित होना पड़ा और अपने स्थान में उन पर आस्ट्रिया और प्रशा का प्रभुत्व स्वीकार करना पड़ा।

आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध, सन् १८६६ ई०

डेनिश युद्ध का अन्तिम परिणाम वही हुआ जो बिज़मार्क ने पहले से समझ लिया था। श्लाज़विग और होल्स्टीन के साथ क्या व्यवहार किया जाय, इस प्रश्न पर आस्ट्रिया और प्रशा में पारस्परिक वैमनस्य उत्पन्न हुआ। प्रथम ने तुरन्त यह मत प्रकट किया कि दोनों डचियों को संयुक्त करके एक पृथक राज्य बना दिया जाय, और उसका शासन उसकी इच्छा के अनुसार जर्मनी के किसी राजकुमार के अधीन कर दिया जाय, जो जर्मन संघ में सम्मिलित रहेगा। जर्मन डाइट ने भी उक्त प्रस्ताव को साधारण बहुमत से स्वीकार कर लिया। बिज़मार्क का कथन था कि डाइट को इस विषय में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। सारांश यह कि इस सम्बन्ध में आस्ट्रिया तथा प्रशा के बीच विद्वेष बढ़ गया, किन्तु युद्ध आरम्भ करने से पूर्व, उन्होंने परस्पर सन् १८६५ ई० में गैस्टीन के प्रतिज्ञापत्र (Convention of Gastein) से यह निर्णय किया कि अस्थायी रूप से श्लाज़विग पर प्रशा का अधिकार रहेगा तथा होल्स्टीन आस्ट्रिया के अधिकार में दे दिया जायेगा। यह प्रबन्ध बिज़मार्क की योजना के अनुसार था। इससे यूरोप के शासकों तथा राजनीतिज्ञों ने यह नतीजा निकाला कि प्रशा युद्ध से दूर रहना चाहता है, किन्तु आस्ट्रिया युद्ध का इच्छुक है, क्योंकि उसने अपने प्रथम प्रस्ताव के विरुद्ध निर्णय किया था।

होल्स्टीन के चारों ओर प्रशा का साम्राज्य था। अतएव बिज़मार्क ने बिना किसी कठिनाई के वहाँ आस्ट्रिया के विरुद्ध षड्यन्त्र रचवाये। इसके अतिरिक्त उसने इस बात का भी प्रयत्न किया कि भावी युद्ध में यूरोप का कोई अन्य देश हस्तक्षेप न करे। उसका ध्यान ग्रेट ब्रिटेन, रूस, फ्रांस और इटैली के राज्य की ओर गया, जो

---

* अध्याय ८

हाल ही में स्थापित किया गया था। ग्रेट ब्रिटेन और रूस की ओर से उसे आशंका न थी। प्रथम देश के निवासी प्रशा की स्वतन्त्र व्यापार की नीति से प्रसन्न थे। इसके अतिरिक्त वे इसके भी विरुद्ध थे कि प्रशा जर्मनी के एकीकरण में किसी प्रकार की रुकावट डाले। जार भी आस्ट्रिया के विरुद्ध तथा प्रशा के अनुकूल था। आस्ट्रिया ने क्रीमिया के युद्ध में उसकी सहायता न की थी। इसके विपरीत प्रशा पोलैंड के सम्बन्ध में उसकी सहायता कर चुका था। फ्रांस को अपने पक्ष में करना कठिन था। वहां के निवासी इसके विरुद्ध थे कि राइन नदी के तट पर कोई दूसरा शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित किया जाय। इसके होते हुये भी बिजमार्क ने नेपोलियन तृतीय से भेंट की, और उसे प्रलोभन देकर आने वाले युद्ध की ओर से उदासीन बना दिया। इटैली से उसने इस शर्त पर संधि करली कि यदि तीन मास के भीतर आस्ट्रिया और प्रशा के बीच युद्ध हुआ तो इटैली द्वितीय देश का साथ देगी, और इसके बदले में उसे वेनीशिया का देश दे दिया जायेगा।

अब बिजमार्क ने आस्ट्रिया के विरुद्ध उच्च स्तर पर षड्यन्त्र तथा प्रचार करना प्रारम्भ किया। उसने केवल अपनी इच्छा और नीति के अनुसार आस्ट्रिया को युद्ध करने के लिये बाध्य किया। प्रशा के निवासी युद्ध के विरुद्ध थे। जर्मनी के अन्य राज्य भी उसके अनुकूल न थे। इसके अतिरिक्त भी उसने आस्ट्रिया को युद्ध की घोषणा करने को विवश कर दिया। यह युद्ध केवल सात सप्ताह तक चला। इसलिये वह इतिहास में इसी नाम से प्रसिद्ध है। आस्ट्रिया साडोवा (Sadowa) अथवा कनिग्ग्रट्स (Koniggratz) के युद्ध में बुरी प्रकार परास्त हुआ (जौलाई सन् १८६६ ई०)। इसके पश्चात् जर्मनी के छोटे राज्यों को भी, जिन्होंने आस्ट्रिया का साथ दिया था, पूर्ण पराजय हुई। ये राज्य मेन (Main) नदी के दक्षिण में स्थित थे। इनमें बवेरिया तथा वूर्टम्बर्ग मुख्य थे। अब बिजमार्क ने जर्मनी में एक ऐसी राजनैतिक व्यवस्था स्थापित की जिससे वहाँ आस्ट्रिया के स्थान में प्रशा का प्रभुत्व स्थापित हो गया तथा जर्मनी के एकीकरण का कार्य भी सरल हो गया। युद्ध के पश्चात् जो संधि की गई उसकी सभी शर्तें प्रशा के अनुकूल रक्खी गई थीं। प्रेग की संधि (अगस्त सन् १८६६ ई०) से उसने श्लाज़विग और होल्स्टीन की डचियों के अतिरिक्त हनोवर (Hanover), हैस-कैसेल (Hesse-Cassel), हैस-[illegible] Darmstadt) के कुछ भागों तथा फ्रैंकफोर्ट नगर को अपने [illegible]। इस प्रकार उसकी जनसंख्या ४० लाख हो गई। जर्मनी का संघ, जो सन् १८१५ ई० में स्थापित किया गया था, तोड़ दिया गया और आस्ट्रिया सदा के लिये जर्मनी के मामलों में हस्तक्षेप करने से वंचित कर दिया गया। उत्तरी राज्यों को मिला कर एक नया संघ (Federation) स्थापित किया गया, जिसका संरक्षक प्रशा था। इसके लिये दो सभायें नियत की गईं। प्रथम, असेम्बली

(Reichstag) जिसके सदस्य विभिन्न राज्यों के बालिग़ मर्दों की ओर से निर्वाचित किये जाते थे। द्वितीय, कौंसिल (Bundersrath) जिसमें उनके द्वारा नियुक्त किये गये प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे। संघ की सेना और वैदेशिक नीति प्रशा के बादशाह के अधीन छोड़ दी गई थीं, किन्तु सब राज्यों को अपना आंतरिक प्रबंध करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। दक्षिण के राज्य अर्थात् बवेरिया, बादन तथा वूरटम्बर्ग आदि फ्रांस के सम्राट नेपोलियन तृतीय की ओर से भयभीत थे। इसलिये उत्तरीय संघ में सम्मिलित न होते हुये भी उन्होंने प्रशा से आक्रमण व रक्षा सम्बन्धी संधि कर ली। इस प्रकार उनकी सेनाओं पर प्रथम का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

सात सप्ताहों का युद्ध (Seven Week's War) यद्यपि अल्पकालीन था तथापि उसका महत्व कम नहीं है। उसके कई बड़े परिणाम हुये, जिनमें से कुछ का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। सुविधा के विचार से हम उन पर पुनः प्रकाश डालते हैं—(१) जर्मनी में आस्ट्रिया के प्रभुत्व का अन्त हो गया। (२) उसके स्थान में वहां प्रशा का प्रभुत्व स्थापित हो गया। प्रशा के साम्राज्य में भी अधिक वृद्धि हुई। (३) इटली के शासन ने वेनीशिया पर अधिकार कर लिया। (४) उत्तरी जर्मनी के संघ की स्थापना। (५) दक्षिणी राज्यों की स्वाधीनता परन्तु उन पर प्रशा का प्रभाव। (६) बिस्मार्क की ख्याति तथा गौरव में अत्यधिक वृद्धि। सभी राजनैतिक दलों के लोग उसे राष्ट्रीय योद्धा मानने लगे थे। सन् १८६७ ई० में उसने प्रशा के प्राचीन शंविधान को पुनः स्थापित कर दिया और विधान-मंडल से उन अवैधानिक कार्यों के लिये, जो उसने गत चार वर्षों में किये थे, क्षमा प्राप्त कर ली। (७) आस्ट्रिया के साम्राज्य में भी राष्ट्रीय आन्दोलन का ज़ोर बढ़ गया। इन परिणामों को ध्यान में रखकर हम कह सकते हैं कि सात सप्ताहों के युद्ध का महत्व किसी भी दशा में कम नहीं था।

आस्ट्रिया और प्रशा के युद्ध से द्वितीय की युद्धशक्ति और महत्व में अधिक वृद्धि हो गई थी। किन्तु यह द्वितीय के अधीन जर्मन साम्राज्य की स्थापना की केवल प्रथम सीढ़ी थी। इसकी दूसरी सीढ़ी प्रशा और फ्रांस का युद्ध (१८७०-७१) था। प्रशा के दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण-पश्चिम में दोनों ही ओर, बिल्कुल निकट अथवा कुछ दूर हटकर, महान् शक्तियां थीं। यदि एक ओर आस्ट्रिया था तो दूसरी ओर फ्रांस था। यदि बिज़मार्क अपनी नीतिपटुता और युद्धशक्ति की सहायता से एक को परास्त कर सकता था तो वह द्वितीय को भी उनकी सहायता से नीचा दिखा सकता था। फ्रांस और जर्मनी की शत्रुता बहुत प्राचीन थी। सब के अन्त में नेपोलियन बोनापार्ट ने जर्मन

(३) फ्रांस से संबंध

राज्यों को विजय करके उन्हें अपने अधीन कर लिया था। प्रशा ने अन्य देशों की सहायता से इसका बदला अवश्य ले लिया था, किन्तु उसके घाव अभी भरे न थे। उधर फ्रांस का सम्राट तथा उसके मन्त्री इसको सहन न कर सकते थे कि उनके पूर्व में संगठित जर्मनी का राज्य हो। कई शताब्दियों तक असंगठित जर्मनी उनके संतोष और लाभ का साधन रह चुका था। अब वे इस बात को कैसे सहन कर सकते थे कि जर्मनी का एकीकरण किया जाय और वह भी प्रशा और उसके शक्तिशाली बादशाह विलियम प्रथम तथा उसके मन्त्री बिस्मार्क के नेतृत्व में? इन दोनों के कारण सन १८६४ ई० तथा सन् १८७० ई० के बीच फ्रांस के सम्राट नैपोलियन तृतीय की महत्वाकांक्षायें दबी रही थीं। जर्मनी के युद्धों तथा उनके सम्बन्ध में जो वार्तालाप अथवा पत्रव्यवहार किया गया था उसके करते समय
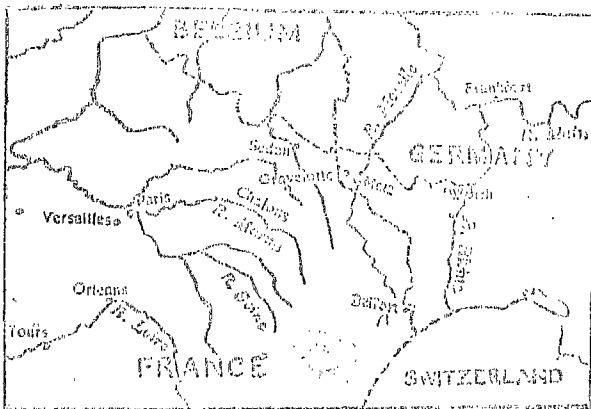
प्रशा तथा फ्रांस का युद्ध, १८७०-७१ ई०

फ्रांस का विचार नाम मात्र को भी न किया गया था। नैपोलियन तृतीय स्वेच्छा-पूर्वक देशों को भी विजय न कर सका था। यदि प्रशा आस्ट्रिया को सन् १८६६ ई० में परास्त कर चुका था तो फ्रांस भी आस्ट्रिया को सन् १८५९ ई० में हरा चुका था। क्या फ्रांस और उसके सम्राट के लिये आवश्यक न था कि वे प्रशा को युद्धक्षेत्र में परास्त करके अपनी शक्ति तथा महत्व का पुनः परिचय दें? यह फ्रांस के राष्ट्रीय सम्मान का प्रश्न था।

इन सब महत्वाकांक्षाओं और गर्वपूर्ण विचारों के होते हुये भी नैपोलियन तृतीय पूर्ण रूप से युद्ध करने के लिए तैयार न था। उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। उसे कोई सहायक भी दिखलाई न पड़ता था। क्रीमिया के युद्ध के कारण रूस का ज़ार उसके विरुद्ध तथा जर्मनी के अनुकूल था। आस्ट्रिया के बादशाह से किसी

प्रकार की आशा रखना व्यर्थ था। इसलिये कि नेपोलियन प्रशा से भी पूर्व उसे युद्ध में परास्त कर चुका था। इटैली का बादशाह उसका सहायक कैसे हो सकता था जब फ्रांसीसी सेनायें उस समय भी रोम में पड़ी हुई थीं और जब आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध के समय मित्र होते हुये भी वह उसे धोखा दे चुका था? ग्रेट ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ अब उस पर बिल्कुल भरोसा न करते थे, और वहां की साधारण जनता उससे पूर्ण रूप से विरुद्ध थी। बवेरिया तथा दक्षिणी जर्मनी के अन्य राज्य, जिन्होंने सदा फ्रांस का साथ दिया था, उसे सन्देह की दृष्टि से देखते थे तथा प्रशा से मिलकर काम करने का निर्णय कर चुके थे। इन कठिनाइयों के होते हुये भी नेपोलियन तृतीय युद्ध का अभिलाषी था। युद्ध की सफलताओं के बिना न वह उस ख्याति व प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त कर सकता था जो हाल में उसके हाथ से निकल चुकी थी और न वह उस विरोध का अन्त कर सकता था जो नित्य प्रति फ्रांस में बढ़ रहा था।

ऐसी दशा में जब बिस्मार्क और नेपोलियन तृतीय दोनों युद्ध को आवश्यक समझते थे, यूरोप में एक बहुत बड़ा तूफान उत्पन्न करने के लिये सामग्री की भी कमी न थी। सन् १८७० ई० की बसंत ऋतु में राजनैतिक आकाश युद्ध की काली घटाओं से बिल्कुल साफ था तथा कुछ देशों में सैनिक दलों को कम करने के प्रस्ताव भी उपस्थित किये जा रहे थे। नेपोलियन ने वास्तव में वार्षिक भर्ती को दस सहस्र कम कर दिया था। फ्रांस का मंत्री ओलिवियै (Ollivier) और इंग्लैंड का मन्त्री ग्रेनविल (Granville) कहने लगे कि यूरोप में शांति स्थापित रखने का इस से अच्छा समय कभी नहीं आया। उन्होंने भी वही भूल की जो छोटा पिट फ्रांस की सन् १७८९ ई० की क्रांति के विषय में कर चुका था। यह बात अगस्त सन् १८७० ई० के पूर्व की है। उपरोक्त मास में अकस्मात् एक तूफान उठा और फ्रांस तथा प्रशा के बीच युद्ध (१८७०-१८७१) आरम्भ हो गया।

स्पेन के सिंहासन के लिए प्रशा जाति का बादशाह

अबकी बार यूरोप के राष्ट्रों के बीच इस प्रकार गुत्थी पड़ी। सन् १८६८ ई० में स्पेन में एक विद्रोह हुआ था, जिसके कारण वहां की महारानी इज़ाबेला को राजसिंहासन से वंचित होकर बाहर चला जाना पड़ा था। इसके पश्चात् दो वर्ष तक स्पेन का शासन उसके लिये किसी उपयुक्त उत्तराधिकारी की खोज करता रहा। अन्त में उसे एक उचित व्यक्ति मिल गया। वह होहेनज़ोलर्न-सिगमरिंगेन (Hohenzollern-Sigmaringen) वंश का राजकुमार लिओपोल्ड था।

वह दक्षिणी जर्मनी का निवासी तथा प्रशा के राजवंश की रोमन कैथोलिक शाखा का सदस्य था। उसका ज्येष्ठ भ्राता राजकुमार चार्ल्स हाल ही में रूमानिया के राज-सिंहासन के लिये उपयुक्त समझा गया था। वह बोनापार्ट वंश का सम्बन्धी भी था। इसलिये उसकी नियुक्ति से स्पेन और फ्रांस दोनों के निवासियों को संतुष्ट हो जाना चाहिये था। बिस्मार्क भी उसके अनुकूल था, परन्तु लियोपोल्ड ने सिंहासन को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। ऐसा प्रतीत होता था कि यह मामला इसी प्रकार समाप्त हो जायेगा, परन्तु ऐसा न हुआ। बिस्मार्क के कहने से उस पर फिर दबाव डाला गया। अबकी बार उसने जौलाई के प्रारम्भ में नवीन पद को स्वीकार कर लिया। यह ज्ञात करके यूरोप के निवासियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। फ्रांस में इसका घोर विरोध किया गया। वहां के शासन ने इस प्रबन्ध को पहले ही अस्वीकृत कर दिया था। अब वहां के समाचारपत्रों ने प्रशा के विरुद्ध विष उगलना आरम्भ किया। फ्रांस का वैदेशिक मन्त्री कहने लगा, "हमें ज्ञात है कि हमारे कर्तव्य का पालन बिना संकोच और बिना निर्बलता दिखलाये किस प्रकार हो सकता है।" यह एक प्रकार की चुनौती थी, जिसके द्वारा फ्रांस के शासन ने बिस्मार्क को ललकारा था। इसके पश्चात् भी उसका ढंग न बदला, जिससे साधारणतया लोगों ने यह परिणाम निकाला कि वह जानबूझ कर प्रशा के विरुद्ध युद्ध का इच्छुक है। इस मामले को समाप्त करने के लिए विलियम प्रथम ने सिगमारिंगेन पर दबाव डालकर उसके अधिकार को लौटवा दिया। इसलिये ओलिवियर प्रसन्न होकर कहने लगा, "अब हमें शान्ति उपलब्ध हो गई है। अब हम उसे हाथ से न जाने देंगे।" परन्तु प्रशा और फ्रांस दोनों देशों में सैनिक पदाधिकारी और कुछ अन्य लोग युद्ध करने के लिये तत्पर थे। वे यूरोप की शान्ति भंग करना चाहते थे।

एम्स का तार
(१३ जौलाई)

१३ जौलाई सन् १८७० ई० को प्रशा के बादशाह विलियम प्रथम ने फ्रांस के प्रतिनिधि बेनेडेटी (Benedetti) से प्रशा के पश्चिमी भाग में एम्स (Ems) में भेंट की, जहां वह स्वास्थ्यकारी स्रोत के जल से लाभ उठाने के लिये ठहरा हुआ था। द्वितीय ने प्रशा के शासक से यह प्रतिज्ञा कराने का प्रयत्न किया कि उसकी ओर से लियोपोल्ड को स्पेन के राजसिंहासन पर बिठलाने का प्रयत्न कभी न किया जायेगा। इसके बाद समाचार आया कि लियो-पोल्ड वास्तव में उससे वंचित हो गया है। अतएव उक्त मामले को समाप्त हो जाना चाहिये था। परन्तु दोनों ही पक्षों के युद्ध के अभिलाषी लोगों ने उसे एक अत्यन्त बुरा रूप दे दिया। विलियम ने अपनी भेंट की सूचना तार के द्वारा

बिज़मार्क को दी। बिज़मार्क ने अपनी इच्छा से उसके कुछ वाक्यों को हटाकर उसे फ्रांस के पत्रों में प्रकाशित करा दिया। तार में नाम मात्र को भी हेरफेर नहीं किया गया था, केवल उसको संक्षिप्त कर दिया गया था। नये रूप में वह फ्रांस और जर्मनी दोनों के लिये इतना अधिक अपमानजनक था कि उसके पढ़ने से फ्रांसीसियों ने यह परिणाम निकाला कि प्रशा के बादशाह ने उनके प्रतिनिधि का अपमान किया है। जर्मनी के निवासी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि फ्रांस के प्रतिनिधि ने प्रशा के बादशाह का अपमान किया है। इस प्रकार उपरोक्त तार ने दोनों ही पक्षों पर बुरा प्रभाव डाला। जिस दिन वह समाचारपत्रों में प्रकाशित किया गया था उस दिन फ्रांस में बैस्तील की विजय का वार्षिक समारोह था। इसलिये उसको पढ़कर जनता का जोश अपनी चरम सीमा तक पहुंच गया। नैपोलियन तृतीय ने किसी सीमा तक अन्तिम समय में युद्ध के विरुद्ध मत प्रकट किया, किन्तु उसके मन्त्रिमण्डल ने युद्ध का निर्णय कर लिया था। फ्रांस का वैदेशिक मन्त्री कहने लगा, "श्रीमान्, यदि आपने पुनः कांग्रेस का नाम लिया तो मैं अपना त्यागपत्र आपके चरणों पर फेंक दूंगा।" उधर जर्मनी में भी सब लोग फ्रांस के इस निर्णय से हर्षित हुये। प्रशा का मुख्य मन्त्री बिज़मार्क, वहां का गृहमन्त्री वोन रोन (Von Roon) और अधिकारीगण अधिपति मोल्ट्क (Moltke) युद्ध के लिये पूर्व ही से तैयार थे। उन्हें वह अवसर मिल गया था जिसकी वह प्रतीक्षा कर रहे थे। रोन कहने लगा, "हमारा पहले का ईश्वर अब भी जीवित है और वह हमें अपमान की दशा में न मरने देगा।" मोल्ट्क अपनी छाती ठोक कर कहने लगा, "यदि मरने के पूर्व मुझे केवल इस युद्ध में अपनी सेनाओं का नेतृत्व करने का सुयोग प्राप्त होजाय तो बाद को शैतान सीधा चला आ सकता है और इस बूढ़े पिंजर को उठा ले जा सकता है।"

फ्रांस और प्रशा का युद्ध १८७०–१८७१

दो सप्ताहों के अन्दर जर्मन सेनायें रणक्षेत्र के लिये तैयार हो गईं। दक्षिण के राज्यों ने भी विलियम प्रथम की ओर से युद्ध में भाग लेना स्वीकार किया। सब मिलाकर जर्मन सेनाओं की संख्या ४ लाख ५० हज़ार थी। वे तीन भागों में विभाजित थीं। प्रशा का बादशाह स्वयं सेना के साथ था। तीनों सेनाओं ने लूकसोंबूर (Luxumbourg) से राइन नदी तक एक पंक्ति बनाते हुये भिन्न स्थानों से फ्रांस पर आक्रमण किया। उनके विरोध में फ्रांसीसी सेनायें थीं। मेट्स (Metz) की सेना नैपोलियन तृतीय के सेनापतित्व में थी तथा दक्षिण-पूर्व की सेना माकमों (Mac Mahon) के अधीन थी। युद्ध लगभग एक माह तक होता रहा। [illegible]

युद्धों में फ्रांसीसियों को परास्त किया। उदाहरणार्थ स्पीकैरेन (Spicheren), वर्ट (Wort) और ग्रावलौट (Gravelotte) आदि। सबसे बड़ा और प्रसिद्ध युद्ध १ सितम्बर को सदाँ (Sedan) के स्थान पर हुआ। यहाँ फ्रांसीसियों की सेना जो दक्षिण-पूर्व से उत्तर की ओर चली आई थी, चारों ओर से घेर ली गई। शत्रु ने उस पर चारों ओर से गोलियों की वर्षा की। ऐसा प्रतीत होता था कि वह पूर्णतया नष्ट हो जायेगी। यह दशा देखकर नेपोलियन तृतीय ने विलियम प्रथम के नाम एक पत्र लिखा और बिज़मार्क से भी भेंट की, किन्तु इससे कोई लाभ न हुआ। विवश होकर उसने ८३ सहस्र सैनिकों के साथ उपरोक्त नगर में शस्त्र डाल दिये। यह घटना २ सितम्बर की है। ३ सितम्बर को फ्रांस का सम्राट नेपोलियन तृतीय कास्सेल (Cassel) नगर के निकट नज़रबन्द कर दिया गया। इस प्रकार बोनापार्ट वंश का पूर्ण पतन हो गया।* युद्ध के समाप्त हो जाने पर वह बंदी जीवन से मुक्त कर दिया गया। तत्पश्चात् वह इंग्लैंड चला गया। सन् १८७३ ई० में उसने इस नश्वर शरीर से मुक्ति पाई। फ्रांस में सदाँ के युद्ध के पश्चात् द्वितीय साम्राज्य के स्थान में तृतीय गण-राज्य (Third Republic) स्थापित किया गया, जो दीर्घकाल तक स्थापित रहा। उसका अध्यक्ष बनने का श्रेय तेयर को प्राप्त हुआ। सन् १८७० ई० में फ्रांस की सेनायें सन् १७९२ ई० के समान शक्तिशाली और अस्त्र-शस्त्र से सज्जित न थीं। इसके प्रतिकूल प्रशा की सेनायें पहले वर्ष की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली तथा सज्जित थीं। यही फ्रांसीसियों की पराजय का सबसे बड़ा कारण था।

सदाँ से जर्मन सेनायें पेरिस की ओर बढ़ीं। यह देखकर तेयर विदेश से सहायता प्राप्त करने की आशा में बाहर चला गया और फ्रांस का शासन टूर नगर में उठ आया। १९ सितम्बर को जर्मन सेनाओं ने पेरिस के चारों ओर घेरा डाल दिया। इसके कुछ दिवस पश्चात् गणतन्त्रवादी दल का शक्तिशाली नेता गम्बेट्टा (Gambetta) एक गुब्बारे में बैठकर राजधानी के बाहर निकल आया और शासन को अपने हाथ में लेकर, प्रान्तों में जर्मनों का सामना करने के लिये सेना एकत्रित करने लगा। समस्त फ्रांसीसी राष्ट्र शस्त्र लेकर शत्रु का सामना करने के लिये तत्पर होगया। अन्य देशों से भी गारीबाल्डी तथा उसके पुत्रों की भाँति अगणित स्वयंसेवक आये। परन्तु इन समस्त प्रयत्नों के बाद भी, बिज़मार्क और

*नेपोलियन तृतीय के पुत्र राजकुमार 'नेपोलियन चतुर्थ' ने इंग्लैंड में सैनिक शिक्षा प्राप्त की थी। वह सन् १८७९ ई० में अफ्रीका में ज़ूलू जाति के विरुद्ध युद्ध में काम आया। उसकी स्त्री सम्राज्ञी यूजीनि (Eugenie) पति तथा पुत्र के बहुत बाद तक जीवित रही। उसका देहावसान प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् सन् १९२० ई० में हुआ।

मोल्टक की सेनाओं का सामना करना दुष्कर था। सितम्बर के अन्त में कई युद्धों में फ्रांसीसियों को पराजय प्राप्त हुई। १८ जनवरी सन् १८७१ ई० को उनकी एक सेना शत्रु का सामना करने का साहस न करके रणक्षेत्र से स्विटजरलैंड की दिशा में अदृश्य हो गई। इसीदिन प्रशा के बादशाह विलियम प्रथम का राज्याभिषेक, जर्मन सम्राट की स्थिति में वर्सेल्स के राजभवन में गौरव और प्रतिष्ठा के साथ किया गया। इस प्रकार जर्मन एकीकरण का कार्य पूर्ण हुआ। २८ जनवरी को रसद की कमी के कारण पेरिस नगर के फाटक खोल दिये गये।

१० मई सन् १८७१ को फ्रैंकफोर्ट नगर में दोनों पक्षों ने संधि की शर्तों पर हस्ताक्षर किये। वे उतनी कठिन न थीं जितना कि बिस्मार्क चाहता था। फ्रांस ने आल्सास और लोरेन के देश जर्मनी को दे दिये। इसी प्रकार कुछ अत्यन्त उपयोगी लोहे की खानों पर भी जर्मनी का अधिकार हो गया। फ्रांस ने २० करोड़ पौण्ड के बराबर धन युद्ध की क्षति पूर्ति के रूप में देना भी स्वीकार किया। यह तीन वर्षों में दिया जा सकता था, किन्तु उस समय के लिये जर्मन सेनायें फ्रांस में नियत कर दी गईं।

फ्रैंकफोर्ट की संधि, मई १८७१ ई०

फ्रांस और जर्मनी का युद्ध जिसका वर्णन हम समाप्त कर रहे हैं, यूरोप के इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। इसके अतिरिक्त कि जर्मनी को राइन नदी के पश्चिमी किनारे पर अपने कुछ प्राचीन देश पुनः प्राप्त हो गये, इसके कुछ अन्य बड़े परिणाम भी हुये। उसके कारण जर्मनी की शक्ति में इतनी अधिक वृद्धि हो गई थी कि यूरोप का कोई भी देश अकेला उसका सामना न कर सकता था। जर्मनी में बिस्मार्क की शान और प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गये थे। दक्षिण के राज्यों को सम्मिलित करके प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के एकीकरण का कार्य पूरा हो गया था। यह बिस्मार्क की सब से बड़ी महत्त्वाकांक्षा थी। जर्मनी को यूरोप के अन्य राष्ट्रों के समान स्थान प्राप्त हो गया था। उपरोक्त युद्ध का प्रभाव अन्य देशों पर भी पड़ा। इटली में विक्टर ऐमेनुअल की सेना ने रोम पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार इटली के एकीकरण का कार्य भी पूरा हुआ तथा पोप के राजनैतिक अधिकारों का अन्त हो गया। अपने शत्रु नैपोलियन तृतीय के पतन को देखकर रूस के ज़ार ने सन् १८५६ ई० की संधि के विरुद्ध काले सागर पर अपना प्रभाव बढ़ा लिया। जर्मनी में एक ऐसे साम्राज्य का अभ्युदय हुआ जो आस्ट्रिया के प्रभाव से उन्मुक्त था। फ्रांस में तृतीय गण-राज्य की स्थापना हुई। प्रशा के बादशाह

युद्ध के परिणाम

विलियम प्रथम की शक्ति और कीर्ति बढ़ गई थी, और नेपोलियन तृतीय इंग्लैंड में देश निष्कासन का जीवन व्यतीत कर रहा था। उसके पतन के साथ साथ उन सिद्धान्तों का भी अन्त हो गया था जिनका पोषण उसने तथा उसके चाचा ने किया था।

दसवां अध्याय

ग्रेट ब्रिटेन में लोकतन्त्र का चमत्कार—

राजनैतिक सुधार

यह एक आश्चर्यपूर्ण विषय है कि ग्रेट ब्रिटेन में निरंकुश शासन का अंत तो सब से पूर्व हुआ था, किन्तु वास्तव में जनता को वास्तविक रूप में शासन में भाग देने के सम्बन्ध में वह यूरोप के कुछ अन्य देशों की भांति बहुत पीछे रहा। सत्रहवीं शताब्दी में वहां जो राजनैतिक क्रांतियां की गयीं थीं उनसे शासन का निरंकुश स्वरूप समाप्त कर दिया गया था, किन्तु उसके स्थान में वहां लोकतन्त्र के आधार पर उपयुक्त शासन की स्थापना उन्नीसवीं शताब्दी से पहले संभव न हो सकी। ग्रेट ब्रिटेन कई प्रकार से उदारवाद का समर्थक था और संविधानीय शासन की स्थापना में उसका स्थान यूरोप के देशों की तुलना में सबसे उच्च था, परन्तु सन् १८३२ ई० तक और सम्भवतः इससे भी कुछ बाद तक उसका शासनसूत्र सामान्य जनता के अधीन होने के स्थान में धन सम्पन्न लोगों और विशेष कर कुलीनों के प्राचीन वंशों के अधीन था। सन् १७७० ई० और सन् १८३२ ई० के बीच औद्योगिक क्रांति के कारण वहां समाज में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुये थे। देहात के लोग सहस्रों की संख्या में कस्बों में चले आये थे तथा मध्यम श्रेणी के व्यवसायियों का महत्व बहुत बढ़ गया था, किन्तु शासन पर उस समय तक पहले की भांति धनी लोगों की कुछ विशेष श्रेणियों का, जो वहां बहुत पहले से रहती थीं, प्रभाव था। उदाहरणार्थ, उपाधिधारी भूमिधर, ऐंग्लिकन मत के पादरी, ग्रामों के उच्च श्रेणी के लोग तथा व्यवसायी पूंजीपति इत्यादि।

पार्लेमेंट की अनुदार रचना

मुख्य प्रश्न पार्लेमेंट अथवा संसद का था, जिसकी रचनाशैली सन् १८३२ ई० तक पूर्णरूप से लोकतन्त्र के अनुसार न थी। आधुनिक काल के लोकतन्त्र शासनों का एक विशेष सिद्धान्त यह है, कि विधान-मण्डल में से कम से कम एक सभा ऐसी हो जिसमें सर्वसाधारण के प्रतिनिधि बैठते हों, तथा उनका चुनाव उचित रीति से निर्वाचन के विभिन्न क्षेत्रों से किया गया हो।

परन्तु ग्रेट ब्रिटेन में ऐसा न था। वहां न निर्वाचन के उचित क्षेत्र थे और न सदस्यों का निर्वाचन जनसंख्या के आधार पर किया जाता था। इसके अतिरिक्त वहां सामान्य जनता को मतदान का अधिकार भी प्राप्त न था। सबसे बड़ा दोष यह था कि वोट देने वाले स्वेच्छापूर्वक वोट भी न दे सकते थे। जिन शहरों को बादशाह ने किसी विशेष कारण से प्राचीन काल में लोकसभा के लिये दो सदस्य चुनने का अधिकार प्रदान किया था वे उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी इससे लाभ उठा रहे थे, यद्यपि उनकी जनसंख्या पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गई थी। बरमिंघम, मैनचेस्टर तथा लीड्ज़ के समान कुछ नगर ऐसे भी थे जिनकी उन्नति औद्योगिक क्रांति के कारण हुई थी, परन्तु वे इस समय तक मतदान के अधिकारों से वंचित थे। कुछ ग्राम ऐसे भी थे जो किसी न किसी कारण से नगरों में परिवर्तित हो गये थे, परन्तु वे पार्लमेंट के लिये एक सदस्य भी निर्वाचित न कर सकते थे। इसके विरुद्ध पार्लमेंट में डनविच (Dunwich) का प्रतिनिधित्व था, यद्यपि दो शताब्दी पूर्व वह उत्तरीय सागर के गर्भ में विलीन हो चुका था। ओल्ड सेरम (Old Serum), जहां से इंग्लैंड के विख्यात मन्त्री बड़े पिट का निर्वाचन किया गया था, केवल एक हरे भरे टीले के समान था, जहां किसी समय एक क़स्बा स्थापित था। किन्तु लोकसभा में उसका प्रतिनिधित्व भी था। कुछ नगरों में वोट देने वालों की संख्या पच्चीस से भी कम थी। परन्तु उनमें से प्रत्येक मनुष्य लोकसभा के निर्वाचन में भाग लेकर देश की नीति निश्चित करने में सहायक हो सकता था। इसी प्रकार से जिलों (Counties) * का प्रतिनिधित्व भी असमान तथा अनुपयुक्त था। इसका सबसे प्रत्यक्ष उदाहरण कॉर्नवाल का है जिसकी जनसंख्या लगभग ढ़ाई लाख थी, किन्तु वहां से ४४ सदस्य पार्लमेंट के लिये निर्वाचित किये जाते थे, जब कि सम्पूर्ण स्काटलैंड से आठ गुनी जनसंख्या के होते हुये भी इससे केवल एक सदस्य अधिक निर्वाचित हो सका था।

आधुनिक काल के लोकतन्त्र शासनों का एक अन्य बड़ा सिद्धान्त यह है कि मतदान का अधिकार केवल कुछ विशेष प्रकार के अयोग्य मनुष्यों जैसे पागलों तथा देशद्रोही आदि को छोड़ कर, सब लोगों को प्राप्त हो। परन्तु सन् १८३२ ई० के पूर्व ग्रेट ब्रिटेन में इस सिद्धान्त के अनुसार भी व्यवहार नहीं किया जाता था। कुछ बरोज़ (Boroughs) ** में कर देने वाले सब निवासियों को निर्वाचन में भाग

* [illegible] नका निर्माण 'नार्मन विजय' (सन् १०६६ ई०) के पश्चात् किया गया था।

** नगर। मध्यकाल में इनका आशय उन स्थानों से था जिनको बादशाह की ओर से विशेष अधिकार प्राप्त थे। इन अधिकारों में एक अधिकार यह भी था कि वे पार्लमेंट के लिये सदस्य निर्वाचित करें।

लेने का अधिकार प्राप्त था, परन्तु उन में एक बरो अर्थात् गूटन (Guttan) ऐसा था जहां केवल ७ निवासी उपरोक्त अधिकार से सम्पन्न थे। कुछ बरोज़ ऐसे भी थे जहां केवल मेयर और नगर पालिका के सदस्य मत दे सकते थे। और आनन्द की बात यह है कि बहुधा नगर पालिका के सदस्य जन साधारण की ओर से निर्वाचित न किये जाते थे। बहुत से बरोज़ पर हाउस ऑव लार्ड्ज़ के सदस्यों अथवा अन्य कुलीनों का अधिकार था। अतएव वहां पार्लेमेंट के सदस्यों का चुनाव उनकी इच्छानुसार किया जाता था। कुछ बरोज़ बादशाह के अधिकार में थे। सन् १८२८ ई० में ड्यूक आव न्यूकेसिल ने अपने पांच सौ किरायेदारों को केवल इसलिये हटा दिया कि उन्हें उसकी इच्छा के अनुसार मत देना स्वीकार न था। जब पार्लमेंट में इसके प्रति विरोध उपस्थित किया गया, तो उसने स्पष्ट उत्तर दिया, "क्या मुझे अपनी वस्तुओं पर अधिकार नहीं है?" पार्लमेंट के स्थानों का क्रय-विक्रय भी स्वतन्त्रतापूर्वक किया जाता था। कभी कभी कोई उत्सुक मनुष्य उसमें स्थान पाने के लिये पांच सौ पौंड तक व्यय कर देता था। यही दशा काउंटीज़ की भी थी। जो शब्द सन् १८३१ ई० में लार्ड ऐडवोकेट के मुंह से निकले थे, उल्लेखनीय हैं,—"इस बात को लोग भूले न होंगे कि एक बार बूट में निर्वाचन के समय शेरिफ़ और निर्वाचन अधिकारी के अतिरिक्त केवल एक व्यक्ति उपस्थित हुआ। नियमानुसार उसने प्रधान का आसन ग्रहण किया, सभा की भांति कार्य किया, जायदाद रखने वालों के नाम पुकारे, जब उसका नाम आया तो उसने 'उपस्थित श्रीमान्' कहा, अपना मत दिया और स्वयं को निर्वाचित कर लिया।" निर्वाचनों के सम्बन्ध में रिश्वत का बाज़ार गरम भी रहता था। यह कार्य प्रकट रूप से किया जाता था, और कभी कभी तो इसकी डुग्गी पीट दी जाती थी कि प्रति वोट कितना मूल्य मिलेगा और कहां मिलेगा।

उपरोक्त वादविवाद के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रथम सुधार बिल के स्वीकृत किये जाने के पूर्व ग्रेट ब्रिटेन में पार्लेमेंट के निर्वाचन बहुत ही दोषपूर्ण ढंग से किये जाते थे, जिसका परिणाम यह होता था कि उसमें सर्वसाधारण का प्रतिनिधित्व के स्थान पर कुछ विशेष श्रेणियों के लोगों का प्रतिनिधित्व था और शासन पर सामान्य जनता का प्रभुत्व होने के स्थान में कुलीनों तथा धनिकों का प्रभाव था। इन दोषों को किसी सीमा तक दूर करने का प्रयत्न सब से प्रथम ऑलिवर क्रॉम्वेल के समय में किया गया था (सन् १६५३ ई०)। इसके पश्चात् सन् १७७० ई० में बड़ा पिट और तत्पश्चात् उसका लड़का छोटा पिट इस ओर दत्तचित्त हुये, परन्तु उन लोगों के विरोध के कारण, जो उस समय

पार्लेमेंट के सुधार का प्रारम्भिक प्रयत्न

की व्यवस्था से सन्तुष्ट थे, वे सफलता प्राप्त न कर सके। फ्रांस की राज्यक्रांति तथा नैपोलियन के युद्धों के कारण इस ओर ध्यान देना दुष्कर था। उनकी समाप्ति पर जब यूरोप का वायुमण्डल 'स्वतन्त्रता, समानता और बान्धुत्व' की गूंज से भर गया तो सुधारों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया तथा पार्लमेंट के भीतर तथा बाहर काफी आन्दोलन किया गया। इसके करने वालों में कई प्रकार के लोग सम्मिलित थे, जैसे बैंथम, कोबेट, जेम्स मिल और फ्रांसिस प्लेस के समान सुधारों को अधिक महत्व देने वाले लोग; डेनियल ओकोनल के समान कैथोलिक धर्म के अनुयायी, जिनका यह प्रयत्न था कि उनके पार्लमेंट में पहुंचने के रास्ते में जो कानून रुकावट डालते हैं, वे हटा दिये जांय; जोन ब्राइट के समान प्रोटेस्टेंट धर्म के अनुयायी जिनका विचार था कि टोरी शासन एंग्लिकन (सरकारी) चर्च के अनुयायियों का अधिक ध्यान रखता है, इत्यादि। पार्लमेंट सुधार के लिए सब से शक्तिशाली मांग मध्यम श्रेणी के, मिल और कारखानों के स्वामियों की ओर से की गई, जो मैन्चेस्टर, बरमिंघम, शेफील्ड और लीड्स के समान व्यापारिक नगरों के निवासियों पर पूर्ण प्रभाव रखते थे, परन्तु उनको पार्लमेंट के लिये मत देने अथवा उसमें सम्मिलित होने का अधिकार न दिला सकते थे। वे सार्वजनिक रूप से इस प्रकार के प्रश्न कर रहे थे कि क्या कारण है जो एक राटन बरो (Rotten Borough)* को, जिसमें एक भी व्यक्ति नहीं बसता है, लोकसभा के लिये दो सदस्य निर्वाचित करने का अधिकार प्राप्त है, जबकि एक नगर जिसकी जनसंख्या कई लाख है उससे पूर्णतया वंचित है?

बहुत से लोग ऐसे भी थे जो अपने भाषणों और लेखों द्वारा जनता में जागृति उत्पन्न कर रहे थे। इनमें विलियम कौब्बेट (१७६२-१८३५) विशेष महत्व रखता है। वह एक समाचारपत्र प्रकाशित करता था, जिसका नाम 'दि वीकली रजिस्टर' (The Weekly Register) था। एक अन्य सुधारक राबर्ट ओवन था, जो शासन की दृष्टि कारखानों के दोषों की ओर आकर्षित कर रहा था। सुधार आन्दोलन को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से 'हैम्पडन क्लब' स्थापित किये गये, जलूस निकाले गये और विभिन्न स्थानों में सभायें की गईं। एक बार सन् १८१९ ई० में, मैन्चेस्टर नगर में लोग बहुत बड़ी संख्या में हंट नाम के वक्ता का भाषण सुन रहे थे कि अकस्मात् पुलिस और

पीटरलू का हत्याकांड, १८१९ ई०**

---

* [illegible] निवासियों की संख्या शून्य थी।

** इसके नामकरण का कारण यह है कि यह सभा सेंट पीटर्स के मैदान में की गई थी जो पहले नगर के बाहर था किन्तु अब उसमें सम्मिलित है।

सैनिक युवकों ने उन पर आक्रमण कर दिया। अतएव उनकी बड़ी संख्या वध अथवा ज़ख़्मी हुई। इसके पश्चात् टोरी (रूढ़िवादी) शासन ने सुधार आन्दोलन को समाप्त करने के लिये कई क़ानून बनाये, जो सब मिलकर छः धारायें (Six Acts) कहलाते हैं। इन से प्रेस की स्वतन्त्रता कम हो गई और भाषण देने तथा सभा करने का अधिकार भी सीमित कर दिया गया।

इस प्रकार की घटनाओं का प्रभाव सब से अधिक मिल मालिकों पर हुआ। अतएव वे सुधारों के मामले में अधिक दिलचस्पी लेने लगे। उनका प्रभाव इस समय के दोनों प्रधान राजनैतिक दलों अर्थात् ह्विग (उदारवादी) तथा टोरी (रूढ़िवादी) दलों पर भी पड़ा। इसलिये वे भी अपने अपने दृष्टिकोण के अनुसार पहले से अधिक महत्व देने लगे। जिन दलों का प्रभाव पार्लेमेंट में था उनमें ह्विग भी सम्मिलित थे, परन्तु वे टोरी दल की तुलना में तिजारती कारोबार में अधिक आगे थे। अतएव वे मिल मालिकों आदि के साथ अधिक सहानुभूति रखते थे। इसके अतिरिक्त वे दीर्घकाल से शासन से पृथक भी थे। वे सोचते थे कि सम्भवतः पार्लेमेंट सुधार के प्रश्न को उठाने से वे शासन सूत्र को अपने हाथ में लेने में सफलता प्राप्त कर सकें। सारांश यह कि इस प्रकार के कारणों से सन् १८१९ ई० में उनके नेता लार्ड जोन रसल ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि अच्छी हैसियत रखने वाले मध्यम श्रेणी के लोगों को जो तिजारती व्यवसाय करते हैं, मतदान का अधिकार दे दिया जाय। इसके पश्चात् ह्विग दल के एक अन्य नेता, चार्ल्स ग्रे ने अपने दल के लोगों से यह प्रतिज्ञा की कि वह सुधारों के कार्य को अवश्य हाथ में लेगा।

ह्विग और टोरी दलों के दृष्टिकोण

सन् १८२० ई० में टोरी दल के मन्त्रियों का अन्त करने के विचार से लन्दन नगर में एक षड्यंत्र रचा गया जो केटो स्ट्रीट का षड्यन्त्र (Cato Street Conspiraoy) कहलाता है। इसके प्रभाव से वे भी सुधारों के प्रश्न को अधिक महत्व देने लगे। सन् १८२२ और सन् १८२७ ई० के बीच उपरोक्त दल की ओर से कैनिंग, विलियम हस्किसन तथा सर राबर्ट पील ने कुछ उदार प्रणाली के सुधारों तथा नीतियों का समर्थन किया। उदाहरणार्थ, प्रवेश-करों को कम करना, दक्षिणी अमेरिका के क्रांतिकारी आन्दोलनों को मान्यता प्रदान करना, कैथलिकों को पार्लेमेंट में बैठने की अनुमति प्रदान करना इत्यादि। इसके अतिरिक्त भी सार्वजनिक रूप से टोरी दल के सदस्य पार्लेमेंट में सुधार किये जाने के विरुद्ध थे। उनके एक बड़े नेता ड्यूक आफ़ वेलिंगटन, ने जो नेपोलियन बोनापार्ट के विरुद्ध युद्ध कर

चुका था, सन् १८३० ई० में ज़ोर देकर यह कहा कि जो राजनीतिक व्यवस्था इस समय संचालित है वह पूर्ण रूप से उचित तथा उपयुक्त है।

इसी वर्ष पेरिस में जोलाई मास की क्रान्ति हुई। इस से दसवें चार्ल्स के कुलीनों के शासन का अंत हुआ और उसके स्थान में लूई फ़िलिप ने अपने मध्यम श्रेणी के लोगों का शासन स्थापित किया। उसका प्रभाव शीघ्र ही ग्रेट ब्रिटेन के निवासियों पर भी हुआ। पार्लेमेंट के बाहर सुधारों के आन्दोलन ने यथेष्ट शक्ति प्राप्त की तथा कई स्थानों में संघर्ष और झगड़े हुये।

प्रथम सुधार बिल, १८३२ ई०

उसके अन्दर टोरी दल के सदस्य भयभीत हुये। ड्यूक आव वेलिंगटन ने त्यागपत्र दे दिया। उसके स्थान में अर्ल ग्रे ने ह्विग शासन स्थापित किया तथा लोक-सभा में एक सुधार बिल भी पेश किया। जब सन् १८३१ के प्रारम्भिक काल में टोरी बहुमत के कारण उसका बिल स्वीकार न हो सका तो पार्लेमेंट के लिये नवीन निर्वाचन किये गये। अबकी बार लोकसभा में ग्रे के दल का बहुमत था। उसने द्वितीय बार सुधार बिल पार्लमेंट में प्रेषित किया, किन्तु अबकी बार वह लार्ड्ज़ के कारण स्वीकार न हो सका। यह देख कर उसने अपने बादशाह विलियम चतुर्थ को नये लार्ड्ज़ निर्मित करके बिल को स्वीकार करा देने की सम्मति दी। जब उसने ऐसा न किया तो ग्रे ने त्यागपत्र दे दिया और उसके स्थान में ड्यूक आफ़ वेलिंगटन ने मन्त्रिमण्डल स्थापित करने का प्रयत्न किया। यह देखकर उग्रवादियों और कारखानों के स्वामियों की ओर से व्यापारिक नगरों में शासन के विरुद्ध प्रदर्शन किये गये। कुछ सुधारकों ने शासन को कर न देने का आन्दोलन प्रारम्भ कर देने की धमकी दी। फ्रांसिस प्लेस ने मध्यम श्रेणी के लोगों पर यह ज़ोर डाला कि बैंकों से अपना रुपया निकाल लें, जिस से शासन को आर्थिक संकट का सामना पड़े। ऐसी दशा में वेलिंगटन तथा उसके टोरी सहयोगियों ने अपना विरोध बन्द कर दिया। अतएव नवीन लार्ड्ज़ निर्मित किये बिना ही सुधार बिल लार्ड सभा से स्वीकृत कर दिया गया। जून सन् १८३२ ई० में बादशाह ने उसके लिये अपनी स्वीकृति दे दी।

प्रथम सुधार बिल से वे दोष जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है बड़ी सीमा तक दूर हो गये। तथापि सर्वसाधारण को मतदान का अधिकार प्राप्त न हुआ। उसके द्वारा पार्लमेंट की निर्वाचन प्रणाली में चार प्रकार के प्रमुख परिवर्तन किये गये। (१) वोटों का विभाजन ठीक प्रकार से किया गया। कुछ बरो, जिनकी जनसंख्या दो सहस्र से भी कम थी लोकसभा के लिये सदस्य निर्वाचित करने के अधिकार से पूर्णतया वंचित कर दिये गये। जिन बरोज़ की जनसंख्या दो सहस्र तथा चार सहस्र के

बीच में थी, उन्हें केवल एक सदस्य निर्वाचित करने का अधिकार दिया गया। इस प्रकार सब मिलाकर १४३ स्थान रिक्त हुये। उनमें से ६५ अधिक जनसंख्या रखने वाली काउँटियों को ८ स्काटलैंड को ५ आयरलैंड को और ६५ बड़े औद्योगिक नगरों जैसे मैनचेस्टर, बरमिंघम, शैफ़ील्ड और लीड्ज़ आदि को दिये गये। इस प्रकार जहां तक सम्भव हो सका, मतों का विभाजन जनसंख्या के अनुसार हो गया। (२) बरोज़ और काउँटियों में वोट देने वालों की हैसियत कम कर दी गई। इस प्रकार पहले की अपेक्षा अधिक लोगों को यह अधिकार प्राप्त हो गया। बरोज़ में अब वे लोग मत दे सकते थे जो १० पौंड वार्षिक किराये के मकान के स्वामी अथवा किरायेदार थे। इसी प्रकार काउँटियों में उपरोक्त अधिकार से उन लोगों ने लाभ उठाया जो १० पौंड वार्षिक किराये की भूमि के स्वामी थे अथवा जो स्थायी रूप से १० पौंड वार्षिक की भूमि किराये पर उठाते थे। इसी प्रकार जिन कृषकों के पास ५० पौंड वार्षिक किराये की भूमि थी उन्हें भी मतदान का अधिकार दे दिया गया। इसके होते हुये भी ब्रिटिश द्वीपसमूह में सम्पूर्ण जनसंख्या का केवल बाईसवां भाग लोकसभा के लिये सदस्य भेजने का अधिकारी बना। (३) मतदान का सारा कार्य प्रत्यक्ष रूप से होता रहा। अतएव बहुधा जो लोग अधिकारी थे अपनी इच्छा के अनुसार इस बहुमूल्य अधिकार से लाभ न उठा सकते थे। इसके प्रतिकूल वे किसी के धमकाने से अथवा किसी से घूस लेकर मत देते थे। सुधार बिल से एक प्रत्यक्ष अन्तर यह हुआ कि मत देने का समय १५ दिनों से कम करके केवल दो दिन कर दिया गया। इस प्रकार घूस लेने की सम्भावना कम हो गई। (४) जहाँ तक सम्भव हो सका, देश को मतदान के समान क्षेत्रों में विभाजित कर दिया गया।

प्रथम सुधार बिल से सबसे अधिक लाभ मध्यम श्रेणी के लोगों को हुआ। इससे दूकानदारों, हस्त-शिल्पियों, कारखानों के स्वामियों तथा ग्रामों के मध्यम श्रेणी की स्थिति रखने वालों को लाभ हुआ। इन्हीं लोगों के हाथ में शासन की बागडोर आ गई। साधारण जनता को वोट देने का अधिकार अब भी प्राप्त न हो सका। अतएव हम कह सकते हैं कि सन् १८३२ ई० से पूर्व ग्रेट ब्रिटेन के शासन पर कुछ विशेष वर्गों के लोगों का अधिकार था और इसके पश्चात् भी उस पर कुछ विशेष वर्गों का अधिकार रहा। अन्तर केवल इतना था कि अब उस पर केवल कुलीनों तथा व्यवसायी पूँजीपतियों ही का अधिकार न था, वरन् मध्यम श्रेणी के व्यापारी वर्ग भी जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, उस पर अधिकार रखने लगे थे। अन्तिम वर्ग से यह आशा की जा सकती थी कि वह व्यापारियों

उसका महत्व

तथा शिल्पकारों के अतिरिक्त देहात के ज़मीदारों तथा कृषकों का भी विशेष ध्यान रक्खेगा। प्रथम सुधार बिल के पश्चात् ह्विग दल के सदस्य 'लिबरल' तथा टोरी दल के लोग 'कंज़रवेटिव' कहलाने लगे। देश के शासन के सम्बन्ध में दोनों दलों में एक प्रकार का ऐसा उत्तम समझौता हो गया कि सन् १८६० ई० तक उनमें बड़े स्तर पर कोई झगड़ा न हुआ। सन् १८३२ ई० के सुधार बिल से पार्लमेंट के निर्वाचनों के सम्बन्ध में जो व्यवस्था कर दी गई थी उससे भी लिबरल और कंज़रवेटिव दोनों संतुष्ट थे और उनमें से कोई भी इसका अभिलाषी न था कि उपरोक्त बिल में परिवर्तन करके सर्वसाधारण जनवर्ग को मतदान का अधिकार प्रदान किया जाय अथवा हाउस आव लार्ड्ज़ के अधिकारों को सीमित किया जाय। इसके विरुद्ध दोनों ही को इसका गर्व था कि जो राजनैतिक व्यवस्था ग्रेट ब्रिटेन में प्रथम सुधार बिल के पश्चात् स्थापित कर दी गई थी वह विश्व की सबसे श्रेष्ठ शासन व्यवस्था थी।

सन् १८३२ ई० और सन् १८६७ ई० के बीच ग्रेट ब्रिटेन की राजनैतिक व्यवस्था में दो साधारण कोटि के परिवर्तन किये गये। सन् १८३५ ई० में पार्लमेंट ने म्यूनिस्पल कार्पोरेशंस एक्ट (Municipal Corporations Act) स्वीकार किया, जिसके द्वारा तिजारती शहरों के निवासियों को उस स्थिति के अनुसार, जो प्रथम सुधार बिल के द्वारा निश्चित की गई थी, स्थानीय शासनों के निर्माण तथा उन पर अधिकार रखने का अधिकार प्राप्त हुआ। दूसरा परिवर्तन यह किया गया कि यहूदियों को भी पार्लमेंट में बैठने का अधिकार दे दिया गया। इसके पूर्व सन् १८२९ ई० में यही अधिकार रोमन कैथलिक धर्म के अनुयायियों को दिया जा चुका था।

कुछ लोग ऐसे भी थे जो सन् १८३२ ई० के सुधार बिल से सन्तुष्ट न हुये थे। पार्लमेंट के उग्रवादी सदस्यों का विचार था कि जब तक इसी प्रकार के अन्य सुधार न किये जायँगे तब तक काम न चलेगा। शहरों और कस्बों के मज़दूर भी उससे सन्तुष्ट न थे। जब उन्होंने देखा कि नवीन सुधारों के होते हुये भी उनकी आय में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ और न तो उनके काम करने के घण्टों में कमी की गई है और न उनके काम प्राप्त करने में ही किसी प्रकार की सुविधा हो सकी है तो वे अधिक सुधारों के स्वप्न देखने लगे। वे कहने लगे कि यदि कोई अन्य सुधार बिल स्वीकृत कर दिया जाय तो विशेष श्रेणियों के लोगों की भांति उन्हें भी पार्लमेंट में अपने विचारों को व्यक्त करने का सुअवसर प्राप्त हो। प्रथम सुधार बिल पर जैसे ही बादशाह के हस्ताक्षर

अन्य सुधार प्राप्त करने का प्रयत्न

हुये वैसे ही अतिरिक्त सुधार प्राप्त करने के उद्देश्य से अगणित पर्चे जनसाधारण में वितरित किये गये, और मैगना कार्टा, बिल ऑव राइट्स तथा लॉग पार्लेमेंट द्वारा निर्मित कानून, जिससे हाउस ऑव लार्ड्स तथा राजतंत्र को समाप्त कर दिया गया था, इन सब के अनुवाद मजदूरों में वितरित किये गये। एक व्यक्ति ने एक पुस्तिका में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का उदाहरण देते हुये अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया, "जनतंत्रवादी अमेरिका में संसद के सदस्यों का निर्वाचन सार्वजनिक मतदान द्वारा किया जाता है, बहुत कम कर लिये जाते हैं और टाइथ* नाम का कर नाम को भी नहीं लिया जाता। न वहां किसी प्रकार की वंशानुगत निर्धनता है, न किसी को वंश परम्परा से पेंशन मिलती है और न कोई किसी को लूटने का प्रयत्न ही करता है। सन् १८३२ ई० में एक संक्षिप्त पुस्तक प्रकाशित की गई जिसमें निर्धन अंगरेज़ों की ओर से मांगें उपस्थित की गई थीं। इन पर दृष्टिपात करने से हम इस बात को भली प्रकार समझ सकते हैं कि वे अपनी स्थिति में सुधार करने के लिये किन सुधारों को आवश्यक समझते थे। वे मांगें इस प्रकार थीं—(१) कुलीनों के शासन का अन्त, जिनका मुख्य काम लूटमार करना है और जो आलसी भी हैं। उनके स्थान में उदार पद्धति के प्रतिनिधि शासन की स्थापना, जिस पर बहुत कम धन व्यय हो और जो अपना कार्य योग्यतापूर्वक चला सके। (२) छपे हुये तथा सादा कागज़ों के करों का स्थगित होना। (३) राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था। (४) वंशानुगत लार्डों का अन्त (५) वंशानुगत कुलीनों, उपाधियों तथा आदर सत्कार का अंत। सम्राट के असीम व्यय पर नियन्त्रण। (७) सरकारी चर्च तथा सरकारी धर्म की समाप्ति। (८) नवीन कानूनी कोड की व्यवस्था। (९) स्थायी सेना का हटाया जाना। उसके स्थान में राष्ट्रीय सेना की स्थापना। (१०) भूमि सम्पत्ति को सीमित करना। (११) ऋण को न चुकाने की स्थिति में कारावास के दण्ड का अन्त। राष्ट्रीय ऋण का चुकाया जाना। (१३) प्रेस की स्वतन्त्रता। (१४) सार्वजनिक मतदान, गुप्त रीति से मतदान का चलन तथा पार्लेमेंट का वार्षिक अधिवेशन।

चार्टिस्ट और उनकी मांगें

सन् १८३७ ई० में सम्राज्ञी विक्टोरिया (१८३७-१९०१) ब्रिटिश द्वीपसमूह के सिंहासन पर सुशोभित हुई। कहने को वह इस समय बालिका थी, पर उसके विचार उदार थे। वह राजनीतिक तथा सामाजिक सुधारों की आवश्यकता से अवगत थी और चाहती थी कि उसके मन्त्री इस ओर विशेष ध्यान दें। हुआ भी ठीक ऐसा ही। उसकी छत्रछाया में उदार तथा अनुदार दलों के मन्त्रियों

*पैदावार का दसवां भाग अथवा उसके बराबर धन जो चर्च के लिये लिया जाता था।

ने इतने अधिक सुधार किये कि उसके युग ने इतिहास में सुधार नाम पाया है। उसके शासनकाल में सर्वप्रथम चार्टिस्टों का आन्दोलन हुआ। इन्होंने मजदूरों की ओर से उपरोक्त मांगों में से केवल छः पर जोर दिया तथा उनको एक चार्टर का रूप भी प्रदान किया (सन् १८३८ ई०)। ये मांगें इस प्रकार थीं,—(१) सार्वजनिक मतदान (२) मतदान की गुप्त प्रणाली। (३) संसद का वार्षिक अधिवेशन। (४) संसद के सदस्यों को पारितोषण का दिया जाना। (५) संसद का सदस्य होने के लिये भूमि सम्पत्ति के प्रतिबन्ध का हटाया जाना। (६) समान निर्वाचनक्षेत्र। सहस्रों अंगरेज़ ऐसे थे जो उपरोक्त चार्टर को सफल बनाना चाहते थे। इतिहास में ये लोग चार्टिस्ट (Chartists) के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक व्यापारिक नगर में एक 'चार्टिस्ट क्लब' स्थापित किया गया। उनके ऊपर सन् १८४० ई० में एक राष्ट्रीय चार्टर परिषद (National Charter Association) स्थापित की गई। सन् १८३९ ई० में चार्टिस्ट की मांगें एक प्रार्थनापत्र के रूप में संसद में पेश की गईं, परन्तु वे बड़े बहुमत से अस्वीकृत कर दी गईं। यह देखकर उनके कुछ नेताओं ने आतंकवादी प्रणाली से काम लेने का प्रयत्न किया, परन्तु वे सब प्रयत्न भी व्यर्थ प्रमाणित हुये। शासन ने बड़ी कठोरता से काम लिया। न्यूपोर्ट (Newport) नामक नगर में २० चार्टिस्ट गोली से उड़ा दिये गये। चार्टिस्टों पर जो कठोरता की गई थी उसके विषय में लिबरल तथा कंजरवेटिव दोनों शासन के सहायक थे। इसके रहते हुये भी उक्त आन्दोलन समाप्त न हुआ

सन् १८४८ ई० में फ्रांस में क्रांति हुई एवं लुई फिलिप के शासन के स्थान पर द्वितीय प्रजातन्त्र की स्थापना की गई। इसका प्रभाव इंग्लैंड पर भी हुआ। वहां इस वर्ष चार्टिस्टों ने पुनः शांतिपूर्ण आन्दोलन किया। समय की कठोरता के कारण सहस्रों मजदूर बेकार हो गये थे। अन्य निर्धन लोग भी ऐसे शासन के विरुद्ध हो गये थे जो सुधारों को स्वीकार करने के स्थान में, पुलिस और गोलियों से काम लेना अधिक रुचिकर समझता था। अबकी बार चार्टिस्टों ने एक अत्यन्त शांतिपूर्ण प्रार्थनापत्र तैयार किया तथा उस पर उनके कथनानुसार सात लाख व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किये। इसको लेकर उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में पार्लमेंट की दिशा में कूच करने का प्रयत्न किया। मेट्रनिक के मित्र ड्यूक आव वेलिंगटन ने, जो लंदन की सुरक्षा का उत्तरदायी बनाया गया था, उन्हें ऐसा न करने दिया। तथापि उनका महान प्रार्थनापत्र लोकसभा में पेश किया गया। परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि उसमें अधिकतर हस्ताक्षर कृत्रिम हैं। अतएव संसद के सदस्यों ने उसके अनुसार कार्य करने से कोरा जवाब दे दिया। इसके पश्चात् चार्टिस्ट आन्दोलन का अन्त हो गया।

निस्सन्देह चार्टिस्ट अपने प्रयत्न में सफल न हुये थे, परन्तु सुधारों के कार्य को

पूर्णरूप से विस्मृत न किया गया। सौभाग्य से इस समय ग्रेट ब्रिटेन का शासन-सूत्र सम्राज्ञी विक्टोरिया (१८३७—१९०१) के हाथ में था। वह समय की आवश्यकताओं को खूब समझती थी। उसके हृदय में उदार दल तथा उसके सुधारों के कार्य-क्रम के लिये यथेष्ट स्थान था। उसके शासनकाल में कम से कम दो बार अर्थात् सन् १८६७ तथा १८८४ ई० में सुधार बिल स्वीकृत किये गये। इस समय उदार तथा रूढ़िवादी दलों का नेतृत्व दो अत्यन्त योग्य तथा शक्तिशाली व्यक्तियों के हाथ में था। इन में से एक का नाम विलियम ग्लैडस्टन और दूसरे का नाम बेंजमिन डिज़रेली था। प्रथम उदार दल का और द्वितीय रूढ़िवादियों का नेता था। इस कारण से दोनों में अधिक प्रतिद्वन्दिता थी। परन्तु यह बात स्पष्ट है कि यदि श्रमजीवी तथा उनके नेता राजनैतिक सुधारों के लिये यथेष्ट प्रयत्न न करते तो दोनों में से कोई भी उन्हें पार्लेमेंट के लिये मतदान का अधिकार दिलाने का प्रयत्न न करता। नगरों के श्रमजीवी सन् १८३२ ई० के पश्चात् से उपरोक्त अधिकार को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। सन् १८४८ ई० तक उनके आन्दोलन का स्वरूप चार्टिस्ट आन्दोलन का था। जब वे इस वर्ष भी असफल हुये तो उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिये श्रमिक-संघ (Trade Unions) स्थापित किये। उनकी सहायता से उन्होंने कई नगरों में हड़तालें कीं और अपनी माँगों को प्राप्त करने में किसी न किसी सीमा तक सफलता प्राप्त की।

ग्लैडस्टन और डिज़रेली

सन् १८६७ ई० से कुछ ही समय पूर्व श्रमिक-संघ स्थापित करने वाले मज़दूरों को एक अत्यन्त योग्य मित्र तथा सहायक प्राप्त हुआ। उसका नाम जॉन ब्राइट था। वह एक सफल व्यवसायी तथा वक्ता भी था। वह अनाज के करों का विरोध करके तथा व्यापार के लिये स्वतन्त्रता प्राप्त करके यथेष्ट कीर्ति प्राप्त कर चुका था। वह ज़मींदारों से घृणा करता था तथा हाउस ऑव लार्ड्ज़ पर भी भरोसा न करता था। अमेरिका के गृहयुद्ध (१८६१-१८६५) के समय ग्लैड्स्टन और डिज़रेली ने तो दक्षिणी राज्यों का पक्षपात किया था, परन्तु जॉन ब्राइट ने उचित मार्ग ग्रहण करके उत्तरी राज्यों का साथ दिया था। इसके पश्चात् वह ग्रेट ब्रिटेन के श्रमजीवियों की ओर से स्वर ऊंचा करने लगा। श्रमजीवियों तथा मध्यम श्रेणी के उग्रवादियों में ब्राइट के अगणित समर्थक थे। उग्रवादियों ने ग्लैडस्टन और उदार दल के साथ पूर्ण सहानुभूति प्रकट की। दोनों ने मिलकर शीघ्र ही एक महान् सफलता उपलब्ध की।

जॉन ब्राइट और उग्रवादी अंगरेज़

सन् १८६६ ई० में ब्राइट ने ग्लैडस्टन पर ज़ोर डालकर पार्लेमेंट में यह प्रस्ताव प्रेषित कराया कि मतदान का अधिकार कुछ मज़दूरों को भी प्रदान किया जाय, परन्तु वह स्वीकृत न हो सका। तब सन् १८६७ ई० में डिज़रेली ने संसद में एक सुधार बिल पेश किया। यह प्रारम्भ में लोकतन्त्र प्रणाली का न था। किन्तु ब्राइट के उग्रवादी समर्थकों तथा ग्लैडस्टन के उदारवादी साथियों ने उसमें इतने अधिक संशोधन कराये कि बिल का रूप ही बदल गया और उसके द्वारा लगभग समस्त मज़दूरों को मतदान का अधिकार प्राप्त हो गया। सब को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि डिज़रेली ने उक्त संशोधनों को सहर्ष स्वीकार कर लिया है। वास्तव में डिज़रेली को यह प्रत्येक प्रकार से ज्ञात था कि सुधारों का कार्य किसी के रोके रुक न सकेगा। अतएव उसे विरोधी दल पर बाज़ी ले जाने का जो सुन्दर सुयोग मिला था उससे उसने पूरा फ़ायदा उठाया। इस प्रकार उसकी तथा उसके दल की कीर्ति अधिक बढ़ गई और इतिहास में उनका यह कार्य "Leap in the Dark" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सन् १८६७ ई० का सुधार बिल

दूसरे सुधार बिल से नगरों में मतदान का अधिकार उन वयस्क मर्दों को प्राप्त हुआ जो किसी मकान के स्वामी अथवा किरायेदार की स्थिति में चुनाव से पूर्व एक ही मकान में कम से कम बारह मास तक रह चुके थे तथा जो स्थानीय 'निर्धनों का कर' (Poor Tax) देते थे। इसके अतिरिक्त यह अधिकार उन लोगों को भी दिया गया जो किसी कुटुम्ब के साथ किरायेदार की हैसियत से रहते थे तथा दस पौंड वार्षिक अथवा इससे अधिक कमरे का किराया देते थे। देहात में मतदान का अधिकार उन लोगों को प्राप्त हुआ जो कम से कम पांच पौंड वार्षिक किराये की सम्पत्ति के स्वामी थे अथवा जो किरायेदार की स्थिति में कम से कम बारह पौंड वार्षिक किराया देते थे। इस प्रकार पहले की अपेक्षा ग्रेट ब्रिटेन में मत देने वालों की संख्या दुगुनी हो गई। फिर भी अगणित व्यक्ति इस अधिकार से वंचित रहे। देहात में अब भी लाखों मज़दूर ऐसे थे जिनको उपरोक्त अधिकार प्राप्त न हो सका था। हाउस ऑव लार्डज़ के प्राचीन अधिकार भी अक्षुण्ण रहे।

पार्लेमेंट सुधार का कार्य प्रथम और द्वितीय सुधार बिलों के द्वारा पूर्ण न हो सका। उसे पूर्ण करने के लिए इसके पश्चात् भी शासन को कुछ सुधार बिल स्वीकार करने पड़े। सन् १८७२ ई० में ग्लैडस्टन के नेतृत्व में गुप्त मतदान की प्रथा प्रारम्भ हुई एवं तीसरे सुधार बिल से, जो उसी के कार्यकाल में स्वीकार

अन्य सुधार बिल

किया गया था (सन् १८८४), बीस लाख खेतों पर काम करने वाले मज़दूरों को मतदान का अधिकार प्रदान किया गया। सन १९११ ई० में एक क़ानून के द्वारा जो उदार दल के प्रसिद्ध नेता लायड जार्ज (Lloyd George) के प्रयत्न से निर्मित किया गया था, लार्ड सभा के अधिकार कम कर दिये गये तथा लोकसभा के अधिकारों में वृद्धि कर दी गई। सन् १९१८ ई० में मत देने का अधिकार उन समस्त मर्दों को प्रदान किया गया जो अभी तक उससे वंचित थे। इसके अतिरिक्त स्त्रियों को भी बड़ी संख्या में यह अधिकार प्राप्त हो गया। सन् १९२८ ई० में वह सब स्त्रियों को भी दे दिया गया।

उपरोक्त विवाद के आधार पर हम कह सकते हैं कि ग्रेट ब्रिटेन में सन् १८३२ ई० के पश्चात् और विशेषकर सन् १८६७ ई० और सन् १९२८ ई० के बीच राजनैतिक लोकतन्त्र के आधार पर व्यवहार किया गया था। इस प्रकार वहां विशेष श्रेणियों के शासन (Oligarchy) के स्थान पर जनसाधारण का शासन (Mass Government) स्थापित हो गया। यह उक्त देश में नवयुग का सब से महान् चमत्कार था।

नैपोलियन के पतन के पश्चात् जब सुधारों का युग प्रारम्भ हुआ उस समय केवल पार्लेमैंट ही एक ऐसी संस्था न थी जिसको उनकी आवश्यकता हो। शहरों व देहात के स्थानीय स्वशासनों में भी उसी प्रकार सुधार की आवश्यकता थी। इसका प्रारम्भ किसी नियम अथवा व्यवस्था के बिना बादशाह की इच्छा के अनुकूल हुआ था। साधारण रूप से शहरों का शासन एक मेयर (Mayor), मजिस्ट्रेट अथवा आल्डरमेन (Alderman) तथा साधारण सदस्यों (Common Councillors) के अधीन था। किन्तु बहुधा इनका निर्वाचन जनता की ओर से नहीं किया जाता था। प्रारम्भ में बादशाह ने उनको अपनी ओर से नियुक्त किया था। इसके पश्चात् ये लोग स्वयं अपने उत्तराधिकारियों की नियुक्ति करने लगे। कुछ शहरों में 'स्वतन्त्र व्यक्तियों' (Freemen)* को सभा के सदस्यों को निर्वाचित करने का अधिकार था। सभी दशाओं में नगरों का प्रबन्ध बड़ा ही दोषपूर्ण था। न वहां प्रकाश तथा पानी का ठीक प्रबन्ध था और न मार्गों की दशा ही अच्छी थी। शहरों में स्वशासन के पद बहुधा बेच दिये जाते थे तथा उसकी आय स्वार्थी व्यक्तियों के उपयोग में आ जाती थी।

स्थानीय स्वशासन का सुधार

प्रथम सुधार बिल की स्वीकृति के दूसरे वर्ष अर्थात् सन् १८३३ ई० में पार्लेमैंट ने शहरों की दशा के विषय में जांच करने के लिये एक आयोग (कमीशन) नियत

* निर्वाचनों में भाग लेने के अधिकारी।

किया, और उसकी रिपोर्ट के आधार पर सन् १८३५ ई० में म्यूनिसपल कार्पोरेशन्स बिल (Municipal Corporations Bill) स्वीकृत किया। उसका महत्व सन् १८३२ ई० के सुधार बिल से कम नहीं था। नवीन क़ानून के द्वारा समस्त म्यूनिसपेलिटियों के लिये एक विशेष संविधान तैयार किया गया। इसके अनुसार पुराने ढंग की सभायें जो अपने सदस्यों का निर्वाचन स्वयं कर लेती थीं, समाप्त कर दी गईं। उनके स्थान पर प्रत्येक नगर में शासन का कार्य एक नगरपालिका के अधीन किया गया, जिसके सदस्य वहां के निवासियों की ओर से निर्वाचित किये जाते थे तथा जिसमें मेयर, आल्डरमेन और साधारण सदस्य सम्मिलित होते थे। साधारण सदस्यों का निर्वाचन प्रत्येक तीसरे वर्ष उन लोगों की ओर से किया जाता था जो बरोज के स्थानीय कर देते थे। साधारण सदस्य आल्डरमैन को निर्वाचित करते थे, जो नगरपालिका के कार्यों पर एक प्रकार की रोक रखते थे। मेयर का निर्वाचन प्रति वर्ष नगरपालिका की ओर से किया जाता था। इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन के शहरों व कस्बों में लोकतन्त्र शासन स्थापित हो गया।

उपरोक्त सुधारों के अतिरिक्त भी ग्रामों की दशा में सुधार न हुआ। वहां के मार्गों और सार्वजनिक भवन आदि का प्रबन्ध पहले की भांति कुलीनों के अधिकार में रहा, जो सरकारी न्यायाधीशों (Justices of the Peace) अथवा कर दाताओं की हैसियत से उनकी देखरेख करते थे। ग्रामों के शासनों का सुधार ग्लैडस्टन के कार्यकाल से पूर्व सम्भव न हो सका। ग्लैडस्टन ने, जैसा कि बतला चुके हैं, सन् १८८४ ई० में तीसरा सुधार बिल स्वीकृत कराया। इसके कुछ वर्षों के पश्चात् अर्थात् सन् १८८८ ई० और सन् १८९४ ई० के बीच ग्रामों के स्थानीय शासनों का सुधार भी लोकतन्त्र के आधार पर कर दिया गया।

ग्यारहवाँ अध्याय

ग्रेट ब्रिटेन में लोकतन्त्र का चमत्कार—

सामाजिक सुधार

ग्रेट ब्रिटेन के इतिहास में जो समय पार्लेमेंट सुधार के लिये प्रसिद्ध है वही समय वहां सामाजिक सुधार के लिये भी प्रसिद्ध है। पार्लेमेंट तथा स्थानीय स्वशासनों के सुधार के कारण उपरोक्त देश एक लोकतंत्रवादी देश बन गया था। उसके प्रत्येक बालिग पुरुष व स्त्री को मतदान का अधिकार प्राप्त हो गया था। दूसरे शब्दों में उसे सम्पूर्ण देश तथा अपने नगर अथवा अपने ग्राम के शासनों में भाग लेने का अधिकार मिल गया था। सामाजिक सुधारों के कारण उसे स्वतंत्रतापूर्वक अपने विचारों को प्रकाशित करने तथा जहां तक सम्भव हो सकता था, शांति तथा निश्चिन्तता का जीवन व्यतीत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उसकी व्यक्तिगत तथा सामूहिक उन्नति के लिये दोनों ही प्रकार के सुधार अत्यन्त आवश्यक थे।

सामाजिक सुधार कई प्रकार के हो सकते हैं। उदाहरणार्थ वे सुधार जिनसे अंगरेज़ों को अपने विचारों को प्रकाशित करने की स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, जिनसे कैथोलिक धर्म के अनुयायियों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, जिनसे कारखानों में काम करने वाले मज़दूरों की दशा में सुधार किया गया इत्यादि। इन विभिन्न प्रकार के सुधारों का वर्णन हम विभिन्न शीर्षकों के अधीन करेंगे।

विचार प्रकाशन तथा धर्म की स्वतन्त्रता

किसी भी देश की उन्नति के लिये अत्यन्त आवश्यक है कि वहां के निवासियों को अपने विचारों को प्रकाशित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो। इसके दो मुख्य

साधन हैं। एक, प्रेस और द्वितीय, भाषण मंच। ग्रेट ब्रिटेन में दीर्घकाल तक दोनों ही पर कड़े प्रतिबन्ध रहे। सन् १६८८ ई० की गौरवपूर्ण क्रांति के कुछ वर्ष पश्चात् यह बात स्वीकार कर ली गई थी कि भविष्य में प्रेस पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाया जायेगा (१६९५ ई०)। इसके प्रतिकूल जब कभी देश के किसी भाग की शान्ति भंग होती थी अथवा कोई बड़ा राजनैतिक उपद्रव होता था तो शासन को दमनकारी विधानों का आश्रय लेना पड़ता था। फ्रांस की प्रथम राज्यक्रांति के समय तथा सन् १८१९ ई० में इसके प्रकट उदाहरण देखने को मिले। एक बड़ा अवरोध यह भी था कि दैनिक समाचारपत्रों, मासिक पत्रिकाओं तथा विज्ञापनों पर भी कर देना पड़ता था। अतएव उनका मूल्य बढ़ जाता था और प्रत्येक स्त्री व पुरुष उनसे इच्छापूर्वक लाभ न उठा सकता था। सन् १८१९ ई० से विज्ञापनपत्रों और पुस्तिकाओं पर भी कर लगने लगा। एक कर काग़ज़ पर भी लगता था, जिसके कारण उसका मूल्य ५० प्रतिशत बढ़ गया था। ये सब कठिनाइयां उस देश में विद्यमान थीं जो फ्रांस की भांति लोकतन्त्र का सुरक्षित गढ़ माना जाता था।

प्रेस की स्वतन्त्रता

उपरोक्त करों का अर्थ यह था कि शासन की ओर से बौद्धिक विकास पर रोक थी। शिक्षा व उन्नति के समर्थकों तथा राजनैतिक नेताओं ने उनको स्थगित कराने का प्रयत्न किया। सन् १८३० में लन्दन में एक समिति स्थापित की गई जिसका ध्येय समाचारपत्रों तथा विज्ञापनपत्रों के मार्ग से असहनीय करों को हटाना था। कुछ सुधारकों ने शासन का सामना प्रत्यक्ष रूप से किया। एक पत्रिका ने, जिसका नाम "The Poor Man's Guardian" था, अपने लिये यह आदर्श वाक्य स्वीकार किया,—"क़ानून के विरुद्ध स्थापित पत्रिका जिसका उद्देश्य इस बात की परीक्षा लेना है कि शारीरिक शक्ति के विरुद्ध सत्य को किस सीमा तक सफलता प्राप्त होती है।" उसका प्रकाशक पुलिस को धोखा देने के विचार से रद्दी क़ाग़ज़ की पार्सलें तो सामने के दरवाज़े से भेजा करता था तथा अपने पत्रिका की पार्सलें पीछे के दरवाजे से निकाल देता था।

जब शासन पर उच्च श्रेणी के लोगों का भी प्रभाव पड़ा तो उसने प्रेस के प्रतिबन्धों को हटाना स्वीकार कर लिया। सन् १८३२ ई० के सुधार बिल के स्वीकृत हो जाने से यह कार्य और भी सरल हो गया था। अतएव सन् १८३३ ई० में शासन ने विज्ञापनों के कर को और सन् १८३६ ई० में समाचारपत्रों और पत्रिकाओं के कर को कम कर दिया। परिणाम यह हुआ कि उनका मूल्य बहुत कम हो गया।

बीस साल बाद कौब्डन और ब्राइट के प्रयत्न से उपरोक्त कर बिल्कुल हटा दिये गये। सन् १८६१ ई० में वह कागज भी जो मुद्रालयों के उपयोग में आता था करों से उन्मुक्त कर दिया गया। इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन में प्रेस की स्वतन्त्रता उपलब्ध हुई।

लोकतन्त्र की उन्नति के लिये यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि सार्वजनिक रूप से सब मनुष्यों को शासन की स्वतन्त्र आलोचना का अधिकार प्राप्त हो। इसके बिना कोई भी शासन इच्छानुसार उन्नति नहीं कर सकता। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में यूरोप के अन्य देशों की भांति ग्रेट ब्रिटेन में भी ऐसे लोगों को जो बादशाह अथवा शासन के विरुद्ध अपमानजनक ढंग से विचार प्रकाशित करते थे, दंड दिया जाता था। सन् १६८८ ई० की क्रान्ति के पश्चात भी बहुधा पार्लेमेंट की ओर से ऐसे लोगों के कोड़े लगवाये जाते थे अथवा उनको कारावास का दण्ड दिया जाता था। जब कभी ऐसे लोगों की ओर से कोई विशेष भय होता तो उनका दमन करने के विचार से विशेष कानून बना दिये जाते थे। इसका एक प्रकट उदाहरण सन् १८१६ ई० की छः धाराओं का है, जिनका उल्लेख हमने पिछले अध्याय में किया था। इनके बनने में लोकतन्त्रीय स्वतन्त्रता में विशेष रूप से हस्तक्षेप हुआ था। इसके पश्चात् जब मजदूर वर्ग में जागृति उत्पन्न हुई। और चार्टिस्टों के आन्दोलन की भाँति शक्तिपूर्ण आन्दोलन किये गये तो शासन ने अपना ढंग बदल दिया और उसने अपने अथवा बादशाह के विरुद्ध विचार प्रकट करने वालों के विरुद्ध कार्य करना स्थगित कर दिया। इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन में सब लोगों को वादविवाद और शासन की आलोचना करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो गई।

स्वतंत्र आलोचना का अधिकार

ग्रेट ब्रिटेन में जनता को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त है। इस सम्बन्ध में कैथोलिकों (Catholics) और डिसेन्टर्स (Dissenters) को दीर्घकाल तक शासन के अन्यायपूर्ण व्यवहार का शिकार बनना पड़ा था। किन्तु उनके विरुद्ध भी प्रतिबन्ध अधिक काल तक स्थापित न रह सके। सन् १८२८ ई० में पार्लेमेंट ने प्रथम के विरुद्ध और सन् १८२९ ई० में द्वितीय के विरुद्ध प्रतिबन्धों को हटा दिया। अतएव दोनों को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। इसके पश्चात वे न केवल स्वतन्त्रतापूर्वक अपने धर्म का समर्थन ही कर सकते थे वरन् पार्लेमेंट के सदस्य भी हो सकते थे तथा शासन में उच्च पद प्राप्त कर सकते थे। सन् १८३६ ई० में अंगरेज़ी पार्लेमेंट ने यह कानून बनाया कि पादरियों के स्थान में शासन की ओर से जन्म, विवाह और मृत्यु का हिसाब रखने की व्यवस्था की जायेगी। सन् १८६८ ई० में टाइथ (Tithe) नाम का जो सरकारी चर्च के लिये डिसेंटरों के

धार्मिक स्वतन्त्रता का सिद्धान्त

लिया जाता था, हटा दिया गया। इसके दो साल बाद विश्वविद्यालयों ने भी उनके विरुद्ध प्रतिबन्ध हटा दिये। यह सफलता जिसका उल्लेख यहां किया गया है, फ्रांस की भांति जनता के 'अधिकारों की घोषणा' अथवा सार्वजनिक विधि विधान के द्वारा प्राप्त नहीं की गई थी। वरन् ऐसे कानूनों के द्वारा प्राप्त की गई। जो किसी विशेष सम्प्रदाय के लिये निर्मित किये गये थे। यह प्रशंसा का विषय है।

सार्वजनिक हित के विधान

फौजदारी के नियम

यह एक अत्यन्त दुःख की बात है कि उन्नीसवीं शताब्दी के बीच तक ग्रेट ब्रिटेन में फौजदारी के नियम बहुत ही कठोर और कारावास का जीवन बहुत ही कष्टमय था। इस सम्बन्ध में अंगरेज़ों पर फ्रांसीसी क्रांति के समय सुधारकों का प्रभाव बहुत ही धीरे धीरे पड़ा था। यह एक अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि ब्रिटिश द्वीपसमूह में इस समय दो सौ पचास अपराध ऐसे थे जिनके लिये मृत्यु दंड दिया जाता था। इस से भी अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि फौजदारी के नियमों का यह दोष बहुत ही पुरातन काल का अभिशाप न था। क्रॉम्वेल और जार्ज तृतीय की मृत्यों के बीच इनकी संख्या में कम से कम १८० अपराधों की वृद्धि कर दी गई थी। रुमाल जैसी नगण्य वस्तु को चुराने वालों को मौत के घाट उतार दिया जाता था। सन् १८१५ ई० में एक ऐसी युवती को फांसी दी गई थी जिसने कोई अत्यन्त साधारण वस्तु चुराई थी और जिसकी इच्छा थी कि वह आस्ट्रेलिया में निर्वासित कर दी जाय जहां उसका पति उसी अपराध में इस से पूर्व निष्कासित कर दिया गया था। न्यायाधीशों ने फैसले अपने में यह उल्लिखित किया था कि उसे मृत्यु की भेंट करके वे देश के सम्मुख एक उदाहरण उपस्थित करना चाहते हैं।

कारावास का असह्य जीवन

इस समय ब्रिटिश द्वीपसमूह में कारावास का जीवन भी असह्य था। उस समय तक आधुनिक युग के इस सिद्धान्त का महत्व बहुत कम लोग समझते थे। कि किसी व्यक्ति को दंड इसीलिये दिया जाता है कि उसका सुधार हो, न कि इसलिये कि उससे बदला लिया जाय। एक इससे भी श्रेष्ठ सिद्धान्त यह है कि कोई व्यक्ति अपराध इस कारण से नहीं करता कि व्यक्तिगत रूप से उसमें कोई स्थायी दोष होता है वरन् इसलिये करता है कि उसके करते समय कुछ कारणों से उसके मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार की निर्बलता आ जाती है। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियों में सिद्धान्त इनके बिल्कुल विपरीत थे। एक ओर तो फौजदारी के नियम बहुत कठोर थे। दूसरी ओर अपराधी को अधिक से अधिक कष्ट पहुंचाने प्रयत्न किया जाता था। इसका एक प्रधान कारण यह था कि ब्रिटिश द्वीपसमूह में कारावास का प्रबन्ध शासन के स्थान में व्यक्तिगत मनुष्यों

के अधीन था जो अपराधियों पर कम से कम व्यय करना चाहते थे और उनसे अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहते थे। बहुधा ऐसा भी होता था कि यदि कोई अपराधी जेल के स्वामी को प्रसन्न न रख सकता था तो वह शीतला के रोग से ग्रसित बंदियों के साथ रख दिया जाता था। परिणाम यह होता कि उसे भी इस संसार के जीवन से मुक्ति मिल जाती थी। यह भी एक साधारण प्रथा थी कि सब प्रकार के चाहे वे पुरुष हो अथवा स्त्री, नवयुवक हों अथवा वृद्ध, सम्मलित रूप से कोठरियों में रहने बाध्य किया जाता था।

इस बुरी दशा के अतिरिक्त भी सुधार के काम में जल्दी नहीं की गई। दीर्घ-काल तक उन्नतिशील मनुष्य तथा सुधारक शासन का ध्यान इस ओर आकर्षित करते रहे। तब कहीं उस पर असर हुआ। बर्क (Burke) और जोन वेज़ली (John Wesley) ने प्रभावशाली शब्दों में इस अवाञ्छनीय प्रथा का विरोध किया। सर सेमुवेल रोमेली (Sir Samuel Romilly) ने कई वर्षों तक निरन्तर यह प्रयत्न किया कि पार्लेमेंट इसके सम्बन्ध में कोई कानून बना दे। सन् १८१३ ई० में जब उसने पार्लेमेंट में यह प्रस्ताव पेश किया कि दुकानों से पांच शिलिंग तक चुराने वालों को मृत्यु दंड दिया जाय। वरन् उन्हें आस्ट्रेलिया भेज दिया जाय तो पांच न्यायधीशों ने, जिनमें एक उच्च न्यायाधीश भी था, लार्ड सभा में यह प्रतिरोध उपस्थित किया कि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया तो राष्ट्रीय शिष्टाचार और फौजदारी कानून पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। अतएव वह अस्वीकृत कर दिया गया।

फ़ौजदारी के नियमों में सुधार

परन्तु इस प्रकार की बातों से राष्ट्र के शुभचिंतकों तथा सुधार प्रेमियों ने साहस नहीं छोड़ा। वे दृढ़तापूर्वक अपने कार्य में संलग्न रहे। अतएव उन्हें पूर्ण सफलता उपलब्ध हुई। सन् १८२० ई० तथा सन् १८६१ ई० के बीच पार्लेमेंट ने कई कानून स्वीकृत किये, जिससे फौजदारी के कानून की कठोरता प्रकट रूप से कम हो गई और मृत्यु दंड केवल वध, देशद्रोह तथा सामुद्रिक डकैती के लिये अवशेष रहा।

जेलों का भी सुधार किया गया। इस सम्बन्ध में हमें जॉन होवर्ड (John Howard) और एलिज़बेथ फ्राई (Elizabeth Fry) के नामों को विस्मृत न करना चाहिये। उनके प्रयत्न से शासन ने इस ओर विशेष ध्यान दिया तथा बन्दियों को सुविधा देने का प्रयत्न किया। सन् १८३५ ई० में यह कानून बनाया गया कि सरकारी निरीक्षक जेलों का निरीक्षण किया करेंगे। इसके कुछ समय पश्चात् शासन ने अपनी ओर से विस्तृत और हवादार जेलों का निर्माण

जेलों का सुधार

किया तथा बन्दियों के भोजनादि का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। इसके अतिरिक्त उनके अपराध के अनुसार उनको कई श्रेणियों में विभाजित भी किया गया। बीसवीं शताब्दी में उनको अधिक सुविधायें प्रदान करने की कोशिश की गई।

कारखानों तथा खानों का दुखद जीवन

कारखानों और खानों में काम करने वाले मज़दूरों का जीवन भी बहुत ही बुरा था। औद्योगिक क्रांति के कारण ग्रेट ब्रिटेन में मशीनों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। अतएव सब को इसकी चिन्ता तो थी कि उनके द्वारा अधिक से अधिक वस्तुयें निर्मित की जायं अथवा अधिक से अधिक कोयला व लोहा पृथ्वी से निकाला जाय, किन्तु इसकी चिन्ता किसी को भी न थी कि कारखानों और खानों में काम करने वाले कर्मचारियों की क्या दशा है? ऐसी स्थिति में आवश्यक था कि उनके स्वामी उनसे अधिक से अधिक काम लें तथा उनको कम से कम मज़दूरी दें। इसके अतिरिक्त उनके स्वास्थ्य तथा उनके रहने की व्यवस्था की ओर भी नाम मात्र को ध्यान न दिया जाता था। सहस्रों व्यक्ति ऐसे थे जो बिना भूमि अथवा बेकार होने के कारण ग्राम छोड़कर तिजारती शहरों में चले आए थे और उन्होंने अपने आपको मिल मालिकों की इच्छा पर छोड़ दिया था। जब कभी व्यापार में मन्दी हो जाती थी तो बहुधा इस प्रकार के लोगों को दीर्घकाल तक बेकारी और निराशा का जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

मज़दूरों के बालकों की कहानी इस से भी अधिक करुणाजनक है। मशीनों के व्यवहार के कारण बालकों को बहुत बड़ी संख्या में कारखानों में काम मिल गया था। इनमें सहस्रों ऐसे थे जो दुखिया सदन से बुलाये गये थे। उनके साथ बुरा से बुरा व्यवहार किया जाता था। इसके सम्बन्ध में फील्डन (Fielden) नाम के मिल मालिक का कथन है कि "उनके कोड़े लगाये जाते थे, उनके पैरों में जंजीर डाल दी जाती थी और उनका जीवन करुणाजनक बना दिया जाता था।" ऐसा व्यवहार केवल निर्धन तथा अनाथ बालकों के साथ ही न किया जाता था वरन् अन्य बालकों की दशा भी इसी प्रकार की थी। पार्लमेंट की रिपोर्ट से पता चलता है कि पांच वर्षों से कम आयु के बालक किस प्रकार खानों में काम करते थे, किस प्रकार कुछ बड़ी आयु के बालक कोयला गाड़ी खींचकर कोयला बाहर लाते थे और किस प्रकार बालक आल्पीनों के कारखानों में, कड़े तापमान के बीच बारह घंटों तक काम करते थे।

मज़दूरों की बुरी दशा का एक विशेष कारण यह था कि उस समय तक उनको पार्लमेंट में प्रतिनिधित्व प्राप्त न हो सका था एवं उस काल के अर्थशास्त्री

मालथस (Malthus) और रिकार्डो (Ricardo) की भांति मिल मालिकों का पक्ष करते थे। इसकी चिन्ता न करके, राबर्ट ओवन

सुधारों का आरम्भ

(Robert Owen) जैसे महा साहसी सुधारक मज़दूरों के पक्ष में बराबर स्वर ऊंचा करते रहे। शनैः शनैः पार्लमेंट के सदस्यों के मस्तिष्क में यह बात आ गई कि उनके लिये कुछ न कुछ करना अत्यन्त आवश्यक है। प्रारम्भ में तो उन्होंने केवल निर्धन बालकों के साथ जो दुखिया सदन से लाये गये थे, सहानुभूति प्रकट की तथा उनके लिये सन् १८०२ ई० में एक क़ानून बनाया, जिसके द्वारा यह निश्चित किया गया कि वे सप्ताह में केवल ७२ घंटे काम कर सकेंगे। उनके लिये कुछ अन्य सुविधायें भी कर दी गईं, जैसे मिलों के स्वामी उनको वर्ष में कम से कम एक जोड़ी कपड़े अपनी ओर से देंगे। राबर्ट ओवन एक आदर्श मिल मालिक था। उसने कारखानों में काम करने वाले बालकों की दशा में सुधार करने को प्रत्येक प्रयत्न किया, परन्तु उसे इस से अधिक सफलता प्राप्त न हो सकी कि सन् १८१९ ई० में पार्लमेंट ने एक क़ानून के द्वारा केवल यह निश्चित किया कि नौ वर्षों से कम आयु के बालक रुई के कारखानों में काम नहीं कर सकते और कोई भी मिल मालिक नौ और सोलह वर्षों के बीच वाले बालकों से बारह घण्टे प्रति दिन से अधिक काम नहीं ले सकता। उपरोक्त क़ानून बालकों के स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुये; किन्तु अभी अधिक सुधारों की आवश्यकता थी।

शीघ्र ही अन्य लोगों ने भी मज़दूरों के साथ सहानुभूति प्रदर्शित की, जैसे रिचर्ड ओस्लर (Richard Oastler), टामस सैडलर (Thomas Sadler) और लार्ड ऐशलि (Lord Ashley)। इनके ज़ोर

अन्य सुधार

देने से पार्लमेंट ने सन् १८३२ ई० में कारखानों के मज़दूरों के सम्बन्ध में जांच करने को एक कमेटी बिठलाई और उसकी राय से बालकों के लिये काम के घण्टे और भी कम कर दिये गये। इसके अतिरिक्त कारखानों के निरीक्षण के लिये निरीक्षकों की नियुक्ति भी होने लगी। सन् १८४२ ई० में लार्ड ऐशलि ने खानों में काम करने वाले मज़दूरों के लिये एक क़ानून बनवाया, जिसके द्वारा यह निश्चित किया गया कि स्त्रियां और बालक पृथ्वी के नीचे काम न करेंगे। सन् १८४७ ई० में उनके लिए कार्य की अवधि १० घण्टे प्रति दिन निर्धारित कर दी गई। इस से बालिग पुरुषों ने भी लाभ उठाया। कारण कि स्त्रियों तथा बालकों के चले जाने के पश्चात् कार्य को चालू रखना अत्यन्त कठिन था। यह सुधारकों और मज़दूरों के शुभचिंतकों की बहुत बड़ी विजय थी। इसके पश्चात् इस प्रकार के क़ानूनों का विरोध समाप्त हो गया,

और पार्लेमेंट प्रति वर्ष मज़दूरों की दशा में सुधार करने के लिये क़ानून निर्मित करने लगी। मज़दूरों के संगठन और शक्ति में भी उन्नति होती गई। यहां तक कि उनका एक पृथक् राजनैतिक दल बन गया, और बीसवीं शताब्दी में उसे शासन सूत्र को अपने हाथ में लेने का सुयोग प्राप्त हुआ। आज ग्रेट ब्रिटेन के मज़दूरों की दशा बहुत ही सन्तोषजनक है और उन्हें प्रत्येक प्रकार की सुविधा प्राप्त है।

व्यापारिक स्वतंत्रता

आधुनिक काल के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का एक मुख्य सिद्धान्त यह है कि आयात और निर्यात पर कम से कम प्रतिबन्ध लगाये जायँ। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी से पहले बहुत कम लोग इस लाभकारी सिद्धान्त के महत्व को समझते थे। ग्रेट ब्रिटेन में भी उपरोक्त शताब्दी के मध्यकाल तक शासन व्यापारिक स्वतंत्रता के लाभों से अवगत न था। वह कई प्रकार से इसके लिये प्रयत्नशील था कि वैदेशिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण देश के दस्तकारों, किसानों और जहाज़ों के स्वामियों की हानि न हो। जो अनाज फ्रांस और महाद्वीप के अन्य देशों से वहां आता था उस पर भी कठोर कर लागू थे। परिणाम यह होता कि साधारण जनता को, जिसमें मज़दूर भी सम्मिलित थे, खाने पीने की सामग्री पर अधिक व्यय करना पड़ता था और कारखानों के स्वामी अपने कारखानों में बनाई गई वस्तुओं के मूल्य में कमी न कर सकते थे।

व्यापारिक प्रतिबंध

कुछ विद्वान ऐसे भी थे जो व्यापारिक स्वतंत्रता के समर्थक थे। उनका नेता ऐडम स्मिथ (Adam Smith) था। उसका उल्लेख पहले भी हो चुका है। उसने सन् १७७६ ई० में इस विषय पर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक (Wealth of the Nations) लिखी। उसका छोटे पिट पर सुन्दर प्रभाव पड़ा परन्तु दीर्घकाल तक उपरोक्त सिद्धान्त के अनुसार व्यवहार न हो सका। अन्ततः कारखानों के स्वामियों ने इस विषय में अभिरुचि प्रकट की। उनका कथन था कि जब तक व्यापार के मार्ग से प्रतिबन्ध न हटा दिया जायँगे तब तक न उनके मज़दूरों को कम मूल्य पर भोजन ही प्राप्त होगा और न ऐसे देश जहाँ उद्योग धन्धों की कमी है, अन्न के बदले में उनके द्वारा निर्मित वस्तुयें ही मोल ले सकेंगे। उनको अपने काम में अन्य देशों की प्रतिद्वन्द्विता का भय केवल नाम मात्र को था। इसलिये न वे अपने लिये और न कृषकों के लिये व्यापारिक प्रतिबन्धों के पक्षपाती थे।

व्यापारिक स्वतन्त्रता का सिद्धान्त

मिल मालिकों तथा व्यापारिक स्वतंत्रता के अन्य अभिलाषियों ने सबसे प्रथम अनाज के कानूनों (Corn Laws) के विरोध में आवाज़ उठाई। इनके कारण अन्य

देशों के अनाज को ग्रेट ब्रिटेन में प्रवेश होने की स्वतंत्रता न थी। सन् १८१५ ई० के पश्चात् जब विभिन्न वस्तुओं के मूल्य का अकस्मात गिरना आरम्भ हुआ तो अनाज कर अधिक कठोर कर दिये गये थे। इसके पश्चात् शासन ने ब्रिटिश कृषकों को हानि से सुरक्षित रखने के उद्देश्य से अनाज की एक प्रशुल्क-सूची निर्मित की, जिसका सिद्धान्त यह था कि उसके मूल्य के चढ़ाव व उतार के साथ साथ उस पर कर भी घटते व बढ़ते रहते थे।

अनाज के कानून और उनका अंत

सन् १८३८ ई० में कारखानों के स्वामियों और हस्तशिल्पियों की ओर से एक संस्था स्थापित की गई जिसका नाम 'अनाज कानून विरोधी संघ' (Anti-Corn Law League) था। जैसा कि नाम से प्रकट है, इसका उद्देश्य अनाज के करों को स्थगित कराना था। उसने दस साल तक कोब्डन और ब्राइट के नेतृत्व में अत्यन्त योग्यता और प्रयत्न के साथ, जनसाधारण को व्यापारिक स्वतंत्रता के लाभों से अवगत कराया तथा शासन का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। सन् १८४५ ई० में आलू की कृषि के सफल न होने के कारण आयरलैंड में दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ा। इंग्लैंड में भी कृषि बिगड़ गई थी। अतएव वहां भी अंगरेजों को घोर संकट का सामना करना पड़ा। वहां अनाज का मूल्य इतना अधिक हो गया था कि सहस्रों व्यक्तियों के भूखों मरने की नौबत आगई थी। यह देखकर सर रॉबर्ट पील ने, जो इस समय प्रधान मंत्री के पद पर सुशोभित था, सन् १८४६ ई० में पार्लेमेंट के द्वारा एक कानून स्वीकृत कराया जिसके द्वारा अनाज के कानून लगभग समाप्त हो गये। इस कानून के कारण ग्रेट ब्रिटेन के ज़मींदारों तथा कृषकों को भयंकर क्षति उठानी पड़ी, किन्तु वहां व्यापारिक स्वतंत्रता का मार्ग सदा के लिये खुल गया।

इसके दस वर्षों के अंतर्गत जहाज़ों के गमनागमन के कानून (Navigation Laws) स्थगित कर दिये गये तथा ब्रिटिश द्वीपों के बंदरगाह अन्य देशों के लिये खोल दिये गये। सन् १८५२ ई० में ग्लैडस्टन ने अर्थमंत्री की स्थिति में १२३ वस्तुओं को कर से बिल्कुल मुक्त कर दिया तथा १३५ वस्तुओं के करों को कम कर दिया। पंद्रह साल बाद उसने उन समस्त करों को हटा दिया जो अंगरेज़ी व्यापार के संरक्षण के लिये स्थापित किये गये थे। यद्यपि इस विचार से कि शासन की अधिक आर्थिक क्षति न हो, मदिरा, कोको तथा कुछ अन्य वस्तुओं के कर स्थापित रहे। फ्रांस, जर्मनी तथा महाद्वीप के कुछ अन्य देशों में भी व्यापारिक स्वतंत्रता के सिद्धान्तों को महत्व दिया गया। फ्रांस में नेपोलियन तृतीय के समय में उदार दल के मनुष्यों ने और

व्यापारिक स्वतंत्रता का प्रचार, १८५२-१८६७ ई०

जर्मनी में बिज्मार्क ने सन् १८७६ ई० में उसको व्यवहार में लाने का प्रयत्न किया (अध्याय ५ तथा ६ देखिये)। कुछ वर्षों के लिये ऐसा प्रतीत होने लगा कि अंतर्राष्ट्रीय करों की कमी अथवा उनके अभाव तथा इसके अतिरिक्त पारस्परिक संधियों के कारण समस्त यूरोप में व्यापार को स्वतंत्र कर दिया जायेगा, किन्तु यह नीति अधिक सफल न हो सकी।

रक्षित व्यापार

उपरोक्त वर्ष के पश्चात् न केवल ब्रिटिश द्वीपसमूह में वरन् अन्य देशों में भी ऐसी विपरीत हवा चली कि विदेशी वस्तुओं के विरुद्ध करों की महान प्राचीरें फिर खड़ी कर दी गईं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में भी इसी नीति के अनुसार व्यवहार प्रारम्भ हुआ। इंग्लैंड में सन् १९०६ ई० में निर्वाचनों के समय चैम्बरलेन ने रक्षित व्यापार की नीति को सामने रखकर अपने प्रतिद्वन्द्वियों का सामना किया। इसमें सन्देह नहीं कि वह अपने प्रयत्न में सफल न हुआ परन्तु उस की नीति का महत्व निरन्तर बढ़ता गया। विश्व के प्रथम महायुद्ध (१९१४-१९१८) के किये जाने का एक विशेष कारण यह भी था कि विभिन्न देशों ने एक दूसरे के व्यापार के विरुद्ध इस प्रकार की प्राचीरें खड़ी कर ली थीं।

शिक्षा का प्रचार

शिक्षा सुधार का विरोध

यह एक अत्यन्त आश्चर्य का विषय है कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक ब्रिटिश द्वीपसमूह के अधिकतर निवासी अशिक्षित थे। शासन तथा वहाँ की सामान्य जनता दोनों ही इस ओर से निश्चिन्त थे। कोई भी राजनीतिज्ञ अथवा विद्वान शिक्षा की उन्नति को अपना कर्तव्य न समझता था। शिक्षालयों की संख्या बहुत ही कम थी और उन से शासन का कोई सम्बन्ध भी न था। विश्वविद्यालयों की शिक्षा ग्रहण करना केवल लॉर्डों का काम समझा जाता था। सन् १८०७ ई० में जब सेमुअल ह्विटब्रेड (Samuel Whitbread) नाम के सदस्य ने पार्लमेंट के समक्ष यह मत उपस्थित किया कि शासन को चाहिये कि पेरिश (Parish) के शिक्षालयों को अपनी संरक्षता में ले ले तो उसको घोर विरोध का सामना करना पड़ा और उसका प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका।

नैपोलियन के पतन के पश्चात् प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ लार्ड ब्रूअम (Lord Brougham) ने शिक्षा प्रसार की समस्या को अपने हाथ में लिया, किन्तु उसे सन् १८३३ ई० के पूर्व सफलता नहीं मिली। इस वर्ष शासन ने इस काम के लिये बीस सहस्र पौंड स्वीकार किये और छः साल बाद इस धन में ५०फीसदी वृद्धि कर दी। यह सब धन अराजकीय विद्यालयों पर व्यय होता था। परन्तु यह ज्ञात करके बड़ा

शासन की ओर से धन की स्वीकृति

आश्चर्य होता था कि जिस वर्ष पार्लमेंट ने शिक्षा के लिये केवल ३० सहस्र पौंड स्वीकार किये थे उसी वर्ष उसने महारानी विक्टोरिया के अस्तबलों के लिये ७० सहस्र पौंड स्वीकार किये। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक शासन शिक्षा के प्रसार को बहुत कम महत्व देता था। इसके पश्चात् अराजकीय विद्यालयों की आर्थिक सहायता में बराबर वृद्धि होती गई। सन् १८७० ई० में पार्लमेंट ने एक प्रसिद्ध शिक्षा सम्बन्धी बिल स्वीकृत किया। जिसके द्वारा यह निश्चित किया गया कि शहरों व कस्बों में सार्वजनिक मतदान से स्कूल बोर्ड स्थापित किये जायं। इनका मुख्य कार्य राजकीय धन से विद्यालयों को स्थापित करना था। जब विद्यालय स्थापित हो जाते तो बोर्ड चंदा अथवा दान के द्वारा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे तथा अन्य रीतियों से भी उनकी देखरेख रखते थे। धीरे धीरे विद्यालयों में छात्रों की संख्या में अधिक वृद्धि हो गई। शासन ने शिक्षा को अनिवार्य निश्चित किया एवं विद्यालयों की शिक्षा को पूर्णतया निशुल्क कर दिया।

सन् १९०२ का शिक्षा सम्बन्धी बिल

सन् १९०२ ई० में एक अन्य प्रसिद्ध बिल स्वीकृत किया गया, जिससे शासन ने विद्यालयों के व्यय का लगभग सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। उनके संरक्षण के लिये भी उचित प्रबंध कर दिया गया। जो अराजकीय विद्यालय सन् १८७० ई० में स्थापित किये गये थे उनका प्रबंध नगरपालिकाओं की शिक्षा समितियों के आधीन कर दिया गया। धार्मिक विद्यालयों का निरीक्षण स्कूल बोर्डों के आधीन कर दिया गया, जिनमें चार सदस्य उस विशेष चर्च की ओर से बैठते थे और दो सदस्य उपरोक्त समिति से लिये जाते थे। इसके पश्चात् शिक्षा का चलन बहुत बढ़ गया, किन्तु कुछ धार्मिक दलों की ओर से उसका अधिक विरोध किया गया। कारण यह था कि आधे से अधिक प्रारम्भिक शिक्षा के विद्यालय ऐंग्लिकन चर्च के आधीन थे। दूसरे दलों के लोग कहते थे कि नवीन कानून केवल इसलिये बनाया गया है कि ऐंग्लिकन चर्च के अनुयायियों की संख्या में वृद्धि हो।

१९०६ ई० का कानून

सन् १९०६ ई० के चुनाव में अनुदार दल (Conservative Party) की पराजय हुई। इसका एक विशेष कारण यह भी था कि गत् शिक्षा सम्बन्धी बिल के कारण उसकी अपकीर्ति होगई थी। इसके पश्चात् उदार दल (Liberal Party) ने शासन सूत्र को अपने हाथ में लिया। उसने भी शिक्षा के प्रसार के लिये एक कानून निर्मित करने का प्रयत्न किया, किन्तु लॉर्डों के विरोध के कारण उसे सफलता प्राप्त न हुई। अतएव विश्व के प्रथम महायुद्ध तक शिक्षा की

समस्या पूर्ण रूप से हल न हो सकी। इसके होते हुये भी ग्रेट ब्रिटेन के निवासियों की निरक्षरता वर्ष प्रति वर्ष कम होती गई और विद्यालयों की दक्षता भी बढ़ती गई। पुरुषों के अतिरिक्त स्त्रियां भी शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं से लाभ उठा रही थीं। सन् १८४३ ई० में ४९ प्रतिशत स्त्रियां अशिक्षित थीं। सन् १९०३ ई० में उनकी संख्या केवल तीन प्रतिशत रह गई।

बारहवां अध्याय

रूस का सुधारवादी आन्दोलन

(१८१५—१८८१)

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रूस के निवासी यूरोप के अन्य राष्ट्रों की तुलना में सभ्यता और संस्कृति में बहुत पीछे थे। तातारी सभ्यता का बर्बरतापूर्ण प्रभाव किसी न किसी मात्रा में वहां उस समय भी विद्यमान था। इसके कारण कई शताब्दियों तक रूस की इच्छानुसार उन्नति न हो सकी। प्रथम ज़ार, जिसने उसकी आन्तरिक दशा में सुधार करके उसे यूरोपीय देशों के स्तर तक उठाने का प्रयत्न किया, पीटर महान् (१६८२—१७२५) था। उसके निकटतम उत्तराधिकारियों में कोई भी ऐसा न हुआ जो उसके काम को पूरा करता। कैथरिन महान् (१७६२—१७९६) ने उपरोक्त राज्य को यूरोपीय देशों में उच्च स्थान दिलाया, किन्तु उसने देश की आन्तरिक दशा के सुधारने का कठिन कार्य हाथ में नहीं लिया। उन्नीसवीं शताब्दी में भी वहां इस विषय में सन्तोषजनक उन्नति न हो सकी। इस काल में वहां केवल एक ही महान् सुधार किया गया, जिसके महत्व को हम विस्मृत नहीं कर सकते। यह सुधार रूस के कृषकों की स्वतंत्रता है। इसके अतिरिक्त वहां कोई बड़ा सुधार न हुआ। ऐसी दशा में वहां लोकतन्त्रवादी आन्दोलनों का तो अस्तित्व ही नहीं हो सकता था। इस काल में पश्चिम के उन्नतिशील विचार धीरे धीरे रूसी समाज पर प्रभाव डाल रहे थे। अतएव यदि उसके ऊपरी भाग में निरंकुश शासन और ज़मीदारों के अत्याचारों के चिह्न प्रकट थे तो नीचे की ओर उन्नति और उदारवाद के सिद्धान्त धीरे धीरे ज़ारों की सत्ता की जड़ को खोखला बना रहे थे।

सन् १८१५ ई० में रूस की आन्तरिक दशा पश्चिमी देशों की तुलना में

अत्यन्त खेदजनक थी। सब से बड़ी समस्या कृषकों की थी, जो बुरी तरह से दासता की शृङ्खलाओं में जकड़े हुये थे। जिस समय रूस के कृषकों को स्वतन्त्रता प्रदान की गई (सन् १८६१ ई०) उस समय वहां लगभग ५ करोड़ दास-कृषक (Serfs) थे। इनमें से लगभग आधे सरकारी भूमि पर काम करते थे और शेष जमींदारों और चर्च की भूमि पर निवास करते थे। प्रथम प्रकार के कृषकों की दशा द्वितीय प्रकार के कृषकों से कई प्रकार से अच्छी थी। उन्हें साधारण रीति से स्वशासन के अधिकार प्राप्त थे, किन्तु उनकी स्वतन्त्रता कई प्रकार से सीमित कर दी गई थी। उनको न तो यातायात की स्वतन्त्रता थी और न सम्पत्ति को प्राप्त करने अथवा बेचने का ही अधिकार था। उनकी मुख्य शिकायत यह थी कि उन पर करों का भार असहनीय था तथा वे बहुधा रिश्वत और बेगार के कारण भी दुखित रहते थे। व्यक्तिगत ज़मींदारों के अधीन काम करने वाले कृषकों की दशा का अनुमान इस से लगाया जा सकता है कि सन् १८२६ ई० में रूस के एक देशभक्त ने उनके विषय में यह उल्लिखित किया था कि "रूस के व्यक्तिगत फ़ार्मों में काम करने वाले दास-कृषकों की तुलना में अमेरिका के खेतों तथा उद्यानों में काम करने वाले हब्शी अधिक सन्तुष्ट हैं।" उनके स्वामी उन्हें पशुओं की भांति बेच सकते थे तथा उनसे इच्छानुसार कर व बेगार ले सकते थे। इसके अतिरिक्त वे उन्हें शारीरिक दण्ड भी दे सकते थे। वे उन्हें सैनिक भर्ती के लिये शासन के अधिकारियों के अर्पण कर सकते थे और उन्हें साइबेरिया के जंगलों को निर्वासित कर सकते थे। सरकारी क़ानून किसी भी प्रकार से इस प्रकार के अवांछनीय व्यवहार के विरुद्ध न थे। कैथरिन महान् ने इसके अतिरिक्त भी कि वह फ्रांस के दार्शनिकों से पत्रव्यवहार किया करती थी, कृषकों के जीवन में अधिक रुकावटें उत्पन्न कीं और जो कुछ क़ानूनी अधिकार उन्हें प्राप्त थे, उनसे भी उन्हें वंचित कर दिया।

सन् १८१५ ई० की स्थिति

सन् १८१५ ई० में रूस की शासन प्रणाली भी दोषपूर्ण थी। शासन का कुप्रबंध इतना अधिक बढ़ा हुआ था कि वह वर्णन के बाहर है। एक लेखक का मत है कि उस समय वहां प्रत्येक प्रकार का अत्याचार, प्रत्येक प्रकार का अन्याय-पूर्ण व्यवहार तथा प्रत्येक प्रकार का झूठ-फरेब प्रचलित था। वहां घूस का भी बड़ा ज़ोर था। इसका एक मुख्य कारण यह था कि सरकारी अधिकारियों को वेतन कम मिलता था। फ़ौजी राजपाल प्रजा से स्वेच्छानुसार धनोपार्जन करते थे। उनके अधीन अधिकारी उनका अनुकरण करते थे। यदि मनुष्य इसकी शिकायत करते थे तो भी कोई विशेष लाभ न होता था, क्योंकि समस्त राजपाल एक ही प्रकार

के थे। किसी भी न्यायालय में घूस के बिना उचित न्याय न हो सकता था। राजकीय कोष भी आंख बन्द करके व्यय किया जाता था। यदि अधीन अधिकारियों पर शासन की कड़ी दृष्टि होती तो इस प्रकार के दोष कदापि उत्पन्न न होते। उस काल में शासन और समाज दोनों ही में प्रकट दोष थे।

कुलीनों का असंतोष

रूसी समाज और शासन के दोषों को दूर करने के लिये क्रांति की आवश्यकता थी। परन्तु क्रांति के लिये दो आवश्यक बातों में से रूस में केवल एक ही बात उपस्थित थी। अर्थात् वहां कृषकों की दशा तो बड़ी शोचनीय थी, किन्तु मध्यम वर्ग के नेताओं की कमी थी। फ्रांस में सन् १७८६ ई० की क्रांति का मुख्य कारण यह न था कि वहां निम्न श्रेणी के लोगों की हालत खराब थी वरन् यह था कि वहां के मध्यम श्रेणी के लोगों में यथेष्ट जागृति थी और उस काल की दार्शनिक पुस्तकों के अध्ययन ने उन्हें तत्कालीन शासन से असंतुष्ट कर दिया था। रूस में किसी प्रकार के मध्यम श्रेणी के लोगों का पूर्ण अभाव था। अतएव यदि वहां क्रांति के समय कृषकों का नेतृत्व करने को नेता मिल सकते थे तो स्वयं कृषकों में मिल सकते थे अथवा कुलीनों में। एक सुन्दर बात यह थी कि उस समय अभिजातवर्ग के लोग शासन से प्रसन्न न थे। इसका विशेष कारण यह था कि शासन कार्य में उनका कोई हाथ न था। सरकारी पदों पर अधिकतर जर्मन जाति के लोग सुशोभित थे। इतना अवश्य था कि सैनिक अधिकारी कुलीनों से लिये जाते थे। नेपोलियन बोनापार्ट के पतन के पश्चात् जब रूस के सैनिक अधिकारी अपने देश को लौटे तो वे अपने साथ संविधानीय शासन तथा क्रांति के सिद्धान्तों को भी लाये। यहां आकर उन्होंने इटेली की कार्बोनारि (Carbonari) के समान गुप्त समितियां बनायी, किन्तु वे शासन अथवा समाज में किसी प्रकार की क्रांति उत्पन्न न कर सके। इसका मुख्य कारण यह था कि रूस के दृष्टिकोण से वे समय से बहुत आगे थे और जिस भूमि में वे बीजारोपण करना चाहते थे वह फसल उत्पन्न करने के योग्य न थी। उन्होंने देशभक्ति और बलिदान का एक ऐसा उदाहरण उपस्थित किया जिसका उल्लेख रूसी इतिहास में सदैव किया जायेगा।

दिसम्बर का आन्दोलन (सन् १८२५ ई०)

दिसम्बर सन् १८२५ ई० में गुप्त समितियों को कार्य करने का अनुपम सुयोग प्राप्त हुआ। सिकंदर प्रथम की मृत्यु (सन् १८२५ ई०) पर रूस में तीन सप्ताह तक कुव्यवस्था स्थापित रही। उसके ज्येष्ठ पुत्र कौंस्टेन्टीन (Constantine) ने राजसिंहासन को स्वीकार न करके उसे अपने छोटे भाई [illegible] ([illegible]) के लिये छोड़ दिया। यह बात कहीं

में परस्पर मतभेद है। निकोलस के सिंहासनारूढ़ होने के तीन सप्ताह पूर्व तक राजधानी पीटर्सबर्ग में बड़ी अशांति रही। २६ दिसम्बर को वहां मास्को के रेजिमेंट ने अपने पदाधिकारियों के कहने से विद्रोह कर किया। परन्तु उनकी सहायता के लिये न तो वहां के निवासी ही तैयार थे और न अन्य अफ़सर। विद्रोह का प्रबंध भी ठीक प्रकार से न किया गया था। उसकी ज्वाला अन्य सैनिक दलों में न पहुंच कर मार्ग ही में बुझा दी गई। इसी प्रकार से जब दक्षिण की गुप्त समितियों की ओर से सेना में विद्रोह फैलाने का प्रयत्न किया गया तो वह भी शीघ्र ही समाप्त कर दिया गया। शासन ने विद्रोह का बदला बड़ी कठोरता से लिया। इस प्रकार समाज के सबसे उन्नतिशील मनुष्य साइबेरिया के वनों को निर्वासित कर दिये गये अथवा उन्हें मृत्यु दंड दिया गया। उन में सब से ऊंचा स्थान सैनिक अफ़सर पाल पेस्टल (Paul Pestel) का था। जब उसे फांसी के तख्ते पर खड़ा किया गया तो उस के मुंह से ये शब्द निकले, "मैंने यह भूल की कि बीज बोने से पहले मैंने फ़सल काटने का प्रयत्न किया।" एक अन्य शहीद ने कहा, "मैं पूर्व ही से जानता था कि हमारे प्रयत्नों के सफल होने की बहुत कम आशा है। मुझे यह भी ज्ञात था कि मेरे लिये अपने जीवन का उत्सर्ग करना आवश्यक है।......फसल काटने का समय पीछे आयेगा।" इस प्रकार दिसम्बर का आन्दोलन समाप्त होगया। परन्तु शहीदों का बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जाता। रूस के शहीदों ने प्रमाणित कर दिया था कि देश में शासन के विरुद्ध जनता में असंतोष है। अतएव किसी समय भी राष्ट्रीय आन्दोलन ज़ोर पकड़ सकता था।

ज़ार निकोलस प्रथम, (१८२५-१८५५)

सन् १८२५ ई० में निकोलस प्रथम का राज्याभिषेक हुआ। वह निरंकुश शासन और अत्याचार व अनाचार की प्रतिमूर्ति था। उसके शासन के प्रारम्भ में जो आन्दोलन किये गये थे, उनका उस पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा था। उसने घर और बाहर दोनों स्थानों में उदार सिद्धान्तों का दमन बड़ी कठोरता से करने का बीड़ा उठाया। ऐसा उसने उस समय किया जब यूरोप के लगभग सभी देशों में उदार सिद्धान्तों की विजय हो रही थी। जहां तक विदेशी नीति का सम्बन्ध है, वह मेटर्निक के सिद्धान्तों का सब से बड़ा समर्थक तथा प्रतिक्रियावादी आन्दोलन का प्रमुख स्तम्भ था। स्वदेश में उसने रूढ़िवादी शासन नीति से काम लिया और अपनी प्रजा को इस बात का अवसर न दिया कि वह लोकतंत्रवादी प्रदर्शन तथा आन्दोलन करे। सन् १८३० ई० में वह फ्रांस के राजसिंहासन से च्युत सम्राट दसवें चार्ल्स की ओर से हस्तक्षेप करने को उद्यत हो गया, परन्तु वह पोलैंड के विद्रोह के कारण ऐसा न कर सका। सन्

१८४८ ई० में उसने आस्ट्रिया की सहायतार्थ सेना भेजकर हंगरी की क्रांति का अन्त कर दिया। स्वदेश में उसने ऐसी नीति प्रणाली से काम लिया कि रूस के निवासियों के लिये मानसिक उन्नति तथा स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने का मार्ग बन्द रहा। उसने गुप्त पुलिस को, जो उसके पूर्वाधिकारी के समय में स्थगित कर दी गई थी, पुनर्जीवित करके उसके अध्यक्ष को अधिक से अधिक अधिकार प्रदान किये। अतएव वह किसी भी व्यक्ति को स्वेच्छानुसार बंदी तथा देश से निर्वासित कर सकता था अथवा उसको गुप्त रीति से बिल्कुल ही समाप्त कर सकता था। निकोलस प्रथम के शासनकाल में पुलिस के कारनामे उतने ही काले तथा अवांछनीय थे जितने कि स्पेन में धार्मिक न्यायालय (Inquisition) के समय में थे। उपरोक्त ज़ार ने यह भी प्रयत्न किया कि उसकी प्रजा किसी भी प्रकार से पश्चिम के उन्नतिशील देशों की 'गन्दी वायु' से परिवेष्ठित न हो। अन्य देशों के यातायात तथा परिभ्रमण के मार्ग में रुकावटें डाल दी गईं। रूस के छात्र वहां शिक्षा ग्रहण करने के लिये भी न जा सकते थे। विदेशों की कोई पुस्तक अथवा किसी प्रकार का अन्य प्रकाशन सरकारी निरीक्षण के बिना देश में न आ सकता था। शासन के संकुचित दृष्टिकोण का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि छात्रों को विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने से रोका जाता था तथा उनके पाठ्यक्रम से दर्शन का विषय बिल्कुल हटा दिया गया था। मुद्रण की स्वतन्त्रता भी बहुत बड़ी सीमा तक समाप्त कर दी गई थी। इसके विरुद्ध पुरातन काल के धार्मिक सिद्धान्तों को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ज़ार निकोलस प्रथम के शासन के सिद्धान्त भी वही थे जो स्पेन में फ़िलिप द्वितीय के रह चुके थे। ये सिद्धान्त लोकतंत्र के पूर्णतया विरुद्ध थे। किन्तु जिस प्रकार उदारवादियों के सामने मैटर्निक को नीचा देखना पड़ा था, उसी प्रकार कुछ वर्षों के पश्चात् रूस के ज़ार को भी नीचा देखना पड़ा। अन्तर केवल इतना था कि आस्ट्रिया की तुलना में रूसी राज्यक्रांति अधिक ज़ोरदार तथा रक्तपूर्ण थी। उसके परिणाम भी अधिक उत्तम तथा लाभकारी प्रमाणित हुये।

क्रीमिया के युद्ध का प्रभाव

इस समय रूस के निवासी पश्चिमी देशों की तुलना में सभ्यता और संस्कृति में बहुत पीछे थे। उनमें न शिक्षा ही का चलन था और न राजनैतिक जागृति ही थी। इसलिये उन्होंने ज़ार निकोलस प्रथम के निरंकुश शासन के विरुद्ध किसी प्रकार का आन्दोलन नहीं किया। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि गत पचास वर्षों से रूस में नैपोलियन बोनापार्ट के मास्को से भागने के राग अलापे जा रहे थे। उसके शासक और प्रजागण दोनों

वैदेशिक विजयों के नशे में अन्धे हो रहे थे तथा शासन के उन दोषों की ओर से अनभिज्ञ थे जो उनके तथा उनके देश के नाम पर सब से बड़ी कालिमा थी। क्रीमिया के युद्ध में जब उनको पूर्ण पराजय प्राप्त हुई तब उनको चेत हुआ। युद्ध शक्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के जो स्वप्न वे सन् १८१२ ई० से देख रहे थे, वे अकस्मात् लोप हो गये और वे इस बात से भी अवगत हो गये कि रूस एक पिछड़ा हुआ देश है, जो शासन तथा समाज में कायापलट सुधार के बिना पश्चिमी राष्ट्रों के सामने सिर ऊंचा नहीं कर सकता। विशेषत: शिक्षित तथा उच्च वर्ग के मनुष्य शासन की निर्बलता तथा अयोग्यता से भली भांति परिचित हो गये थे। परन्तु शासन की ओर से विचार प्रकाशन की स्वतन्त्रता और राजनैतिक आन्दोलनों के विरुद्ध इतने अधिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे कि कुछ समय तक वे विवश रहे। शिक्षित लोगों ने इतना अवश्य किया कि उन्होंने हस्तलिखित लेखों को जनता में घुमाकर निकोलस के शासन की खिल्ली उड़ाई और शिक्षित वर्ग में जागृति उत्पन्न की।

क्रीमिया का युद्ध अभी समाप्त भी न हुआ था कि रूस का विख्यात ज़ार सिकन्दर द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ (सन् १८५५ ई०)। वह अपने पिता से कई बातों में भिन्न था। उसकी तुलना में वह अधिक दूरदर्शी और प्रजापालक था। वह देश की आवश्यकताओं को खूब समझता था और सुधारों के द्वारा उनको पूरा करना चाहता था। वह नई रोशनी का शासक था और अठारहवीं शताब्दी के दर्शन का अनुशीलन कर चुका था।

सिकन्दर द्वितीय,
(१८५५-१८८१)

सिंहासनारूढ़ होते ही उसने दिसम्बर सन् १८२५ ई० के आन्दोलन में भाग लेने वालों को साइबेरिया के जंगलों से लौट आने की आज्ञा दे दी। इस समय तक उनमें से बहुत से मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे। जो शेष बचे थे वे लौट आये। निकोलस प्रथम ने जो प्रतिबन्ध विश्वविद्यालयों और विदेशी यातायात व परिभ्रमण पर लगाये थे वे सब हटा दिये गये। मुद्रण व प्रकाशन के प्रतिबन्ध भी हटा दिये गये। इसके फलस्वरूप शासन सुधार और देश की उन्नति के विषय में अगणित योजनायें प्रकाशित की गईं। रूस निवासियों की आशायें इतनी अधिक बढ़ गई थीं कि वे अपने नवीन विचारों के शासक से सम्भव तथा असम्भव सभी प्रकार के कार्य कराना चाहते थे। उनका कथन था कि उनको युद्ध को धन्यवाद देना चाहिये, क्योंकि उसने उनकी आंखें खोल दी थीं एवं उन्हें इस योग्य बना दिया था कि वे राजनैतिक तथा सामाजिक दोषों को दूर कर सकें। इस सम्बन्ध में एक ध्यान देने योग्य बात यह थी कि सिकन्दर द्वितीय ने शासन के निरंकुश स्वरूप को न

बदला था। तथापि उसकी प्रजा उससे प्रेम करती थी। रूस की जनता पर उस समय तक गणतन्त्रवादी सिद्धान्तों का प्रभाव अधिक न पड़ा था। इसलिये उसे पूर्ण विश्वास था कि ज़ार के हाथों ही देश का अधिक से अधिक कल्याण हो सकता था।

सिकन्दर द्वितीय ने कुछ अन्य आवश्यक सुधार भी किये। उसका सब से महत्वपूर्ण सुधार, जिसके लिये उसका नाम अमर है, दास-कृषकों की प्रथा (Serfdom) की समाप्ति है। यह प्रथा बहुत पुरानी थी और रूस में उसका इतना अधिक ज़ोर था कि राष्ट्र के लगभग आधे मनुष्य दास थे। उसके कारण कृषियों का जीवन नीरस था। उन्नति और

दास-कृषकों की स्वतन्त्रता, १८६१ ई०

सुधार के मार्ग में भी यह सब से बड़ी रुकावट थी। उसके कारण निकोलस के शासनकाल में कई बार विद्रोह हो चुके थे। इन समस्त बातों पर ध्यान न देकर उसके पुत्र ने उपरोक्त प्रथा को पूर्णतया समाप्त करके लाखों दास-कृषकों को स्वतन्त्र कर दिया (सन् १८६१ ई०)। उन्हें नागरिक अधिकार प्राप्त हो गये। इसके अतिरिक्त कृषक कुलीनों की भाँति भूमि के स्वामी भी बना दिये गये, परन्तु किसी कृषक को भी भूमि स्थायी रूप से न दी गई। जो भूमि जमीदारों की ओर से छोड़ दी गई थी उस पर पहले ग्राम समुदाय (Mir) का अधिकार स्थापित हुआ। उसने उसे अपनी ओर से ग्राम के विभिन्न वंशों में विभाजित कर दिया। यह विभाजन बहुधा हुआ करता था। अतएव कोई भी कृषक अपने झोपड़े और बाग के अतिरिक्त भूमि के किसी भाग को भी सर्वदा के लिए अपना नहीं समझ सकता था। ग्राम समुदाय ही जमीदारों को भूमि का नक़द प्रतिफल देने के लिये उत्तरदायी बनाया गया। इसमें सन्देह नहीं कि यह सुधार आश्चर्यकारी था तथा इससे रूस के कृषकों की प्रतिष्ठा और उनके अधिकारों में अधिक अन्तर हो गया था। किन्तु इससे हमें यह परिणाम कदापि न निकालना चाहिये कि उनकी आर्थिक दशा एक साथ बहुत उत्तम हो गई थी। कारण कि यदि एक ओर शासन ने उनके जीवन के कुछ प्रतिबन्ध हटा दिये थे तो दूसरी ओर ग्राम समुदाय की ओर से उन पर कुछ नये कर तथा उत्तरदायित्व लाद दिये गये थे। प्राचीन ज़मीदारों पर उपरोक्त सुधार का बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपनी स्थिति में सुधार करने का प्रयत्न किया। वह मितव्ययिता को अधिक महत्व देने लगे तथा अपनी जमीदारियों का प्रबन्ध अधिक उत्तम ढंग से करने लगे। इस सम्बन्ध में एक कुलीन के शब्द उद्धृत किये जाने के योग्य हैं,—"पहले हम किसी प्रकार का हिसाब न रखते थे तथा उत्तम प्रकार की शराब पीते थे। अब हम हिसाब रखते हैं और घटिया शराब पीकर संतुष्ट हो जाते हैं।"

सिकन्दर द्वितीय ने न्याय विभाग और स्थानीय शासन का भी सुधार किया। प्रथम का रूप पूर्णतया परिवर्तित कर दिया गया। प्राचीन ढंग के न्यायालयों के स्थान में पश्चिमी ढंग के न्यायालय स्थापित कये गये। अंगरेज़ी और फ्रांसीसी सिद्धान्तों के अनुसार न्याय और कार्यपालिका विभागों को एक दूसरे से पृथक कर दिया गया। न्यायाधीशों को अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई और सब जगह न्यायालयों में ज़बानी कार्य प्रणाली तथा जूरी की प्रथा प्रारम्भ हुई। इसके साथ साथ सिकन्दर ने अपने साम्राज्य के मध्यवर्ती प्रान्तों में स्थानीय शासनों का सुधार भी किया। राजपालों के अधिकारों को कम करके प्रत्येक ज़िले में एक सभा (Zemstvo) स्थापित की गई, जिसमें ज़मीदारों और कृषकों के प्रतिनिधि बैठते थे। इन सभाओं की ओर से प्रान्तीय सभा के लिये सदस्य निर्वाचित किये जाते थे। दोनों प्रकार की सभाओं को स्थानीय शासन के साधारण अधिकार दिये गये। उदाहरण के रूप में, सड़कों का निर्माण, विद्यालयों और चिकित्सालयों की स्थापना, सफ़ाई की व्यवस्था आदि। सरकारी अफ़सर उन पर कड़ी दृष्टि रखते थे। उनकी स्थापना से मनुष्यों को आशा हो गई थी कि सिकन्दर द्वितीय शीघ्र ही समस्त देश की व्यवस्था के लिये एक राष्ट्रीय सभा की स्थापना करेगा। परन्तु यह आशा पूर्ण नहीं हुई।

न्याय विभाग तथा स्थानीय शासन का सुधार

ये समस्त सुन्दर सुधार जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है सिकन्दर द्वितीय के शासनकाल के प्रारम्भिक भाग में किये गये थे। इनके कारण बहुत सी बातों में रूसियों का जीवन पश्चिमी देशों के ढंग का हो गया। किन्तु यह एक दुर्भाग्य की बात है कि उपरोक्त ज़ार के शासनकाल में ही रूस में एक प्रबल क्रांतिकारी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिसके कारण शाही खानदान को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और रूस में लोकतन्त्र की उन्नति हुई। इस अद्भुत स्थिति को समझने के लिये आवश्यक है कि हम इस बात पर ज़ोर दें कि ज़ार सिकन्दर द्वितीय व्यक्तिगत रूप से निरंकुश शासन पसन्द करता था और जो सुधार भी उसने किये थे वे इस हेतु नहीं किये थे कि वह लोकतंत्र का प्रेमी था और न इस हेतु कि समय को देखते हुये वह उनकी आवश्यकता अनुभव करता था वरन् इसलिये कि वह विदेशी घटनाओं से प्रभावित हो रहा था और वह जानता था कि राजनैतिक तथा सामाजिक सुधारों के बिना काम न चलेगा। वह इस बात से भी परिचित था कि यदि शासक अपनी ओर से सुधारों का काम हाथ में नहीं लेगा तो उसे प्रजा के दबाव डालने पर उनके करने को विवश होना पड़ेगा।

क्रांतिकारी आंदोलन का मूल कारण

यह भी सम्भव था कि जनता स्वयं अपनी ओर यह कार्य आरम्भ कर देती। ऐसी दशा में आवश्यक था कि सिकन्दर द्वितीय के सुधार अपूर्ण रहें और अवसर आने पर वह उनको पूर्ण रूप से रोक दे। वास्तव में इसी प्रकार का अनुभव भी हुआ। सन् १८६४ ई० के पश्चात् उसका जोश ठण्डा हो गया और उसने सुधारों के क्रम को बिल्कुल रोक दिया। इसका एक प्रमुख कारण पोलैंड का विद्रोह भी था जिसका उल्लेख इसके पूर्व भी किया जा चुका है। सिकन्दर को यह भी भय था कि यदि अधिक सुधार किये जायेंगे तो आवश्यक रूप से उसे भी अपने निरंकुश अधिकारों में कमी करनी पड़ेगी। यह एक ऐसी बात थी जिसके लिए वह किसी भी दशा में तैयार न था। इसके पश्चात् जब सन् १८६६ ई० में उसके जीवन को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया तो उसके विचारों में दृढ़ता आ गई।

सिकन्दर द्वितीय अपने सुधारों द्वारा समाज के किसी भी अंग को सन्तुष्ट न कर सका। उसने दास-कृषकों को स्वतन्त्रता प्रदान की थी, परन्तु यह स्वतन्त्रता अपूर्ण थी। उसने प्रान्तों में स्वशासन स्थापित करके कुलीनों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया था, किन्तु वे इस से सन्तुष्ट न हुये थे। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि उस भूमि के बदले में, जो उनके हाथ से निकल गई थी, उनको भी राजनैतिक स्वतन्त्रता प्रदान की जाय। दूसरे शब्दों में वे चाहते थे कि जिस प्रकार दास-कृषक ज़मीदारों के करों आदि से मुक्त कर दिये गये थे उसी प्रकार कुलीन वर्ग के मनुष्य भी शासन के प्रति उत्तरदायित्व से स्वतन्त्र कर दिये जायं। सन् १८६५ ई० में मास्को के कुलीनों ने शासन से प्रतिनिधि संस्थाओं के स्थापित किये जाने की इच्छा प्रकट की "जिससे वास्तविक घटनायें बिना किसी रुकावट के आप के पास तक पहुंच सकें।" किन्तु ज़ार ने उनकी इच्छा की पूर्ति न की। सर्वदा की भांति वह उस समय भी संविधानीय शासन के विरुद्ध था। इस प्रकार सभी श्रेणियों के लोग ज़ार के शासन से असन्तुष्ट थे। यह रूस के क्रांतिकारी आन्दोलन का मूल कारण था।

रूस के क्रांतिकारी आन्दोलन ने सबसे प्रथम दार्शनिक वेष धारण किया और शिक्षित युवकों में शासन की निरंकुश गति, चर्च की कट्टरता और सभी प्रकार के निराधार ढकोसलों एवं परम्पराओं के विरोध

निहिलिस्ट आन्दोलन

के रूप में प्रकट हुआ। प्रारम्भ में इस प्रकार का विरोध तथा उत्साह निहिलिज्म (Nihilism) के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जो मनुष्य इस प्रकार का विरोध व उत्साह प्रकट करते थे, वे निहिलिस्ट्स कहलाये। इसके पश्चात् ये नाम रूस के क्रांतिकारी आन्दोलन और

क्रांतिकारियों के लिये प्रयोग किये जाने लगे। सर्वप्रथम रूस के एक उपन्यासकार ने, जिसका नाम टूर्जेनिफ् (Turgenief) था, अपने उपन्यास 'Fathers and Children' में निहिलिस्ट (Nihilist) शब्द का प्रयोग किया था। उसने इस शब्द का प्रयोग अपने उपन्यास के प्रमुख पात्र के लिये इस कारण से किया था कि वह किसी प्रकार की परम्पराओं को स्वीकार करने के लिये तैयार न था। बहुधा लेखक इस विषय में एक मत हैं कि निहिलिस्टों में काफ़ी सच्चाई थी और इस सच्चाई के नाम पर उन्होंने उन निराधार सिद्धान्तों, परम्पराओं विश्वासों तथा रीति रिवाज को स्वीकार करने से साफ़ इन्कार कर दिया जिसको वे बुद्धि के विरुद्ध पाते थे। यदि वे किसी शक्ति का सम्मान करते थे तो वह बुद्धि की शक्ति थी। वाल्टेयर, दिदरो और विश्व-कोश के लेखकों की भांति उसका भी दृढ़ विश्वास था कि इस अद्भुत संसार में यदि हमारा कोई सच्चा मार्ग दर्शक है तो वह हमारी बुद्धि है। इस आन्दोलन से एक बड़ा लाभ यह हुआ कि रूस की स्त्रियों के मार्ग से बहुत सी रुकावटें हटा दी गईं। अतः वे स्वतन्त्रतापूर्वक उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगीं तथा विभिन्न पेशों को ग्रहण करने लगीं।

कुछ वर्षों (१८६०–१८७०) के पश्चात् रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन ने एक अन्य रूप धारण किया और वहाँ के शिक्षित नवयुवक जनता में समाजवादी सिद्धान्तों के प्रचार पर ज़ोर देने लगे। धन सम्पन्न वंशों के बहुत से नवयुवक अपने स्वार्थपूर्ण जीवन से दुखित होकर साधारण जनता को लाभ पहुंचाने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार के कतिपय उत्साहपूर्ण स्वतन्त्र विचार के बालकों तथा बालिकाओं ने अपने घरों को त्याग दिया और वे कृषकों व शिल्पकारों के वेष में मज़दूरों में प्रचार करने लगे और उन्हें अपने जीवन में सुधार करने का उपदेश देने लगे। अर्थशास्त्र और इतिहास के पठन पाठन के लिये क्लब स्थापित किये गये। रूसियों ने संविधानीय तथा लोकतन्त्रीय शासनों और फ्रांस और जर्मनी के गणतन्त्रवादी समाजवाद के विषय में भी जानकारी प्राप्त की।

राष्ट्रीय नेताओं तथा सुधारकों के निर्दोष कृत्य शासन की कठोर दृष्टि से न बच सके। सरकारी अधिकारी उनको सन्देह की दृष्टि से देखते थे। कुछ समय तक शांत रहने के पश्चात् उन्होंने उनकी गिरफ्तारी प्रारम्भ कर दी। बंदीगृह जानों पर खेल जाने वाले वीरों से भर दिये गये। उनमें से सैकड़ों साइबेरिया के ठण्डे जंगलों को निर्वासित कर दिये गये। ऐसा प्रतीत होता था कि ज़ार तथा उसकी पुलिस सभी प्रकार की

आतंकवादी आन्दोलन का आरम्भ १८७७ ई०

प्रगति के विरोध में हैं। कोई भी व्यक्ति जो किसी नये प्रस्ताव पर जोर देता था उसी प्रकार दंड का भागी होता था मानों उसने कोई हत्या की हो। ऐसी दशा में निहिलिस्टों का शान्तिपूर्ण आन्दोलन, जिसका उद्देश्य केवल प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना था, उन्नति न कर सकता था। आवश्यक रूप से उन्होंने हिंसक उपायों से काम लेना प्रारम्भ किया। उनके विचार में यह अत्यन्त आवश्यक था कि सरकारी अफसरों के काले कारनामों पर प्रकाश डाला जाय, शासन को आतंकित किया जाय तथा विशेष प्रकार के हिंसक काम करके उससे बदला लिया जाय, जिससे अन्य देशों के निवासी रूस की आन्तरिक अवस्था से परिचित हो जायं। यह विचार करके उन में से कुछ आतंकवादी हो गये। उनका विश्वास था कि इसके अतिरिक्त स्वदेश को शासन के अत्याचार व अनाचार से सुरक्षित करने का कोई अन्य उपाय नहीं है। हम इस आतंकवादी आन्दोलन का प्रारम्भ सन् १८७७ ई० से मान सकते था।

इस वर्ष जौलाई मास में सेनाध्यक्ष त्रेपोफ़ (Trepoff) ने, जो सेंट पीटर्सबर्ग में पुलिस का सबसे बड़ा अधिकारी था, निरपराध बंदियों पर, जिनमें स्त्रियां भी सम्मिलित थी, अत्याचारपूर्ण ढंग से कोड़े लगवाये। अतएव उनमें से कुछ सदा के लिये अंगहीन हो गये। इस दुर्घटना की जांच के लिये एक पदाधिकारी नियुक्त किया गया, किन्तु त्रेपोफ़ ने उसकी रिपोर्ट को दबा दिया। इसका बदला लेने के उद्देश्य से २८ जनवरी सन् १८७८ ई० को एक नवयुवती ने, जिसका नाम वेरा ज़ास-सुलिच (Vera Zas-Sulitch) था, त्रेपोफ़ पर गोली चलाई, परन्तु वह बच गया। यह अभियोग न्यायालय में पेश किया गया। वेरा ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया, किन्तु जूरी के मत में वह निर्दोष थी। अतएव वह मुक्त कर दी गई। पुलिस ने उसे दुबारा बंदी करने का प्रयत्न किया, किन्तु दर्शकों ने उसे बचा लिया तथा उसे सीमा के बाहर कर दिया। वेरा के मामले से यूरोप में सनसनी फैल गई और वहां के शासक रूस की ओर आकर्षित हुये।

इस घटना के पश्चात् क्रांतिकारियों के आतंकवादी आन्दोलन ने विशेष शक्ति प्राप्त की तथा तमंचा और बम् के द्वारा शासन से बदला लेना उनका कर्तव्य हो गया। ज़ार ने सेनाध्यक्ष त्रेपोफ़ को तो घूसखोरी के अपराध में पदच्युत कर दिया, किन्तु क्रांतिकारियों को निर्मूल करने का काम ज्यों का त्यों चलता रहा। सन् १८७९ ई० में १६ आतंकवादी फांसी के तख्ते पर लटका दिये गये तथा अगणित क्रांतिकारी राजधानी में पृथ्वी तल के नीचे बन्दीगृहों में डाल दिये गये अथवा साइबेरिया को निर्वासित कर दिये गये। आतंकवादियों ने इसके बदले में ज़ार और उसके

आतंकवादी कार्य, (१८७८-१८८१)

अधिकारियों को वध करने की। कोशिश की उन्होंने एक रेलगाड़ी को जिसमें वह यात्रा कर रहा था बारूद से उड़ा देने का प्रयत्न किया। जब उन्हें इसमें सफलता न मिली तो एक क्रांतिकारी ने जो बढ़ई के रूप में था सेंट पीटर्सबर्ग के एक राजप्रासाद को बारूद से उड़ा दिया, किन्तु ज़ार सुरक्षित रहा।

सिकन्दर द्वितीय का वध, १८८१ ई०

अब ज़ार को चेत हुआ। उसकी समझ में यह आ गया था कि उसके अधिकारी क्रांतिकारियों के आन्दोलन को नहीं रोक सकते। उसके एक पदाधिकारी मैलिकोफ़ (Melikoff) ने, जिसे बड़ी सीमा एकशास्ता के अधिकार दे दिये गये थे, उसे यह परामर्श दिया कि वह सामान्य जनता द्वारा निर्वाचित सभा को निमंत्रित करने की स्वीकृति दे दे तथा मुख्य क़ानूनों के सम्बन्ध में उससे परामर्श ले लिया करे। यह एक अत्यन्त सीमित प्रणाली का संविधान था, किन्तु सिकन्दर द्वितीय उसके लिये भी कठिनता से राज़ी हुआ। जिस दिन उसने उसकी स्वीकृति दी उसी दिन तीसरे पहर जब वह अपने राजभवन को लौट रहा था क्रांतिकारियों ने बम द्वारा उसके प्राणों का अन्त कर दिया (मार्च सन् १८८१ ई०)।

आतंकवादी आन्दोलन का अंत

ज़ार सिकन्दर द्वितीय का शव अभी राजभवन ही में पड़ा हुआ था कि आतंकवादियों की ओर से उसके पुत्र और उत्तराधिकारी के नाम एक सावधानी की सूचना प्रकाशित की गई, जिसमें यह कहा गया था कि यदि वह प्रतिनिधि शासन तथा भाषण एवं प्रकाशन की स्वतन्त्रता आदि के विषय में उनकी मांगों को स्वीकार न करेगा तो उसके लिये इसका परिणाम विनाशकारी सिद्ध होगा। किन्तु सिकन्दर तृतीय (१८८१-१८९४) ने इसकी किञ्चित चिन्ता न की। उसने मैलिकोफ़ की योजना को स्थगित कर दिया तथा पुलिस के द्वारा क्रांतिकारियों के साथ बहुत ही बुरा व्यवहार किया। बहुत से उदार विचार रखने वाले रूसी एक ऐसे शासक के वध किये जाने के कारण अप्रसन्न हो गये जिसने निजी निर्बलताओं के अतिरिक्त भी दास-कृषकों को स्वतन्त्र कर दिया था, जिसने शासन में विभिन्न प्रकार के सुधार किये थे और जो राष्ट्रीय सभा को निमंत्रित करने को राज़ी हो गया था। आतंकवादियों की समझ में भी यह बात आ गई थी कि उनके आतंकवादी कृत्यों से कोई विशेष लाभ न होगा। विशेषकर ऐसी दशा में जब सर्वसाधारण क्रांति के लिए तैयार न थे। अतएव उनकी ओर से ध्यान हटाकर वे सर्वसाधारण में शिक्षा का प्रचार करने तथा उन्हें पश्चिमी सिद्धान्तों के सिखलाने

की ओर दत्त चित्त हुये। कुछ क्रांतिकारी विदेशों को चले गये और वहां से पर्चे और पुस्तिकायें प्रकाशित करके गुप्त रूप से रूस में भेजने लगे। अतएव ज़ार सिकन्दर तृतीय के शासनकाल में शान्ति का बोलबाला रहा तथा उसकी प्रजा बिना किसी विरोध के शासन के अत्याचारों को सहन करती रही।

परिशिष्ट

सारांश

(१) यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था (१८१४-१८२५)

नैपोलियन के पतन पर १८५० ई० के कुछ वर्ष बाद तक प्रतिक्रियावाद का बोलबाला। तिस पर भी फ्रांस तथा अन्य देशों में नवयुग के चिह्न दृष्टिगोचर हुये। शासकों ने इस नव प्रवाह का विरोध किया।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप :

मध्यकाल की देन—होली रोमन साम्राज्य सब से प्राचीन उदाहरण।

उन्नीसवीं शताब्दी :

नैपोलियन का सम्मिलित रूप में सामना करने को अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता—

१८१४ (९ मार्च) — *(अ) शोमों की सन्धि :*

आस्ट्रिया, इंग्लैंड, प्रशा तथा रूस का संगठन—उसका उद्देश्य नैपोलियन को नीचा दिखाना—फ्रांस के सिंहासन तथा सीमाओं के विषय में उत्तरदायित्व।

१८१४ (३० मई) — *(ब) पेरिस की प्रथम सन्धि :*

फ्रांस के लिये सन् १७९२ ई० की सीमायें—

१८१४-१५ — *(स) वीयेना की कांग्रेस :*

१८१५ (२० नवम्बर) — *(द) पेरिस की द्वितीय सन्धि :*

सन् १७८९ ई० की सीमायें—युद्ध की क्षतिपूर्ति—विद्या व कला के उपकरण अन्य देशों को लौटा दिये गये—वेलिंग्टन की फ्रांस में नियुक्ति।

१८१५ (२६ सितम्बर) — *(र) होली एलायंस :*

ज़ार सिकन्दर प्रथम की योजना—पोप, तुर्की व ग्रेट ब्रिटेन के अतिरिक्त यूरोप के लगभग सभी शासकों ने सम्मिलित होना स्वीकार किया—उच्च उद्देश्य किन्तु कोई विशेष लाभ न हुआ—उसके द्वारा प्रतिक्रियावादी नीति का अनुकरण।

१८१५ (२० नवम्बर) — *(ल) चतुर्मुखी संमैत्री :*

मैटर्निक की योजना—आस्ट्रिया, प्रशा, रूस तथा इंग्लैंड सम्मिलित।

१८१८ (i) ऐक्सलाशापेल की कांग्रेस :—भिन्न देशों के प्रार्थनापत्र—अस्ट्रिया व प्रशा की अवस्था पर विचार—वैमनस्य के चिह्न।

१८२० (ii) ट्रोप्पाव का सम्मेलन :
१८२१ (iii) लाइबाक का सम्मेलन :
{ मैटर्निक ने सेना भेज कर नेपिल्स के विद्रोह को दबा दिया—ट्रोप्पाव की प्रसिद्ध घोषणा—ग्रेट ब्रिटेन का प्रतिरोध—

१८२२ (iv) वैरोना की कांग्रेस :—स्पेन के बादशाह फर्डिनंड सप्तम के लिये सहायता—ग्रेट ब्रिटेन का विरोध—अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का अन्त।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का पतन :

कारण :

(अ) ग्रेट ब्रिटेन का विरोध
(ब) सदस्यों की स्वार्थपूर्ण नीति।

(२) लोकतन्त्र तथा राष्ट्रीयता की शिथिल धारायें (१८१५–१८३०)

सन् १८३० ई० तक मैटर्निक तथा उसकी प्रतिक्रियावादी नीति का बोलबाला।

फ्रांस में बूरबन वंश का शासन :

१८१४-२४ (अ) *अठारहवें लूई का शासन :*

कई कारणों से निर्हस्तक्षेपी नीति का पालन—संवैधानिक अधिकार-पत्र—उसका महत्व।

अनेक राजनैतिक दल—राजतन्त्र के उग्र एवं नरम दलों के समर्थक—उदार नीति के अनुयायी—बोनापार्ट के दल वाले—गणतन्त्रवादी।

१८२४-३० (ब) *दसवाँ चार्ल्स :*

निरंकुश शासक—प्रतिक्रियावादी नीति का पूर्ण समर्थक—पादरियों तथा अभिजातवर्ग का पक्षपात—जौलाई मास के अध्यादेशों के कारण

१८३० अपकीर्ति—प्रजा में असन्तोष—सन् १८३० की क्रांति—दसवें चार्ल्स का पदच्युत होना—लूई फ़िलिप—जनता के जन्म सिद्ध अधिकारों की स्थापना।

बेल्जियम का स्वाधीन देश :

सन् १८१५ ई० में बेल्जियम का देश हालैंड में मिला दिया गया था—यह व्यवस्था प्रथम के लिये अधिक लाभकारी—फिर भी वहाँ के निवासी असन्तुष्ट—इसके कई कारण थे, जैसे स्टेट्स जनरल में उनका प्रतिनिधित्व पर्याप्त न था, शासक के उच्च पदों पर डच आसीन, डच भाषा राजकीय भाषा—प्रेस के साथ बुरा व्यवहार इत्यादि।

१८३० बेल्जियम की क्रान्ति—स्वाधीनता की घोषणा—यूरोपीय शक्तियों मे

हस्तक्षेप न किया—लन्दन का सम्मेलन—हालैंड तथा बैल्जियम के एकीकरण का अन्त।

१८१५ जर्मनी का संघ :

उसमें कई दोष थे—स्वाधीन राज्यों के स्थान में स्वाधीन शासकों व नगरों का संघ—दो शासक विदेशी—शक्तिशाली सदस्यों के पूरे राज्य सम्मिलित न थे—डाइट में शासकों का बोलबाला—राज्यों को प्रतिज्ञापत्र की स्वतन्त्रता—संविधान का सुधार सब की अनुमति से सम्भव।

१८१७
१८१९
१८३०

जर्मन छात्रों का देशप्रेम—वार्टबूर्ग का सम्मेलन—कौटसैबू की हत्या—मैटर्निक ने कार्ल्सबाद के प्रस्ताव स्वीकृत कराये—उदार नीति के मार्ग में शक्तिशाली अवरोध—इसके अतिरिक्त भी दक्षिणी राज्यों में संवैधानिक शासन—१८३० का लोकतन्त्रवादी आन्दोलन—देशभक्तों की असफलता।

स्पेन और इटैली :

१८१२

स्पेन में नैपोलियन का प्रभाव—राष्ट्रीय संसद द्वारा संविधान की घोषणा—सीमित राजतन्त्र—जागीरदारों के करों व कुलीनों के विशेषाधिकारों की समाप्ति—परन्तु फर्डिनंड ने संविधान को स्थगित कर दिया।

१८१४

इटैली में नैपोलियन का प्रभाव—सार्डिनिया के बादशाह विक्टर ऐमैनुअल के लौटते ही वहाँ नैपोलियन के समय के सुधार स्थगित कर दिये गये—अन्य राज्यों की भी यही दशा थी—लोम्बार्डी तथा वेनीशिया में आस्ट्रिया का राज्य पुनः स्थापित हो गया—धार्मिक न्यायालय फिर से स्थापित हो गया—इन सब के होते हुये भी नैपोलियन का प्रभाव चिरस्थायी रहा।

स्पेन के उपनिवेश और सन् १८२० की क्रांति :

१८१०-२५

उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका में स्पेन के उपनिवेश—उनके साथ बुरा व्यवहार—विद्रोह—उसके दमन का पूर्ण प्रयत्न—परन्तु अधिक सफलता न मिली।

१८२०
१८३०

स्पेन में संविधान की दूसरी [illegible] में विद्रोह—बादशाह ने संविधान को स्वीकार कर [illegible] उसने फिर पुराना ढंग [illegible] का दमन।

१८२०

नेपिल्स में संविधान की घोषणा—किन्तु मैटर्निक की सहायता से उसका दमन कर दिया गया।

१८३०

इटैली में सन् १८३० ई० की क्रान्ति—मध्य राज्यों के आन्दोलन—पोप के राज्य में भी आन्दोलन—मैटर्निक की सहायता से आन्दोलन समाप्त कर दिये गये।

पुर्तगाल :

पुर्तगाल का बादशाह सपरिवार ब्राजील चला गया था—पेरिस की
१८१५ सन्धि के पश्चात् भी वह न लौटा—अंगरेजों का प्रभुत्व—उसके विरुद्ध देश-
भक्तों ने आन्दोलन किया—संविधान की घोषणा—बादशाह का लौटना—
किन्तु अन्त में रूढ़िवादियों को सफलता मिली।

१८२१-२९ यूनान की स्वाधीनता का युद्ध :

यूनान तुर्की साम्राज्य में सम्मिलित—उसके साथ अन्य देशों की
अपेक्षा अच्छा व्यवहार किया जाता था—फिर भी वहाँ असन्तोष था—
राष्ट्रीय जागृति—फ्रांस की राज्यक्रांति तथा नैपोलियन का सुन्दर प्रभाव—
गुप्त समितियाँ—प्रारम्भ में यूनानियों को असफलता मिली—अन्त में विदेशियों
१८२९ की सहायता से विजयी हुये—एड्रियेनोपल की सन्धि—यूनान को पूर्ण
स्वतन्त्रता दे दी गई।

पोलैंड :

१७७२, १७९३, पोलैंड के तीन विभाजन—इनमें रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशा ने भाग
१७९५ लिया—निकोलस का निरंकुश शासन—वारसा में सैनिकों का विद्रोह—
सिंहासन के रिक्त होने की घोषणा—यूरोपीय देशों ने हस्तक्षेप न किया—
१८३१ विद्रोह का दमन—संविधान स्थगित कर दिया गया—पोलैंड पूर्ण रूप से रूसी
साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

(३) औद्योगिक क्रान्ति

औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भ तथा अन्त के विषय में कोई ठीक मत
निश्चित नहीं किया जा सकता। सन् १७५० तथा १८५० के बीच इंग्लैंड में
उसका सब से अधिक जोर था।

कपड़ा बनाने की कला :

१७३८ (अ) 'जान के' ने नाचने वाली ढरकी का आविष्कार किया। (कपड़ा बुनना)
१७६४ (ब) हारग्रीव्ज की 'जेनी' (सूत कातना)
१७६८ (स) आर्कराइट का 'वाटर फ्रेम' (सूत कातना)
१७७९ (द) क्राम्पटन का 'म्यूल' (सूत कातना)
१७८४ (य) डाक्टर कार्टराइट का आश्चर्यजनक करघा (कपड़ा बुनना)

अन्य आविष्कार—कालिकट छापने तथा कपड़ा साफ करने की
मशीनें आदि।

१७७०-८० मशीनों के चलाने के लिए पानी का प्रयोग।

जेम्स वाट और उसका भाप द्वारा संचालित इंजन :

१७ शताब्दी हालैंड निवासी हुईगेंस ने उसका सिद्धान्त मालूम किया।

१७०४	न्यूकोमन नाम के अँगरेज द्वारा एक इंजन का आविष्कार जिससे खानों का जल सरलतापूर्वक बाहर निकाला जा सकता था।
१७६६	जेम्स वाट का इंजन जो 'बीयलजीबब' के नाम से पुकारा गया—इसका भिन्न कामों के लिए प्रयोग।

कोयला और लोहा :

	डार्बि नाम के अंगरेज ने लोहे की भट्टियों में कोक का प्रयोग किया।
१७६०	स्काटलैंड के इंजीनियर ने हवा फेंकने वाला पम्प बनाया।
१७८४	हेनरी कोर्ट ने लोहा साफ़ करने की विधि ज्ञात की।
	मॉडले ने उपयोगी खरादों का आविष्कार किया।
	बोयलरों में सुधार किया गया।

यातायात के साधन तथा समाचार भेजने का नवीन ढंग :

	पक्की सड़कें, नहरें तथा रेल मार्ग आदि बनाये गये।
१८१४	जेम्स स्टीफेंसन का संशोधित इंजन।
१८०३	राबर्ट फुल्टन ने पेरिस में अपनी वाष्पीय नौका का प्रदर्शन किया—तत्पश्चात् इस प्रकार की अन्य नौकायें बनाई गईं।
	समाचार भेजने तथा प्रकाश के साधनों में सुधार किया गया।

नये कारखाने और उनकी व्यवस्था :

कारखानों की नवीन व्यवस्था की कई विशेषतायें हैं जैसे एक ही कारखाने में अगणित श्रमजीवियों का काम करना, मशीनों का प्रयोग, कार्य का विभाजन, कारखानों के मालिकों तथा मजदूरों में द्वन्द आदि। उसकी एक विशेषता यह भी है कि उसके कारण पूँजीवाद का विकास हुआ तथा शहरों में शासन को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

कारखानों की नवीन व्यवस्था के कारण समाज की दो पृथक श्रेणियां हो गईं;—(१) मध्यम वर्ग के लोग जो धन सम्पन्न थे, (२) निर्धन मजदूर—जब इन में झगड़ा बढ़ा तो शासन को उनके विषय में क़ानून बनाने पड़े। उस से बड़ा लाभ यह हुआ कि उसके कारण हम सुख तथा विलास का जीवन व्यतीत करते हैं।

कृषि :

कृषि में कई प्रकार से सुधार हुआ जैसे मशीनों का प्रयोग, नई फ़सलों का प्रचलन, उत्तम खादों का प्रयोग, पशुओं की दशा में सुधार आदि। बहुत सी भूमि जो सामान्य जनता के लिये छोड़ दी गई थी, कृषि के काम में लाई गई। खेतों के चारों ओर बाड़े भी बनाये गये।

(४) सन् १८४८ ई० की फ्रांसीसी क्रान्ति

सन् १८३० ई० की भांति सन् १८४८ ई० भी क्रान्तियों का वर्ष था।

१८३०-४८ लुई फिलिप :

मध्यवर्ग का बादशाह—मध्यवर्ती मार्ग पर चलना चाहता था—अपनी प्रतिष्ठा का विशेष ध्यान न था—फूंक फूंक कर क़दम रखता था। उसकी नीति से गणतन्त्रवादी तथा प्राचीन बूरबन वंश के समर्थक असन्तुष्ट—गुप्त समितियां तथा सभायें।

तेयर और गीज़ो :

तेयर उदारवादी दल का नेता—भिन्न पदों पर काम करके अनुभव प्राप्त किया—लूई फ़िलिप का शक्तिशाली सहायक—सीमित राजतन्त्र का समर्थक—प्रगतिशील वाह्यनीति—गीज़ो रूढ़िवादी दल का समर्थक—बादशाह को शक्तिशाली देखना चाहता था—संविधान में परिवर्तन के विरुद्ध—यूरोपीय शक्तियों से मित्रता स्थिर रखना चाहता था।

विदेशी नीति :

लूई फ़िलिप गृहनीति व वाह्यनीति की कुञ्जी अपने हाथ में रखना चाहता था—प्रगतिशील वाह्यनीति के विरुद्ध—युद्ध से दूर रहना चाहता था—बेल्जियम व पोलैंड में हस्तक्षेप न किया—इटैली और जर्मनी के मामलों में भी हस्तक्षेप न किया—मुहम्मदअली की सहाकता भी न की—राष्ट्र असंतुष्ट—यह सन् १८४८ ई० की क्रान्ति का एक बड़ा कारण प्रमाणित हुआ।

गृहनीति :

मध्यवर्ती नीति का अनुकरण—विरोधियों का दृढ़तापूर्वक दमन—उदाहरण गणतन्त्रवादी—व्यक्तिगत सम्पत्ति के विरुद्ध कुछ न किया गया—मजदूरों की दशा में भी सुधार न हुआ—मध्यवर्ग के पूंजीपति इस प्रकार के सुधारों के विरुद्ध।

सन् १८४८ ई० की क्रान्ति :

लूई फ़िलिप हटा दिया गया—उसका स्थान लूई नैपोलियन ने लिया।

कारण :

(अ) एक ही वर्ग अर्थात् मध्यवर्ग पर अत्यधिक विश्वास—जिसको न शासन पर प्रभुत्व रखने का अधिकार था और न इसकी योग्यता—उसका ध्येय धन का संचय।

(ब) शासन ने राजनैतिक अथवा सामाजिक सुधारों का कोई कार्य-क्रम न बनाया था—यह कार्य गणतन्त्रवादियों के लिये छोड़ दिया गया था।

(स) शक्तिशाली वाह्यनीति का अभाव।

(द) लूई फ़िलिप की वास्तविक रूप में शासक बनने की प्रबल इच्छा।

(५) फ्रांस का द्वितीय साम्राज्य (१८५२-१८७०)

सन् १७८९ ई० की राज्यक्रान्ति की भांति सन् १८४८ ई० की राज्य-क्रान्ति के बाद भी एकतन्त्र शासन की स्थापना हुई—लुई नैपोलियन को अपने उत्कर्ष में 'नैपोलियन' शब्द के आकर्षण से बड़ी सहायता मिली।

संविधान :

(अ) *सम्राट महाशक्तिशाली :*

सेना, स्थानीय शासनों, न्यायालयों आदि पर उसका प्रभुत्व—विधान बनाने का अधिकार—मन्त्री आज्ञाकारी सेवक—नगर समितियों पर प्रभाव—

(ब) *विधान-मण्डल :*

तीन सभायें—विधान-सभा, कौंसिल तथा सिनेट—तीनों पर सम्राट का प्रभुत्व—विधान-सभा का सार्वजनिक मतदान से चुनाव—अवधि ६ वर्ष—शक्तिहीन—विधान को पेश न कर सकती थी।

कौंसिल ऑव स्टेट—सम्राट की ओर से नियुक्ति—विधान पेश करने का अधिकर।

सिनेट—उच्च अधिकारी सदस्य—उसका कार्य संविधान की रक्षा तथा व्याख्या करना—

(स) *मन्त्री :*

सम्राट की ओर से नियुक्ति—उसके प्रति उत्तरदायित्व।

(द) *प्रेस पर प्रतिबन्ध :*

सभायें करने की भी स्वतन्त्रता न थी।

गृहनीति :

१८५२-६० नैपोलियन तृतीय निरंकुश सम्राट—शक्ति तथा प्रतिष्ठा का आधार सेना—आरम्भ में शासन अत्यन्त कठोर—गुप्त पुलिस, प्रेस पर प्रतिबन्ध, शासन के भिन्न भागों पर सम्राट का पूर्ण प्रभुत्व—जनसाधारण का सार्वजनिक मताधिकार अक्षुण्ण रहा—शानदार दरबार—सब से शिष्टाचार व प्रेम पूर्वक मिलना।

१८६० शासन पद्धति में प्रशंसनीय परिवर्तन—धीरे धीरे उदारवाद का समर्थन—सिनेट और विधान-सभा को वर्ष में एक बार शासन नीति की आलोचना करने की आज्ञा।

१८६१ विधान-सभा को बजट की मदों पर वादविवाद का अधिकार—
१८६७ उसके सदस्यों को मन्त्रियों से प्रश्न करने का अधिकार—प्रेस के प्रतिबन्ध ढीले कर दिये गये—जनता को सभा करने की स्वतन्त्रता।

आर्थिक और सामाजिक नीति :

प्रारम्भ ही से उदार नीति का समर्थन—सम्राट ने व्यक्तिगत उद्योगों पर प्रभुत्व कम किया—मशीनों का प्रयोग—औद्योगिक मण्डल—प्रवेश्यकर हल्के—ग्रेट ब्रिटेन से संधि—जनता को ऋण देने की सुविधायें—बैंक ऑव फ्रांस की शाखायें—शासन के जन-हितकारी कार्य जैसे पक्की सड़कों, नहरों व रेल-मार्गों का निर्माण—पेरिस को सुन्दर बनाने का प्रयत्न—इन सुधारों से मध्यवर्ग को अधिक लाभ— १८६०

श्रमजीवियों तथा कृषकों को भी प्रोत्साहन दिया गया—उनके लाभ के लिये विशेष क़ानून।

विदेशी नीति :

शक्तिशाली न थी—उस पर ठीक तरह से विचार न किया गया था—देश-विजय के युद्धों से यूरोप के अन्य देश विरोधी हो सकते थे—परन्तु फ्रांसीसी राष्ट्र को इसी से संतोष हो सकता था—

(अ) ग्रेट ब्रिटेन :

ग्रेट ब्रिटेन को सन्तुष्ट किया पर ज़ार को अपनी ओर न कर सका।

१८५४-५६ *(ब) क्रीमिया का युद्ध :*

फ्रांस विजयी हुआ—नैपोलियन की कीर्ति में वृद्धि।

(स) इटैली :

१८५९ ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध किया किन्तु समय के पूर्व ही सन्धि करके अपकीर्ति कमाई।

(द) पोलैंड :

१८६३ नैपोलियन तृतीय पोलैंड निवासियों की आर्थिक सहायता न कर सका—फ्रांस के उदारवादी एवं पादरियों ने उसकी तीव्र आलोचना की।

(य) मैक्सिको :

१८६१-६६ नैपोलियन गण-राज्य के स्थान में राजतन्त्र स्थापित करना चाहता था—युद्ध—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का प्रतिरोध—नैपोलियन ने सेनायें लौटा लीं—मैक्सिमिलियन गोली से उड़ा दिया गया—अधिक अपकीर्ति।

१८७०-७१ *(र) प्रशा से युद्ध :*

पराजय व पतन—

१८७० द्वितीय साम्राज्य का अन्त।

(६) मध्य यूरोप में १८४८ ई० की क्रान्तियां

१८४८ — आस्ट्रिया, हंग्री, बोहीमिया, जर्मनी तथा इटेली आदि में क्रान्तियां हुईं—सन् १८४८ ई० के पूर्वार्द्ध में उन्नति—उसके उत्तरार्द्ध में उनका दमन।

आस्ट्रिया :

हैप्सबर्ग वंश का शासन—स्वार्थपूर्ण नीति—अगणित जातियां—दो समस्यायें—(अ) जर्मनी में प्रभाव को स्थापित रखना—(ब) भिन्न जातियों पर नियन्त्रण रखना—मैटर्निक तथा उसकी नीति—प्रतिक्रियावादी, रूढ़िवादी तथा कठोर—पुलिस, सेना व गुप्तचर उसकी शक्ति के आधार—शिक्षित वर्ग, विश्वविद्यालयों तथा कृषकों में असन्तोष।

१८४८ (मार्च) — वीयेना का विद्रोह—शिक्षकों व छात्रों के हाथ में पथ-प्रदर्शन—मैटर्निक को पदच्युत करने की मांग—वह इंग्लैंड भाग गया—उसकी शासन व्यवस्था का पतन—

संविधान-निर्माण करने को समस्त साम्राज्य के प्रतिनिधि डाइट का बुलाया जाना—

(अप्रैल) — डाइट के आने के पूर्व ही संविधान की घोषणा—

(अ) हंग्री, क्रोशिया तथा ट्रांसलवेनिया को छोड़ कर समस्त साम्राज्य के लिये—

(ब) दो सभाओं का विधान-मण्डल—

(स) सीमित मतदान का अधिकार—

(मई) — वीयेना का दूसरा विद्रोह-मतदान के प्रति असन्तोष के कारण सम्राट का इन्सब्रूक को प्रस्थान—

(जौलाई) — आस्ट्रियन डाइट अथवा संविधान सभा की बैठक—विशेष सफलता न मिली—किन्तु साम्राज्य में दास-कृषकों की प्रथा बन्द कर दी गई—

(अक्टूबर) — वीयेना का तीसरा विद्रोह हंग्री को सेना भेजने के कारण—युद्धमन्त्री लाटूर का वध—सम्राट ओल्मूट्ज चला गया।

बोहीमिया :

चैक जाति के राष्ट्रीय उद्गार—चैक भाषा की उन्नति—चैकों को संविधान की प्राप्ति—जर्मनों तथा चैकों का पारस्परिक द्वेष—प्रथम चाहते थे कि बोहीमिया फ्रैंकफोर्ट की सभा को प्रतिनिधि भेजे तथा जर्मनी में सम्मिलित हो जाय—चैक इसके विरोधी थे—वे चाहते थे कि वह स्वतन्त्र रहे—स्लैव जाति

१८४८ (जून) — का महा सम्मेलन—

प्रेग नगर में चैक व जर्मनों में झगड़े—विंडिशग्रेट्ज द्वारा बम वर्षा—शान्ति की स्थापना—क्रान्ति का अन्त।

हंग्री :

हंग्री अस्ट्रियन साम्राज्य का भाग—सभ्यता में पिछड़ा हुआ—कृषक (दास) कर देते थे—कुलीन इन से वंचित—संसद में प्रथम का प्रतिनिधित्व न था—

संविधानीय समस्या राष्ट्रीय समस्या से उलझी हुई—प्रथम का उद्देश्य प्रत्येक मनुष्य को राजनैतिक अधिकार दिलाना—द्वितीय का उद्देश्य भिन्न जातियों को राजनैतिक अधिकार दिलाना—

मौदियोर्ज (Magyars) सब से शक्तिशाली जाति—उनकी स्वार्थपूर्ण नीति—कौशूत उनका सबसे योग्य नेता—

१८२५ तेरह वर्ष बाद डाइट अथवा संसद का अधिवेशन—मौदियोर भाषा

१८४० को सरकारी भाषा बनाये जाने की मांग—उक्त मांग पूरी की गई।

१८४४ मौदियोर भाषा नित्य प्रति के काम की भाषा—

१८४८ मार्च के कानून—इनके द्वारा आश्चर्यजनक राजनैतिक तथा सामाजिक सुधार—अस्ट्रिया के शासन ने इनको स्वीकार कर लिया—

मौदियोर जाति की स्वार्थपूर्ण नीति—अन्य जातियों को राजनैतिक अधिकारों से वंचित रखने तथा मौदियोर भाषा व संस्कृति का बलपूर्वक प्रचार करने का प्रयत्न—असन्तोष।

गृहयुद्ध :

दक्षिण में क्रोट जाति का विद्रोह—उसका नेता ऐलाचिच—पूर्व की दिशा में सर्ब जाति का विद्रोह—उत्तर में विद्रोह—मौदियोर शासन की कठिनाई—

१८४९ क्रान्ति का अन्त :

अस्ट्रिया के प्रसिद्ध सेनापति विंडिशग्रेट्स का हंग्री की राजधानी बूडापेस्ट पर अधिकार करना—मौदियोर्ज की पराजय—तत्पश्चात् उनकी आश्चर्यजनक विजय अस्ट्रिया और रूस की सेनायें बाहर निकाल दी गईं—सर्ब जाति को भी पराजय—कौशूत की अनुपयुक्त नीति—मौदियोर्ज की पूर्ण पराजय—क्रान्ति का अन्त।

जर्मनी :

१८४८ प्रशा, बवेरिया, सैक्सनी, हनोवर, बादन तथा श्लासविग-होल्स्टीन में आन्दोलन—कई राज्यों में सुधारों की स्वीकृति—प्रशा के बादशाह फ्रैडरिक विलियम चतुर्थ का सहयोग—

१८४८-४९ फ्रैंकफोर्ट की संसद—जर्मन संघ के समस्त देश सम्मिलित—उलझी हुई समस्यायें—एक वर्ष के पश्चात् संविधान तैयार हुआ—इस समय तक अन्य देशों में प्रतिक्रियावादियों की विजय—फ्रैडरिक ने समस्त जर्मनी का बादशाह होने से इन्कार कर दिया—क्रान्ति का अन्त।

फ्रेडरिक विलियम की नई योजना—ऑस्ट्रिया के विरोध के कारण असफलता—ऑल्मूट्स की सभा में फ्रेडरिक का अपमानित होना—सन् १८१५ के संविधान का पुनः चालू होना—प्राचीन डाइट की वापसी।

इटैली :

इटैली निवासियों की जागृति—बालबो, जोबर्ट तथा मात्सीनी आदि विद्वान्—

पोप के सुधार :

पोप पायस नवम् सद्भावनापूर्ण व्यक्ति—उसके लाभदायक सुधार—निर्वासित मनुष्यों तथा राजनैतिक बन्दियों को क्षमा प्रदान की—प्रेस के प्रतिबन्ध ढीले कर दिये गये—राज्य-परिषद् तथा मन्त्रि-परिषद्—यहूदियों की स्वतन्त्रता—

१८४८ संविधान की स्वीकृति—रोस्सी की हत्या—पोप पर इसका प्रभाव—नेपिल्स को चला गया।

नेपिल्ज़ की क्रान्ति :

फर्डिनेंड बूरबन वंश का बादशाह—संविधान तथा अन्य सुधार—पालरमो का क्रांतिकारी आन्दोलन—संविधान की स्वीकृति—

टस्कनी में संविधान की स्वीकृति।

सार्डिनिया :

चार्ल्स एल्बर्ट बादशाह—संविधान की स्वीकृति—सीमित राजतंत्र की स्थापना।

अन्य राज्य :

मीलन का आन्दोलन—उस पर देशभक्तों का अधिकार—पारमा व मोडेना के आन्दोलन—वेनिस का आन्दोलन।

ऑस्ट्रिया से युद्ध :

चार्ल्स एल्बर्ट का मीलन तथा पैस्कीरा के गढ़ पर अधिकार—ऑस्ट्रिया का प्रसिद्ध सेनापति राडेट्स्की—चार्ल्स एल्बर्ट की पराजय—

१८४९ (मार्च) गारीबाल्डी—नोवारा के युद्ध में चार्ल्स की पूर्ण पराजय—क्रांति का अन्त—

१८४९ (जून) नैपोलियन तृतीय की सहायता से रोम के गण-राज्य की समाप्ति—पोप का लौटना।

(७) पूर्वीय समस्या तथा क्रीमिया का युद्ध

(अ) निकटवर्ती पूर्वी समस्या :

पूर्वीय समस्या सदा विकट—निकटवर्ती, मध्य-पूर्वीय तथा दूर-पूर्वीय समस्यायें—

तुर्की साम्राज्य :

आठवीं शताब्दी में इस्लामी साम्राज्य की स्थापना—ग्यारहवीं शताब्दी में सेल्जूक तुर्कों का उत्कर्ष—चौदहवीं शताब्दी में उस्मानी तुर्कों का

१४५३ उत्कर्ष—कुस्तुन्तुनिया की विजय—वीयेना का घेरा (१६८३)—पराजय—रूस

१७७४ की सहायता से हंग्री से निर्वासित (१६९९)—कुजुक कैनार्डजा की सन्धि—रूस को सुलतान की ईसाई प्रजा के संरक्षण का अधिकार मिला।

१७९२ यास्सी की सन्धि—रूस का अधिकार क्रीमिया प्रायद्वीप पर—

यूरोपीय समस्या :

रूस की शक्ति में वृद्धि किये बिना तुर्की साम्राज्य की ईसाई जातियों की रक्षा किस प्रकार हो ?

सर्ब जाति का आन्दोलन :

१८०४ 'काले जार्ज' के नेतृत्व में विद्रोह—

१८१५ मिलोश के नेतृत्व में जोरदार आन्दोलन—

१८२० संविधान की प्राप्ति—मिलोश अध्यक्ष।

यूनानियों का स्वाधीनता युद्ध :

१८२१ युद्ध का प्रारम्भ—कारण तुर्कों का कठा व्यवहार—असहनीय कर-धर्म की स्वतन्त्रता—यूनानियों के राष्ट्रीय उद्‌गार—ग्रेट ब्रिटेन तथा आस्ट्रिया के विरोध के कारण जार विवश था—अन्यथा हस्तक्षेप अवश्य करता।

१८२७ नवारीनो का युद्ध —सुलतान के बेड़े की बरबादी—

१८२९ एड्रियेनोपल की सन्धि—यूनान को पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति।

सिरिया की समस्या :

१८३१ मुहम्मदअली मिस्र का पाशा—फिलस्तीन पर आक्रमण—उसकी आश्चर्यकारी विजय—

१८३३ उंकियार स्केलेस्सी की संधि—दानियाल का दर्रा सब राष्ट्रों के लिये

१८४० बन्द कर दिया गया—इंग्लैंड और फ्रांस का प्रतिरोध—लन्दन का प्रतिज्ञा-पत्र—ग्रेट ब्रिटेन, रूस, प्रशा तथा आस्ट्रिया सम्मिलित हुये—उद्देश्य मुहम्मदअली को विशेष शर्तों के स्वीकार करने को मजबूर करना—

पामर्स्टन ने उपरोक्त शर्तों को मुहम्मदअली व फ्रांस दोनों से स्वीकार करा लिया—अँगरेजों के सम्मान में वृद्धि—सुलतान अब केवल रूस पर भरोसा न कर सकता था।

१८५३-५६ (ब) क्रीमिया का युद्ध :

ग्रेट ब्रिटेन }
फ्रांस } रूस के विरुद्ध
तुर्की }

कारण :

(१) बालकन प्रायद्वीप की दशा शोकजनक—सुल्तान कमज़ोर—ईसाई जातियों में जागृति—अधिकतर निवासी यूनानी चर्च के अनुयायी—शासकों का धर्म इस्लाम—
(२) यूनानी चर्च के संरक्षण का प्रश्न—ग्रेट ब्रिटेन ने फ्रांस का पक्ष लिया—
(३) ज़ार निकोलस की महत्वाकांक्षायें—
(४) फ्रांस व ग्रेट ब्रिटेन के शासन ज़ार की ओर से संदिग्ध।

घटनायें :

१८५४ (१) रूस की सेना ने सिलिस्त्रिया का घेरा डाला—
१८५४ (२) सिनोप का युद्ध—तुर्किश बेड़े की बरबादी—
१८५४ (३) अँगरेज़ों व फ्रांसीसियों ने सेवेस्टोपोल का घेरा डाला—
१८५५ बालाक्लावा और इंकरमान के युद्ध—शीतकाल में मित्र राष्ट्रों के सैनिकों के कष्ट—
१८५५ सेवस्टोपोल पर मित्र राष्ट्रों का अधिकार।

१८५६ *पेरिस की सन्धि :*

(१) काले सागर द्वारा व्यापार की स्वतन्त्रता किन्तु युद्ध के जहाजों के लिये मनाही—
(२) काले सागर के तट पर अस्त्रागार बनाने की मनाही—
(३) डैन्यूब द्वारा व्यापार की स्वतन्त्रता—
(४) रूस से यूनानी चर्च की संरक्षता का अधिकार ले लिया गया—
(५) मोल्डेविया, वोलेकिया तथा सर्बिया की स्वतन्त्रता का उत्तर-दायित्व राष्ट्रों ने लिया—
(६) तुर्की यरोप के राष्ट्रमंडल में सम्मिलित कर लिया गया—सुल्तान ने ईसाइयों के साथ उत्तम व्यवहार करने का वादा किया—
(७) सब राष्ट्रों ने वादा किया कि वे तुर्की के मामलों में हस्तक्षेप न करेंगे।

समालोचना :

(अ) तुर्की साम्राज्य की ईसाई जातियां यूरोपीय राष्ट्रों से सहायता पाने की आशा न कर सकती थीं—
(ब) रूस की शक्ति वास्तव में कम न हुई थी—
(स) तुर्की का पतन तथा अन्य राष्ट्रों का हस्तक्षेप अवश्यम्भावी हो गये।

(८) इटैली का एकीकरण (१८१५–१८७०)

इटैली केवल एक भौगोलिक चिह्न—कई शताब्दियों तक अन्य शक्तियों के अधीन।

समस्या :

(अ) एकीकरण की प्राप्ति—
(ब) संविधानीय शासनों का स्थापना।

एकीकरण के मार्ग में कठिनाइयाँ :

(१) विदेशियों का शासन—
(२) पोप का विरोध—सैनिक शक्ति नाम मात्र को—आध्यात्मिक प्रभाव अत्यधिक—
(३) निवासियों में राष्ट्रीयता का अभाव—
(४) समस्त शासकों का विरोध—
(५) आस्ट्रिया का शक्तिशाली विरोध।

राजनैतिक दल :

(अ) गणतन्त्रवादी—पथ-प्रदर्शक मात्सीनी—
(ब) संधानीय शासन के समर्थक—पथप्रदर्शक ज्योबर्टी—
(स) राजतन्त्र के समर्थक—पथप्रदर्शक कैवूर।

सफलता प्राप्ति की तीन श्रेणियाँ :

(अ) कैवूर ने इटैलियन समस्या को जन्म दिया—अन्य देशों के समाचार-पत्रों में लेख—
(ब) यूरोपीय राष्ट्रों को इटैली के मामलों में अभिरुचि रखना सिखलाया—क्रीमिया के युद्ध में सम्मिलित होना—

१८५९ (स) फ्रांस की सहायता से आस्ट्रिया के राज्य पर आक्रमण।

युद्ध की प्रसिद्ध घटनायें :

१८५८ (जून-जौलाई) प्लोंबियर का प्रतिज्ञापत्र—फ्रांस के सम्राट नैपोलियन तृतीय ने
१८५९ सैनिक सहायता देने का वचन दिया—युद्ध की घोषणा—माजेंटा तथा सोलफेरीनो के युद्ध—वीलाफ्रांका की सन्धि—फ्रांस का युद्ध से अलग हो जाना—सेवाय और नीस पर उसका अधिकार।

भिन्न राज्यों का सहमेलन :

१८५९ युद्ध के कारण लोम्बार्डी का मैदान सार्डिनिया के राज्य में सम्मिलित कर लिया गया—

१८६० टस्कनी पारमा तथा मोडिना का सहमेलन—; रोमाग्ना का सहमेलन— } आस्ट्रिया के पराजित हो जाने के कारण इनका कोई सहायक न रहा था।

१८६१ दोनों सिसलियों तथा पोप के राज्य का सहमेलन—इसका श्रेय गारीबाल्ड को प्राप्त हुआ—

१८६१ (मार्च) विक्टर ऐमैनुअल समस्त इटेली का बादशाह घोषित किया गया—

१८६६ वेनीशिया का सहमेलन आस्ट्रिया के विरुद्ध प्रशा की सहायता करने के उपलक्ष में—

१८७० रोम का सहमेलन—फ्रांसीसी सैनिक वापस बुला लिये गये थे और प्रशा व फ्रांस के युद्ध में द्वितीय पराजित हुआ था।

(९) जर्मन साम्राज्य का अभ्युदय (१८१५—१८७०)

अठारहवीं व उन्नीसवीं शताब्दि की सब से बड़ी विशेषता—राष्ट्रीयता का उत्कर्ष—

अठारहवीं शताब्दी का अन्त **जर्मन साम्राज्य की अवस्था :**

अगणित राज्य—आस्ट्रिया तथा प्रशा प्रधान राज्य—डाइट शासकों तथा स्वतन्त्र नगरों की सभा—सदस्य अपने शासकों के हित को ध्यान में रखते थे—आपत्ति के समय किसी प्रकार का संगठन।

एकीकरण के मार्ग में कठिनाइयाँ :

(१) नैपोलियन के युद्धों के कारण जर्मनी थका हुआ था।
(२) एकीकरण के विषय में एक मत का अभाव।
(३) कार्ल्सबाद के प्रस्ताव।
(४) जर्मनी की असन्तोषजनक अवस्था।

सन् १८३० व १८४८ ई० के आन्दोलन :

१८५० ये आन्दोलन सफल न हुये थे—ओल्मूट्स में प्रशा के बादशाह फ्रैडरिक विलियम चतुर्थ को अपमानित होना पड़ा।

विलियम प्रथम :

१८५७ फ्रैडरिक विलियम चतुर्थ का संरक्षक—

१८६१ बादशाह—

संघर्ष नीति का समर्थक—स्वेच्छाचारी विचार तथा प्रतिक्रियावादी नीति—दृढ़ संकल्प तथा विचारशील—सैनिकों के अनेक गुणों से सम्पन्न—प्रशा की युद्ध-शक्ति में वृद्धि—३९ नवीन सैनिक दल—विधान-मण्डल का

१८६२ विरोध—बिज़्मार्क मुख्य मन्त्री।

बिज़्मार्क :

अत्यन्त शक्तिशाली तथा प्रभावशाली—रूढ़िवादी-ईसाई मत का कट्टर अनुयायी—लोकतन्त्र तथा संविधान का विरोधी—सेना सुधार के विषय में विलियम से एकमत।

१८४७-५१ **राजनैतिक जीवन का प्रथम भाग :**

प्रशा के डाइट का सदस्य—लोकतन्त्रवादियों का विरोध तथा रूढ़ि-

वादियों का समर्थन किया—संविधान तथा क्रान्ति का विरोधी—इसके भी विरुद्ध कि प्रशा का बादशाह कोई प्रतिबन्ध स्वीकार करे अथवा प्रशा की परम्परायें अन्य राज्यों के प्रभाव से विलीन हो जायं।

१८५१-६२ *राजनैतिक जीवन का दूसरा भाग :*

प्रशा की ओर से फ्रैंकफ़ोर्ट के डाइट का सदस्य—तत्पश्चात् पीटर्सबर्ग, पेरिस व वीयेना में प्रतिनिधि—उपयोगी अनुभव।

शासन पद्धति के सिद्धान्त :

(१) प्रशा की प्रतिष्ठा तथा परम्पराओं को अक्षुण्ण रखना—
(२) राजतन्त्र का पक्षपाती—प्रजा-राज्य का विरोधी—
(३) राजनैतिक आन्दोलन तथा क्रान्तियों का कट्टर विरोधी—
(४) तलवार पर भरोसा—वादविवाद व्यर्थ—
(५) जर्मन एकीकरण का पक्षपाती—युद्ध अनिवार्य—
(६) आस्ट्रिया का विरोधी—रूस का पक्षपाती।

(१) विधान-मण्डल के साथ व्यवहार :

युद्ध सम्बन्धी योजनायें—विधान-मण्डल का विरोध—बजट की स्वीकृति के बिना शासन—साडोवा के युद्ध के पश्चात् दोनों में मेल। १८६२-६६

(२) आस्ट्रिया से सम्बन्ध :

बिज़्मार्क की नीति का मुख्य उद्देश्य जर्मन संघ से आस्ट्रिया को हटा कर उसके नेतृत्व को प्रशा के अधीन करना—

१८६३ *(अ) पोलों का विद्रोह :*

बिज़्मार्क पूर्वी सीमा पर सेना नियत करता है—प्रशा तथा रूस की मित्रता—नैपोलियन तृतीय की ओर से निश्चिन्तता—

१८६४ *(ब) डेन्मार्क से युद्ध :*

श्लाजविग-होल्स्टीन की समस्या—लन्दन की सन्धि—डेन्मार्क द्वारा उसका उल्लंघन—आस्ट्रिया और प्रशा उसे पराजित करते हैं—वीयेना की सन्धि—दोनों डचियों पर आस्ट्रिया व प्रशा का प्रभुत्व— १८५२

१८६६ *(स) आस्ट्रिया से युद्ध :*

श्लाजविग-होल्स्टीन के विषय में वैमनस्य—सात सप्ताहों का युद्ध—साडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया की पराजय—जर्मनी के छोटे राज्यों की पराजय—

१८६६ *प्रेग की सन्धि :*

(अ) बिज़्मार्क ने डचियों के अतिरिक्त कई अन्य राज्यों को प्रशा में सम्मिलित कर लिया—

(ब) सन् १८१५ ई० के संघ के स्थान में प्रशा के संरक्षण में उत्तरी राज्यों का नया संघ—

(स) दक्षिणी राज्यों ने प्रशा से अलग सन्धि करली—उन पर द्वितीय का प्रभाव—

सप्तवर्षीय युद्ध अल्पकालीन था, किन्तु उसका महत्व अधिक है—

(१) जर्मनी में आस्ट्रिया के प्रभुत्व का अन्त।
(२) उसके स्थान में प्रशा के प्रभुत्व की स्थापना।
(३) वेनीशिया पर इटैली के शासन का अधिकार।
(४) उत्तरी जर्मन संघ की स्थापना।
(५) दक्षिणी राज्यों पर प्रशा का प्रभाव।
(६) बिज़मार्क की ख्याति और गौरव में वृद्धि—प्राचीन संविधान की पुनः स्थापना।
(७) आस्ट्रिया के साम्राज्य में राष्ट्रीय आन्दोलन।

१८७०-७१ (३) फ्रांस से सम्बन्ध :

प्रशा व फ्रांस का युद्ध :

प्राचीन शत्रुता—बिज़मार्क और उसका देश नैपोलियन के लिये कंटक—नैपोलियन युद्ध का अभिलाषी—स्पेन के सिंहासन का मामला युद्ध प्रारम्भ करने का बहाना—एम्स का तार—

१८७०
(१३ जौलाई)

जर्मन सेनायें ४ लाख ५० हज़ार—तीन ओर से फ्रांस पर आक्रमण —सदाँ (Sedan) का प्रसिद्ध युद्ध—नैपोलियन की पराजय—इंग्लैंड को प्रस्थान—फ्रांस का तीसरा गण-राज्य—पेरिस का घेरा—वहाँ प्रशा के बादशाह का जर्मन सम्राट की स्थिति में राज्याभिषेक (१८७१)।

(सितम्बर)
(१८ जनवरी)

१८७१ (मई) *फ्रैंकफोर्ट की सन्धि :*

जर्मनी का अधिकार आल्जास और लॉरेन पर—उपयोगी खानों पर अधिकार—२० करोड़ पौंड के बराबर युद्ध की क्षति-पूर्ति—

युद्ध के परिणाम :

(१) [illegible] अत्यधिक वृद्धि—
(२) [illegible]—
(३) [illegible] आ—
(४) रोम पर इटैलियन शासन का अधिकार—इटैलियन एकीकरण का काम पूरा हुआ—
(५) ज़ार ने काले सागर में प्रभाव बढ़ा लिया—
(६) फ्रांस में तृतीय गण-राज्य की स्थापना—
(७) नैपोलियन तृतीय तथा उसके सिद्धान्तों का पतन।

(१०) ग्रेट ब्रिटेन में लोकतन्त्र का चमत्कार—राजनैतिक सुधार

ग्रेट ब्रिटेन में निरंकुश शासन का अन्त शीघ्र हुआ किन्तु जनता दीर्घकाल तक वास्तविक रूप में शासन में भाग लेने से वंचित रही।

(१८३२ के पूर्व) पार्लामेंट की अनुदार रचनाशैली :

(१) मतदान का अधिकार जनसंख्या के अनुसार न था।

(२) मतदान के लिये योग्यता अधिक रक्खी गई थी।

(३) अधिकतर वोट अमीरों व लार्ड्स आदि के दबाव से दिये जाते थे।

(४) मतदान के सम्बन्ध में रिश्वत का बाजार गरम रहता था—मतों का क्रय-विक्रय भी होता था।

सुधार का प्रारम्भिक प्रयत्न :

ऑलिवर कामवेल, बड़े और छोटे पिट के प्रयत्न—१८१५ के पश्चात् इसे विशेष महत्व दिया गया—मध्यम श्रेणी की ओर से विशेष मांग—कौब्डन

१८१९ राबर्ट ओवन, 'हैम्पडन क्लब' आदि के प्रयत्न—पीटरलू का हत्याकांड—दमनकारी छः धारायें—

१८२० केटो स्ट्रीट का षड्यन्त्र—टोरी सुधार के प्रश्न को अधिक महत्व देने लगे—

१८२२-२७ टोरी दल की ओर से सुधार की चेष्टा।

१८३२ प्रथम सुधार बिल :

इसके लिये लार्ड जॉन रसल ने अधिक प्रयत्न किया—

(१) मतों का विभाजन ठीक प्रकार से किया गया—

(२) मत देने वालों की योग्यता कम कर दी गई।

(१) बरोज में १० पौं० वार्षिक किराये के मकान मालिकों और किरायेदारों को मतदान का अधिकार मिला।

(२) काउंटीज में १० पौंड वार्षिक किराये की भूमि के स्वामियों तथा स्थायी रूप से इतनी भूमि किराये पर उठाने वालों को अधिकार मिला—५० पौं० वार्षिक किराये की भूमि रखने वाले कृषकों को भी यह अधिकार दिया गया।

(३) मतदान का कार्य प्रत्यक्ष रूप से चलता रहा—मतदान का समय १५ दिनों के स्थान में केवल २ दिन रखा गया।

(४) मतदान के समान क्षेत्र।

प्रथम सुधार बिल का महत्व अत्यधिक है।

१८३८ चार्टिस्ट और उनकी माँगें :

(१) सार्वजनिक मतदान (२) मतदान की गुप्त प्रणाली
(३) संसद का वार्षिक अधिवेशन (४) उसके सदस्यों को परितोषण
(५) उसका सदस्य होने के लिये भूमि के प्रतिबन्ध का हटाया जाना।
(६) समान निर्वाचन क्षेत्र।

चार्टिस्टों का आन्दोलन सफल न हुआ।

१८४८ चार्टिस्टों का दूसरा आन्दोलन :

यह आन्दोलन भी असफल हुआ।

१८६७ दूसरा सुधार बिल :

इसको स्वीकृत कराने का श्रेय डिजरेली को है—

(१) बरोज़ में :

(अ) जो लोग एक ही मकान में उसके स्वामी अथवा किरायेदार की हैसियत से बारह मास तक रह चुके थे तथा जो स्थानीय 'निर्धनों का कर' देते थे।

(ब) जो किसी कुटुम्ब के साथ किरायेदार की हैसियत से रहते थे तथा कम से कम १० पौं० वार्षिक कमरे का किराया देते थे।

(२) काउण्टीज़ में :

कम से कम ५ पौंड वार्षिक की सम्पत्ति रखने वालों तथा कम से कम १२ पौंड वार्षिक किराया देने वालों को यह अधिकार मिला।

महत्त्व :

पहले की अपेक्षा मत देने वालों की संख्या दुगुनी हो गई।

१८७२ गुप्त मतदान की प्रथा।

अन्य सुधार बिल :

१८८४ *तीसरा सुधार बिल :*

खेतों पर काम करने वाले २० लाख मज़दूरों को मतदान का अधिकार प्राप्त हुआ।

१९११ हाउस ऑव लार्ड्ज़ के अधिकारों में विशेष कमी।

१९१८ *चौथा सुधार बिल :*

निर्वाचन का अधिकार शेष मर्दों तथा बड़ी संख्या में स्त्रियों को दिया गया—

१९२८ शेष स्त्रियों को उसकी प्राप्ति।

१८३५ स्थानीय स्वशासन का सुधार :

नगर-पालिकाओं के लिये एक संविधान बनाया गया।

१८८८-९४ ग्रामों के स्थानीय शासनों का सुधार।

(११) ग्रेट ब्रिटेन में लोकतन्त्र का चमत्कार—सामाजिक सुधार

इनका महत्व किसी भी दशा में राजनैतिक सुधारों से कम नहीं है।

विचार प्रकाशन तथा धर्म की स्वतन्त्रता :

(१) प्रेस की स्वतन्त्रता :

सन् १६९५, १८३३, १८३६ व १८६१ के क़ानून।

(२) स्वतन्त्र आलोचना का अधिकार :

(३) धार्मिक स्वतन्त्रता का प्रचार :

कैथोलिकों व डिसेंटर्स को पार्लेमेंट में बैठने की आज्ञा मिली—टाईथ नाम का कर हटा दिया गया।

सार्वजनिक हित के विधान :

(१) फ़ौजदारी के नियमों में सुधार किया गया—बर्क, जौन बेंजमी तथा रोमिली आदि के प्रयत्न से—

(२) जेलों का सुधार किया गया—जॉन होवर्ड तथा एलिज़बेथ फ्राई आदि के प्रयत्न से—

(३) कारखानों व खानों आदि के विषय में क़ानून—रिचर्ड ओस्लर, टामस सेड्लर व लार्ड ऐशोल के प्रयत्न से।

व्यापारिक स्वतन्त्रता :

प्राचीन काल में देश के कलाकौशल तथा व्यापार की उन्नति के लिये प्रतिबन्ध अत्यावश्यक समझे जाते थे—बाहर से आने वाले अनाज पर भी कर आरोपित थे—

स्वतन्त्र व्यापार का समर्थक ऐडम स्मिथ—उसकी प्रसिद्ध पुस्तक

१७७६ Wealth of the Nations—

१८४५ आयरलैंड में दुर्भिक्ष—

१८४६ अनाज के क़ानूनों का स्थगित किया जाना—

१८५२-६७ व्यापारिक स्वतन्त्रता का प्रचार।

शिक्षा का प्रचार :

१८वीं शताब्दी के अन्त तक अधिकतर निवासी अशिक्षित—शासन की उदासीनता—

१८३३ शासन की ओर से बीस सहस्र पौंड की स्वीकृति—छः वर्ष पश्चात् ५० फ़ी सदी वृद्धि—

१८७० शिक्षा सम्बन्धी बिल—स्कूल बोर्डों की स्थापना—

कुछ समय पश्चात् अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा का प्रचार—

१९०२ — शिक्षा सम्बन्धी बिल—शासन ने विद्यालयों का लगभग सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया—उनके निरीक्षण का उचित प्रबन्ध—

१९०६ — उदार दल ने विधान बनाने का प्रयत्न किया किन्तु सफलता न मिली—प्रथम महायुद्ध के पश्चात् शासन ने इस ओर पुनः ध्यान दिया।

(१२) रूस का सुधारवादी आन्दोलन (१८१५–१८८१)

अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा सभ्यता व संस्कृति में पीछे—पीटर महान् के सुधार—कैथरिन महान् ने यूरोपीय राष्ट्रों में स्थान दिलाया—

सन् १८१५ ई० की स्थिति :

कृषकों की बुरी दशा—उनकी दासता—सरकारी भूमि पर काम करने वाले कृषकों की दशा कुछ अच्छी—उन पर भी करों का भार—व्यक्तिगत खेतों पर काम करने वालों की दशा बड़ी शोचनीय—

शासन प्रणाली दोषयुक्त—भ्रष्टाचार—घूस का जोर—सरकारी कोष का दुरुपयोग।

कुलीनों का असन्तोष :

कृषकों का असन्तोष किन्तु मध्यम वर्ग के नेताओं की कमी—कुलीनों का असन्तोष—उन्होंने क्रान्ति का नेतृत्व किया।

१८०१-२५ सिकन्दर प्रथम :

धार्मिक विचार—सुधार करने की आकांक्षा—पोलैंड को संविधान की स्वीकृति—बाद को निरंकुश शासक की स्थिति में शासन किया।

१८२५-५५ निकोलस प्रथम :

दिसम्बर के आन्दोलन को दबाया—

दमनकारी नीति :

(अ) गुप्त पुलिस—

(ब) अन्य देशों [illegible] में प्रतिबन्ध—

(स) छात्र [illegible] जा सकते थे—

(द) विश्व-विद्यालयों की शिक्षा में अवरोध—

(य) प्रेस के प्रतिबन्ध—

(र) पोलिश विद्रोह के पश्चात् पोलिश संविधान की समाप्ति—तुर्की से दो युद्ध—क्रीमिया के युद्ध में पराजय—[illegible]—रूसी सेना की कमजोरी।

१८५५-८१ सिकन्दर द्वितीय :

(१) प्रारम्भिक सुधार :

(अ) निर्वासित लोगों को क्षमा प्रदान की—
(ब) विश्वविद्यालयों व विदेशी यातायात के प्रतिबन्ध हटा दिये गये—
(स) विश्व विद्यालयों व स्कूलों में शिक्षा को प्रोत्साहित किया—
(द) प्रेस को किसी सीमा तक स्वतन्त्रता प्रदान की—
(र) जूरी द्वारा न्याय।

(२) कृषकों की स्वतन्त्रता :

१८६१ कृषकों की स्वतन्त्रता की घोषणा—

सरकारी भूमि पर—दास-कृषक भूमि के स्वामी हो गये—करों से मुक्ति—

व्यक्तिगत भूमि पर—दास-कृषकों की स्वतन्त्रता—प्रत्येक कृषक के पास अपनी भूमि तथा अपना बगीचा—

स्वतन्त्रता का प्रभाव—कृषकों की स्थिति में सुधार—जमींदारों की स्थिति में सुधार—कृषकों की आर्थिक दशा में बहुत कम परिवर्तन—कारण कि उन्हें भूमि के बदले में धन देना पड़ता था।

(३) न्याय विभाग :

(अ) नवीन ढंग के न्यायालय—
(ब) न्याय और कार्यपालिका की पृथकता—
(स) न्यायाधीशों को अधिक स्वतन्त्रता दी गई।

(४) स्थानीय स्वशासन :

स्थानीय तथा प्रान्तीय सभायें (Zomstvos)—इनके अधीन सड़कों, शिक्षालयों व अस्पतालों आदि का प्रबन्ध था।

१८७७-८१ *(५) क्रान्तिकारी आन्दोलन :*

निहिलिस्ट शासन तथा समाज में कायापलट परिवर्तन करना चाहते थे—

(अ) निहिलिस्ट सिद्धान्तों का प्रचार—पुलिस का विरोध—बहुतों का साइबेरिया को निर्वासन—
(ब) आतंकवादी आन्दोलन—अनेक वध—बहुत से अफ़सर वध कर दिये गये—ज़ार का वध।

१८८१

१८८१-९४ सिकन्दर तृतीय :

क्रान्तिकारी आन्दोलन का दमन—दमनकारी नीति—राष्ट्रीय आन्दोलन का अन्त।

(२) शासकों की सूची

आस्ट्रिया

फ्रांसिस प्रथम १८०४–१८३५ फर्डिनेंड प्रथम १८३५–१८४८
फ्रांसिस जोज़ेफ़ १८४८–१९१६

प्रशा

फ्रेडरिक विलियम तृतीय १७९७–१८४० फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ १८४०–१८६१
विलियम प्रथम १८६१–१८८८

फ्रांस

बादशाह (बूरबन) :

अठारहवाँ लूई १८१४–१८२४
सिवा मार्च-जून, १८१५

दसवाँ चार्ल्स १८२४–१८३०

बादशाह (आर्लियंज़) :

लूई फ़िलिप १८३०–१८४८

दूसरा गण-राज्य :

अध्यक्ष : लूई नैपोलियन बोनापार्ट १८४८–१८५२

दूसरा साम्राज्य :

सम्राट : नैपोलियन तृतीय १८५२–१८७०

ग्रेट ब्रिटेन

जार्ज तृतीय १७६०–१८२० जार्ज चतुर्थ १८२०–१८३०
विलियम चतुर्थ १८३०–१८३७ विक्टोरिया १८३७–१९०१

बेल्जियम

ल्योपोल्ड प्रथम १८३१–१८६५ ल्योपोल्ड द्वितीय १८६५–१९०९

सार्डिनिया

विक्टर ऐमैनुअल प्रथम १८०२–१८२१ चार्ल्स फ़ेलिक्स १८२१–१८३१
चार्ल्स एल्बर्ट १८३१–१८४९ विक्टर ऐमैनुअल द्वितीय १८४९–१८६१

इटैली

बादशाह :

विक्टर ऐमेनुअल द्वितीय १८६१—१८७८

दो सिसलियों का देश

फर्डिनेंड प्रथम १७५६—१८२५ फ्रांसिस प्रथम १८२५—१८३०
फर्डिनेंड द्वितीय १८३०—१८५६ फ्रांसिस द्वितीय १८५६—१८६०

स्वीडन

तेरहवाँ चार्ल्ज़ १८०६—१८१८ चौदहवां चार्ल्ज़ (बर्नाडॉट) १८१८—१८४४
ओस्कार प्रथम १८४४—१८५६ पन्द्रहवां चार्ल्ज़ १८५६—१८७२

डेनमार्क

फ्रेडरिक षष्ठ १८०८—१८३६ क्रिश्चियन अष्टम १८३६—१८४८
क्रिश्चियन नवम १८६३—१९०६

स्पेन

फर्डिनेंड सप्तम (बूरबन) १८१४—१८३३ इज़ाबेला द्वितीय (बूरबन) १८३३—१८६८
(कोई भी बादशाह न था १८६८—१८७०)

पुर्तगाल

मेरिया प्रथम १७७७—१८१६ जोन षष्ठ १८१६—१८२६
पेड्रो चतुर्थ १८२६ मेरिया द्वितीय १८२६—१८२८
मीगेल १८२८—१८३४
मेरिया द्वितीय (फिर से सम्राज्ञी बनाई गई) १८३४—१८५३
पेड्रो पंचम १८५३—१८६१ लूई प्रथम १८६१—१८८६

नीदरलैंड्ज़

विलियम प्रथम १८१४—१८४० विलियम द्वितीय १८४०—१८४९
विलियम तृतीय १८४९—१८९०

तुर्की

महमूद द्वितीय १८०८—१८३९ अब्दुल मजीद प्रथम १८३९—१८६१
अब्दुल अज़ीज़ १८६१—१८७६

रूस

सिकन्दर प्रथम १८०१–१८२५ निकोलस प्रथम १८२५–१८५५
सिकन्दर द्वितीय १८५५–१८८१

रूमानिया

सिकन्दर जोन (कूज़ा) प्रथम	१८५९–१८६६
केरोल प्रथम (हांएनज़ोलर्न-सिगमेरिञ्जन)	१८६६–१८८१

सर्बिया

मीलोश (ओबरीनोविच)	१८१७–१८३९
मीलन ,,	१८३९
माइकल ,,	१८३९–१८४२
सिकन्दर (काराज्योर्गीविच)	१८४२–१८५८
मीलोश (फिर से सिंहासन पर बिठलाया गया)	१८५८–१८६०
माइकल (फिर से सिंहासन पर बिठलाया गया)	१८६०–१८६८
मीलन (ओबरीनोविच)	१८६८–१८८२

पोप

पायस सप्तम १८००–१८२३ ल्यो १२ १८२३–१८२९
पायस अष्टम १८२९–१८३० ग्रीगोरि १६ १८३१–१८४६
पायस नवम १८४६–१८७८

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१	३	शाति	शान्ति
११६	३१	स्लोव	स्लोब
१८२	२१	कैनार्डी	कैनार्डजी
१४२	३२	स्वतन्त्र व लोकतन्त्रता	स्वतन्त्रता व लोकतन्त्र
१६५	१६	अलब्ध	उपलब्ध
१७१	२२	बिजमार्क	बिस्मार्क
१७२	१६	(१८४७–१८५२)	(१८४७–१८५१)
१७६	२५	१८६६	१८६२
१७७	२	वकतृता	वक्तृता
१७८	३०	स्थान प्रथा	स्थान में प्रथा
२१५	२	वर्ष प्रति वर्ष	प्रति वर्ष